ॐ
महा मंत्र
णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं
पापनाशक मंत्र
एसो पंच णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलं

श्री वीतरागाय नमः

श्री कुंदकुंदाचार्य और पूज्यपादाचार्य
आदि अन्य जैनाचार्यों द्वारा विरचित

गुरु भक्ति संग्रह
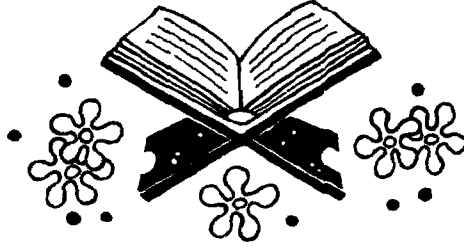
संग्रह कर्ता

प. पू. संत शिरोमणि आचार्य श्री. १०८ विद्यासागर महाराजजी के
परम शिष्य प.पू. श्री १०८ भूतबलीसागरजी महाराज

प्रेरणा श्रोत :

बालयोगि मुनि श्री १०८ मौनसागरजी महाराज और
ऐलक श्री १०५ मुनिसागरजी

संपादकीय सहयोग :

बालयोगी क्षुल्लक श्री १०५ लब्धिसागरजी

प्रकाशक :

श्री फुलचंद जैन जीगरवाला मेमोरियल ट्रस्ट

७५, बोम्बे म्युचुअल बिल्डींग,

डॉ. डी.एन. रोड, फोर्ट, मुंबई-४०० ००१.

फोन : २६६१४२१

प्राप्तिस्थान :

श्री धर्म चन्द जैन

कमरा सं. १२ए, २री मंजिल, २९, दूसरी फणसवाडी,

दादीसेठ अगियारी लेन, मुंबई-४०० ००२.

फोन : २०८०३३८ /२०१३००५

प्रति : १०००

प्रकाशन वर्ष : १९९८

मूल्य : नित्यपाठ

मुद्रक :

योगेश मकवाणा

Superlekha

फोन : ८७५०७२२

प्रस्तावना...

भगवान आदिनाथ तथा महावीर के शिष्य मंद और वक्र बुद्धिवाले थे। उन शिष्यों की बुद्धी को सुबुद्धि और सरल परिणामी बनाने के लिए प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं का उद्बोधन किया है। आज इस कलिकाल में हम सभी मंद बुद्धि तथा वक्र बुद्धि परिणाम वाले है। इस कुबुद्धि को सरल परिणामी बनाने के लिये गौतम गणधर गुरु ने अज्ञान से किये हुए दोषों को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण (कर्म के प्रति आक्रमण) आदि का उपदेश दिया है।

इन क्रियाओं को सुचारु तथा सुव्यवस्थित रुप से करने के लिए आचार्य कुंदकुंद देव ने प्रतिक्रमण और भक्ति को प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध किया है। इस भक्ति के सहारे हम अपने किये हुए दोषों को दूर कर सकते हैं और भी अनेक जैन आचार्यों कवि, विदवानों ने संस्कृत एवं अन्य भाषाओं में दशभक्ति लिखी है। आचार्य समन्तभद्रजीने चौबीस तीर्थकरों की स्तुति सरल एवं सुबोध संस्कृत में लिखी है और इसका भाषान्तर हिंदी में गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने किया है। मानतुंगाचार्य ने अपने ऊपर आये हुए उपसर्ग को आदिनाथ भगवान की भक्ति करके (भक्तामर स्तोत्र से) दूर किया। आचार्य अकलंक देवने स्तुति की रचना कर धार्मिक संकट को दूर किया। सहंस्रनाम स्तुति की रचना आचार्य जिनसेन ने की है जिसका पाठ करने से बुद्धि विकसित होती है। पूर्व के आचार्यों और साधुओं ने सच्चे देव गुरु शास्त्र की भक्ति साहित्य की रचना बड़ी ही श्रद्धा से की है तथा इसका पाठपठन करके सम्यकत्व प्राप्तकर

समाधि पूर्वक अपनी सदगति पाई है। आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र की रचना की है, जिसमें सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक् चारित्र को एक साथ ही मोक्ष मार्ग कहा है, जिसमें सात तत्व, छह द्रव्य, नव पदार्थ पंचास्तिकाय आदि की गति आदि मुख्य कर्म, उत्तर कर्मप्रकृति उसका स्वभाव-विभावादि का सुंदर निरुपण किया है। इन सूत्रों का पाठ करने से एक उपवास का फल मिलता है।

इस कलिकाल में भक्ति ही मुक्ति का सर्वोपरि साधन है। इस ग्रंथ का नाम 'गुरु भक्ति संग्रह' है। इसका नित्यपाठ करने से हम जैसे मंद बुद्धिवालों की बुद्धि कुशाग्र होगी। इनका पाठ मुनि, त्यागी, श्रावक-सभी नित्य करने योग्य है।

इस संग्रह का संपादन यद्यपि मैंने बहुत ही सावधानी से किया है फिर भी अज्ञानवश या प्रमादवश अशुद्धियाँ रह गई हो तो विद्वानजन क्षमा करेंगे।

प्रस्तुत संग्रह के प्रकाशन में धर्मानुरागी भाई श्री धर्मचंदजी जैन (एडव्होकेट) ने अपनी चंचल लक्ष्मी का उपयोग इस मोक्षलक्ष्मी के लिये किया है। उनके सह-परिवारवालों के लिये मेरा शुभाशीर्वाद।

"आकर्णि तोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि।
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या॥
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं।
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥"

मुनि भूतबली सागर

गोमटेश अष्टक

(ज्ञानोदय छंद-लय मेरी भावना)

नील कमल के दल-सम जिन के युगल-सुलोचन विकसित है.
शशिसम मनहर मुखकर जिनका मुख मंडल मृदू प्रमुदित है।
चम्पक की छावि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती,
गोमटेश जिन-पाद पद्मकी पराग नित मम मति पीती ॥१॥

गोल-गोल दो कपोल जिनके उजल सलिल सम छवि धारे,
ऐरावत-गज की सूण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे।
कन्धो पर आ, कर्ण पाश वे नर्तन करते नन्दन है,
निरालम्ब वे नभ सम शुचि सम गोमटेश को वन्दन है ॥२॥

दर्शनीय तव मध्यभाग है गिरी-सम निश्चल अचल रहा,
दिव्यशंख भी आप कण्ठसे हार गया वह विफल रहा।
उन्नत विस्तृत हिमगिरी-सम है स्कंद आपका विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पदमें मन निवस रहा ॥३॥

विंध्याचलपर चढकर खरतर तपमें तत्पर हो बसते,
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के शिखामणी तुम हो लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो,
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो ॥४॥

मृदुतम बेल लताएँ लिपटी पग से उरतक तुम तन मे,
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवी-जन को तुम त्रिभुवन में,
तुम पद-पंकज में अलि बन सुर पति गण करता गुन-गुन हैं,
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है ॥५॥

अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नही भीत रहे,
अंबर आदिक विषयन से अति विरत रहें, भव भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मनका मैल रहे ॥६॥

आशा तुमको छू नही सकती समदर्शन के नाशक हो,
जग के विषयन मे वांछा नही दोष भूल के नाशक हो।
भरत भ्रात में शल्य नही अब विगत राग हो रोष जला,
गोमटेश तुम मे मम इस विध सतत राग हो, होत चला ॥७॥

काम-धामसे धन कंचन से सकल संग के दूर हुए,
शूर हुए मद मोह-मार कर समतासे भरपूर हुए।
एक वर्षतक एक थान थित्त निराहार उपवास किये,
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मनमे अब वास किये ॥८॥

दोहा

नेमिचंद्र गुरुने किया प्राकृत मे गुणगाण,
गोमटेश स्तुति अब किया भाषा-मय सुखखान।
गोमटेशके चरण में नत हो बारंबार
विद्यासागर फिर बनूं भवसागर कर पार।

॥ इति शुभं भूयात ॥
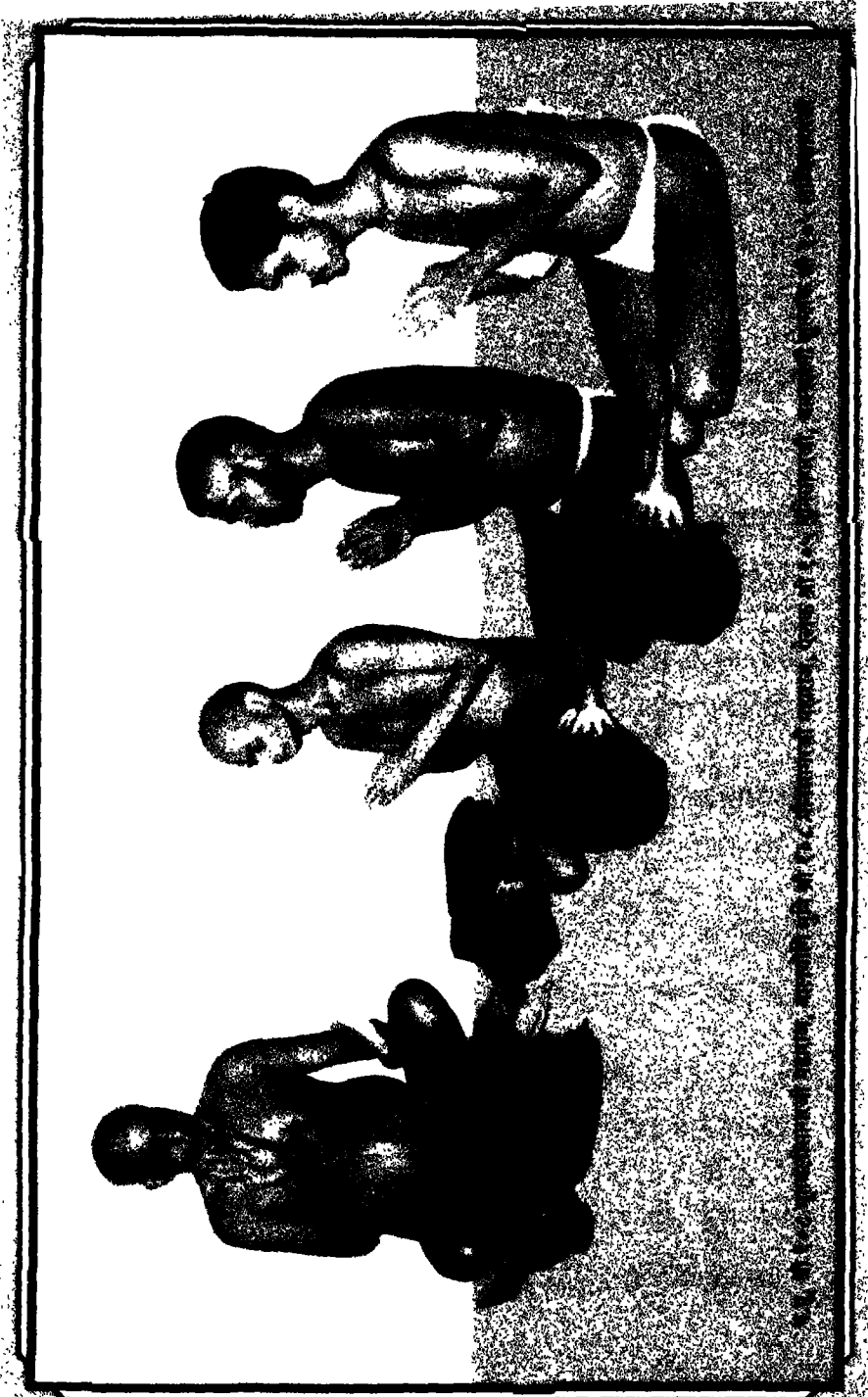
गोम्मटेस-थुदि

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥१॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं, आबाहु-दोलंत-सुकण्णपासं।
गइन्द-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

सुकण्ठसोहा-जिय दिव्व-संखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल-सुट्ठु-मज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

विज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणिं सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं।
देविंदविंचच्चिय - पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्च ॥५॥

दियंबरो जो ण च भीइ-जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतु-प्फुसदो ण कपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

आसां ण जो पेक्खदि सच्छादिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

उपाहि-मुत्तं श्रण-श्राम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोह-हारयं।
वस्सेय-पज्जंत-मुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

गुरुवर विद्यादर्शन बोध वृत्त सहीतं रत्नत्रयपावनं।
मुक्तिश्री नगराधिनाथ गमकम् सर्वार्थ कल्याणकं ॥
ज्ञान ध्यान तपो भिरक्त मुनिपं श्रेष्ठं परम पुंगवं।
वंदेतव चरणाम्बुजम् प्रति क्षणम् कुर्वंतुओ मंगलं ॥

आचार्य विद्यासागराष्टकं

आत्मानुसारं सकलार्थ तरुवं ।
ज्ञानाभिसक्तं स्वपरोपकारं ॥
शुद्धात्मप्रेमी निजध्यान लीनं ।
आचार्यवर्यं प्रणमामि नित्यं ॥१॥

शुद्धात्मप्रेमी अध्यात्मयोगी ।
वैराग्य मूर्तिः उपयोग कीर्तिः ॥
चिरंत चिंतवन अतिशांत चित्तं ।
आचार्य देवं प्रणमामि नित्यं ॥२॥

स्वाध्याय ध्यानी निज ज्ञान लीनं ।
स्वसिद्धी साध्यं स्वरत्न लीनं ॥
अमूल्यं अनंतं मणि रत्न सारं ।
आचार्य देवं प्रणमामि नित्यं ॥३॥

अध्यात्मलीनं सु समयसार रूपं ।
सत्साधु संतं आचार्य प्रमुखं ॥
आत्मानुभूति रस पूर्ण कुंभं ।
अध्यात्मयोगी प्रणमामि नित्यं ॥४॥

मल्लिं श्रीमतिं तव तात मातं ।
योगं सुसमयं तव विद्याभ्रातं ॥
ज्ञानस्य सागर तव दीक्षा गुरुवं ।
आचार्य देवं प्रणमामि नित्यं ॥५॥

सदलगा ग्रामं तव जन्म भूमिं ।
कर्नाटको तव राज्य प्रशस्तं ॥
तव नाम विद्याधर लोक श्रेष्ठे ।
विद्यादि सागर प्रणमामि नित्यं ॥६॥

तव संघ विश्वं सर्वं प्रसिद्धम् ।
मुनि योगी त्यागी मातरु ब्रह्मचारी ॥
बुंदेलखंड तव यश पताकां ।
विद्यादि सागर प्रणमामि नित्यं ॥७॥

वात्सल्य सिंधु शिव संत योगी ।
वैराग्य रूपी निज आत्म भोगी ॥
कर्मादि नष्टकं ओ शूरवीरं ।
विद्यादि सागर प्रणमामि गुरूवं ॥८॥

भूतबली सागर तव बाल शिष्य गुरुवं अल्पज्ञ अरु तुच्छवं ।
तव भक्ति उत्प्रेरकं निशिदिनं स्वीकार ओ मम गुरुं ॥
अर्चन पुष्प समर्पयामि चरणं चंद्रार्क तेजोमयम् ।
तव पादौ मम तिष्ठ तिष्ठ हृदये यावन्ति मेम जीवनम् ॥९॥

(इति शुभम्, भूयात्पुर्नदर्शनम्)

मनोगत भावनाये

अनादि कालीन संसार दुःखों से संतप्त जीव सुख चाहता है पर सुख की प्राप्ति के उपायों को नहीं करता हुआ पंच पापों के प्रपंच में फंसा दुःख श्रृंखला को मजबूत करता है। आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन मे लिखते हैं "पापात् दुःखं धर्मात् सुखम्" पाप से दुःख व धर्म से सुख प्राप्त होता है अब यहां प्रश्न उठता है धर्म क्या है तो आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं।

चारित्तं खलु धम्मो, वत्थु सहावो धम्मो-रयणत्तयं च धम्मो-जीव रक्खणं धम्मो, उत्तम खमादि दशलाक्षणिको धम्मो, आदि अनेक धर्म की परिभाषायें है परंतु सही धर्म तो वही है जो संसारतः दुःखतः सत्वान् उद्धृत्य धरति उत्तमें सुखे-सधर्मः अर्थात् संसार के दुखी जीवों को जो दुःख से निकालकर उत्तम सुख में धर देता है वही धर्म है उसी धर्म का वर्णन इस भक्ति संग्रह में किया गया है ऐसे महान् महान् आचार्य हुये जिन्होने अपनी भक्ति को प्रचण्डता से बेड़ियों को तोड़ आत्म सुख को प्राप्त किया आचार्य समंतभद्र मानतुङ्ग वादिराज अकलंकाचार्य आदि जैसे आचार्य हुये हैं जिनकी भक्तिवशात् सम्यक्त्व प्रभावात् शिवपिण्ड को फटना पड़ा और चंद्रप्रभुको प्रगट होना पड़ा आचार्य मानतुङ्ग की बेडियों को तुण्ड तुण्ड होना पड़ा आचार्य वादिराज के रोग को मुख छिपाना पड़ा तारादेवी को मटके को छोड़ भाग जाना पड़ा यह सब भक्ति का प्रभाव नहीं तो और क्या हैं भक्ति में वह शक्ति हैं जिससे मुक्ति मिलती है अतः आचार्य कहते हैं जिन्हें मुक्ति रुपी सुख को पाना है उन्हें भक्ति से लगन लगानी पड़ेगी

और ऐसी लगन लगानी पड़ेगी कि जिसमें भक्त और भगवान एक हो जाये भक्त भगवान के गुणों से ओतप्रोत हो उसमें समा जाये जिस क्षण वह भगवान में समा जायेगा उसी पल भगवान बन जायेगा आचार्य मानतुङ्ग कहते। नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ। भूतैर्गुणैर्भुविभवन्त मभीष्टुवन्तः। तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा। भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥ कि भगवन् आपके पास वह गुण है जो आप भक्त को भक्त ही नहीं किन्तु अपने समान भगवान बना लेते हो पारस तो लोहे को स्वर्ण बनाता है पर आप पत्थर को भी पारस बना देते हो तो भक्तों यदि हमें भगवान बनना है तो भक्ति परमावश्यक है आचार्य भव्यात्माओं को सम्बोधित करते हुये कहते है महानुभावों सच्चे सुख की प्राप्ति करता है भक्ति के साथ चारित्र को स्वीकार करो।

अनन्त सुख सम्पन्न येनात्माय क्षणादपि।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः॥

उस चारित्र को बार बार नमस्कार हो जिसके धारण करने से आत्माक्षण मात्र मे अनंत सुख का स्वामी हो जाता है। और तो और भगवन्

एकापि समर्थेयं जिन भक्ति दुर्गतिं निवारयिंतु।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥

हे भगवन। संसार समुद्र से पार होने के लिये आपकी एक भक्ति ही समर्थ है और पुण्य भरकर मुक्ति श्री का कारण है। इस पुस्तिका में आचार्य कुंदकुंद देव विरचित प्राकृत भक्ति या एवं आचार्य

पुज्यपाद कृत संस्कृत दश भक्तियां है जिन्हे ऋषि मुनि आर्यिका एवं त्यागी व्रती भावपूजा भक्ति माध्यम से करते है जिनभक्ति से निकाचित कर्म ढीले पड़ जाते है जिनभक्ति रूप सराग परिणामों से तात्कालिक बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है इसलिये तो पूज्यपाद आचार्य बार-बार कहते है कि हे भगवन्

''तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्'' ।
''तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावनिर्वाण सम्प्राप्तिः''

हे प्रभो जब तक हमे 'निर्वाण सुख' की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण कमल तब तक मेरे हृदय में विराजमान रहें। इसके साथ ही साधु की चर्या प्रतिक्रमण सामायिक भक्ति आदि आवश्यक कर्म कहे गये है पूर्व में प्रतिक्रमण भक्ति संबंधी अनेकों पुस्तकों का प्रकाशन विभिन्न स्थानों में हुआ उन्हीं स्थानों में एक बम्बई भी है जहां भक्ति पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है इस पुस्तक मे श्रावक से साधु तक सभी के लिये भक्तियां स्तोत्र आदि दिये गये है। और मुनियों के कृतिकर्मो का वर्णन किया गया है। ''पाप विनाशोपायः तत्कृति कर्मः'' ''सम्यक-यताः पापक्रियाभ्यो निवृत्ताः संयताः'' जो हिंसादि पाप क्रियाओ से निवृत हो चुके है वे संयत है और पाप विनाश के लिये जो कार्य किये जाते हैं वे कृतिकर्म है इसके अलावा गौतम गणधर देव विरचित प्रतिक्रमण भी है। कृतं दोष निराकरणार्थं इति प्रतिक्रमणं। किये हुये दोषों का निवारण करने के लिये जो क्रिया की जाये वह प्रतिक्रमण है इस पुस्तिका में श्रावक एवं साधु दोनों के मूलगुण का वर्णन प्रतिक्रमण के माध्यम से किया गया है। सभी भव्य प्राणियों से

निवेदन है कि वे इस पुस्तक का उपयोग अवश्य करें इससे अनंतानंत कर्मों की श्रृंखला नष्ट हो अपने अनंत सुख की प्राप्ति हो इस पुस्तक का प्रकाशन करवाने वाले श्री धर्मचंद जी पाटौदी सीकर वाले वर्तमान में मुम्बई निवासी ने अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग इस भक्ति पुस्तक में किया है उन्हें महाराज श्री का शुभाशीर्वाद है वे अपने धर्म की वृद्धि करते हुये अपने नाम के अनुसार धर्म को पूर्णरुपेण स्वीकार मुक्तिपुर के पथिक बने परमपूज्य गुरुदेव श्री आचार्य संतशिरोमणि विद्यासागरजीके परम शिष्य मुनि श्री १०८ भूतबली सागर जी महाराज को हमारा शत् शत् वंदन नमोऽस्तु जिन्होने इस पुस्तिका के माध्यम से बम्बई निवासियों एवं समस्त धर्मबंधुओं को भक्तिरस का प्याला दिया है जिससे वे अनंतसुख के स्वामी बन सके गुरुओं की महिमा कितनी भी गाये जाये कम है क्योंकि गुरु स्वयं में महान है ज्यादा क्या लिखूं ''जिनके जीवन में गुरु नहीं। उसका जीवन शुरु नही। सब धरती कागज करुं, लेखनी सब बनराम। सप्त समुंदर स्याही बनाऊं गुरु गुण लिखे ना जाये। इन्ही शुभ मंगलमय भावनाओं के साथ जगत्कल्याणेच्छक।

प्रभु एवं गुरु चरण रज चञ्चरीक ब्र. मंजुला

अनुक्रमणिका

नं.	विषय सूची	पृष्ठ नं.
१८.	कल्याणमंदिर स्तोत्रम्	७१-७९
१९.	एकीभाव स्तोत्रम्	८०-८५
२०.	विषापहार स्तोत्रम्	८६-९४
२१.	जिनचतूर्विंशतिका	९५-१०१
२२.	श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०२-१२१
२३.	बृहत्स्वयम्बू स्तोत्रम् (संस्कृत)	१२२-१५७
२४.	स्वयम्बूस्तोत्र का हिन्दी अनुवाद स्तुति	१५८-२४०
२५.	तत्वार्थसूत्र	२४१-२६०
२६.	भावना द्वात्रिंशतिका	२६१-२६७
२७.	लघु सामायिकपाठ	२६८-२७०
२८.	श्री ईर्यापशशुद्धि	२७१-२८२
२९.	श्री सिद्धभक्ति (संस्कृत)	२८३-२८७
३०.	श्री प्राकृत सिद्धभक्ति	२८८-२९२
३१.	श्री श्रुतभक्ति (संस्कृत)	२९३-२९९
३२.	श्री प्राकृत श्रुत भक्ति	३००-३०२
३३.	श्री चारित्र भक्ति (संस्कृत)	३०३-३०६
३४.	श्री प्राकृत चारित्र भक्ति	३०७-३०८
३५.	श्री योगी भक्ति	३०९-३१२
३६.	श्री प्राकृत योगी भक्ति	३१३-३१६
३७.	श्री आचार्य भक्ति	३१७-३१९

नं.	विषय सूची	पृष्ठ नं.
३८.	श्री प्राकृत आचार्य भक्ति	३२०-३२१
३९.	श्री चैत्य भक्ति	३२२-३३०
४०.	श्री पंचगुरू भक्ति	३३१-३३२
४१.	श्री प्राकृत पंचमहागुरू भक्ति	३३३-३३४
४२.	श्री प्राकृत निर्वाण भक्ति	३३५-३४१
४३.	श्री प्राकृत निर्वाण भक्ति	३४२-३४६
४४.	श्री नंदीश्वर भक्ति	३४७-३६१
४५.	अत श्री शांति भक्ति	३६२-३६६
४६.	श्री समाधि भक्ति	३६७-३६९
४७.	चतुर्दिग्वन्दना	३७०-३७०
४८.	सर्वदोष प्रायश्चित विधि	३७१-३७४
४९.	श्रावक प्रतिक्रमण	३७५-४०३
५०.	दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमणम्	४०४-४२७
५१.	पाक्षिकादि प्रतिक्रमणम्	४२८-५०५
५२.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	५०६-५३१
५३.	द्रव्य संग्रह	५३२-५४१
५४.	छहढाल	५४२-५६२
५५.	बाईस परीषह	५६३-५६८
५६.	बारह भावना (भूदरदास)	५६९-५७०
५७.	बारह भावना (मंगतराय)	५७१-५७७

कौन कौन सी भक्ति कहाँ कहाँ करनी चाहिये इसका स्पष्ट विवरण

कार्य	भक्ति
जिन प्रतिमावंदन आचार्य वंदना (गवासन से)	चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, लघु सिद्ध भक्ति, लघुआचार्यभक्ति
सिद्धांतवेत्ता आचार्य की वंदना	सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति
साधारण मुनियों की वंदना	सिद्धभक्ति
सिद्धांतवेत्ता मुनियों की वंदना	सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति
स्वाध्याय का प्रारम्भ	लघुश्रुत भक्ति आचार्य भक्ति
स्वाध्याय की समाप्ति	लघु श्रुत भक्ति
आचार्य की अनुपस्थिति में पहले दिन उपवास वा प्रत्याख्यान ग्रहण किया हो तो दूसरे दिन आहार के समय	सिद्ध भक्ति पढ़कर उशका त्याग वा आहार के लिये गमन

आहार की समाप्ति पर अगले दिन के उपवास वा प्रत्याख्यान का ग्रहण करने में	सिद्धभक्ति
आचार्य की उपस्थिति में आहार के लिये जाने के पहले	लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति
आहार के अनंतर प्रत्याख्यान वा उपवास की प्रतिज्ञा के लिये	लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति
आचार्य वंदना	लघुआचार्य भक्ति
चतुर्दशी के दिन त्रिकाल वंदना के लिये	चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंच-गुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचगुरु भक्ति, शांतिभक्ति और समाधि भक्ति
नंदीश्वर पर्व में	सिद्धभक्ति, नंदीश्वरभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शांतिभक्ति और समाधि भक्ति
सिद्धप्रतिमा के सामने	सिद्धभक्ति

तीर्थंकर के जन्म दिन	चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचगुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शांतिभक्ति
अष्टमी चतुर्दशी की क्रिया में अपूर्व चैत्यवंदना वा त्रिकाल नित्य वंदना के समय	चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शान्तिभक्ति
अभिषेक वंदना	सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरु भक्ति शांतिभक्ति
स्थिरबिंबप्रतिष्ठा	सिद्धभक्ति, शांतिभक्ति
चलबिंबप्रतिष्ठा	सिद्धभक्ति, शांतिभक्ति
चल बिंबप्रतिष्ठा के चतुर्थ अभिषेक में	सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शांतिभक्ति
तीर्थंकरों के गर्भजन्म-कल्याणक में	सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, शांतिभक्ति।
दीक्षाकल्याणक	सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, शांतिभक्ति।

ज्ञानकल्याणक	सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, निर्वाण और शांति भक्ति।
निर्वाणकल्याणक	सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, निर्वाण और शांति भक्ति।
वीरनिर्वाण-सूर्योदय के समय	सिद्धभक्ति, निर्वाण, पंच-गुरु, शांतिभक्ति।
श्रुतपंचमी	बृहत्सिद्धभक्ति, बृहत्श्रुत-भक्ति श्रुतस्कंध की स्थापना, बृहत् वाचना, बृहत् श्रुत भक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक स्वाध्याय, श्रुत भक्ति द्वारा स्वाध्याय की पूर्णता अंत में शांति भक्ति कर क्रिया की पूर्णता।
श्रृतपंचमी के दिन गृहस्थों को	सिद्धश्रुतशांतिभक्ति।
सिद्धांत वाचना	स्वाध्याय का प्रारंभ श्रृतभक्ति आचार्यभक्ति कर के वाचना अंत में श्रुत और शांति भक्ति।
गृहस्थों को सन्यासके प्रारंभमें	सिद्ध, श्रुत, शान्तिभक्ति

गृहस्थोको सन्यासके अन्त में	सिद्ध, श्रुत, शान्ति।
वर्षायोग धारण करते समय	सिद्ध, योगि, चैत्यभक्ति।
वर्षायोग धारण की प्रदक्षिणा में	यावंति जिनचैत्यानि, स्वयंभूस्तोत्र की स्तुति चैत्यभक्ति
वर्षायोग स्वीकार करते समय	गुरुभक्ति, शांतिभक्ति
वर्षायोग की समाप्ति में	वर्षायोग धारण करने की पूर्व विधि
आचार्यपद ग्रहण करते समय	सिद्ध, आचार्य, शांतिभक्ति
प्रतिमायोग धारण करने वाले मुनि की वंदना करते समय	सिद्ध, योगी, शांतिभक्ति
दीक्षा ग्रहण करते समय	बृहत्सिद्धभक्ति, योगिभक्ति
दीक्षा के अन्त में	सिद्धभक्ति
केशलोंच करते समय	लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगि-भक्ति
लोंच के अन्त में	सिद्धभक्ति

प्रतिक्रमण में	सिद्ध, प्रतिक्रमण, वीरभक्ति, चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति
रात्रियोग धारण	योगिभक्ति
रात्रियोग का त्याग	योगिभक्ति
देववंदना में दोष लगने पर	समाधिभक्ति
सामान्य ऋषि के स्वर्गवास होनेपर उनके शरीर और निषद्या की क्रिया में	सिद्ध, योगि, शांतिभक्ति
सिद्धांतवेत्ता साधु के स्वर्गवासमें	सिद्ध, श्रुत, योगि, शांति-भक्ति
उत्तर गुणधारी सिद्धांत वेत्ता साधु के स्वर्गवास पर	सिद्ध, चारित्र, योगि शांति भक्ति
आचार्य के स्वर्गवास होने पर	सिद्ध, श्रुत, आचार्य, योगि शांति भक्ति
सिद्धान्तवेत्ता आचार्य के स्वर्गवास होने पर	सिद्ध, श्रुतयोगि, आचार्य शान्ति भक्ति

उत्तर गुणधारी आचार्य के स्वर्गवास पर	सिद्ध, श्रुत, योगि, आचार्य शान्ति भक्ति
उत्तर गुणधारी सिद्धान्तवेत्ता आचार्य के स्वर्गवास पर	सिद्ध, चारित्र, आचार्य, शान्ति भक्ति
पाक्षिक प्रतिक्रमण में	सिद्ध, चारित्र, प्रतिक्रमण, वीर भक्ति, चतुर्विंशति भक्ति, चारित्रालोचना, गुरुभक्ति, बृहदालोचना, गुरु भक्ति, लघु आचार्य भक्ति।
चतुर्मासिक प्रतिक्रमण में	सिद्ध, चारित्र, प्रतिक्रमण वीरभक्ति, चतुर्विंशति भक्ति चारित्रालोचना, गुरुभक्ति, बृहदालोचना, गुरुभक्ति, लघु आचार्य भक्ति।
वार्षिक प्रतिक्रमण में	सिद्ध, चारित्र, प्रतिक्रमण वीरभक्ति, चतुर्विंशति भक्ति चारित्रालोचना, गुरुभक्ति, बृहदालोचना, गुरुभक्ति, लघु आचार्य भक्ति।

प्रथम खंड

महामंत्र का महात्म्यम्

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

मन्त्रं संसारसारं, त्रिजगदनुपमं,
सर्व-पापारिमन्त्रम्,
संसारोच्छेदमन्त्रं,
विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ।
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं शिवसुखजननं
केवलज्ञानमन्त्रम्,
मन्त्रं श्री जैनमन्त्रं जप जप जपितं
जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥२॥

आकृष्टिं सुरसंपदां, विदधते,
मुक्तिश्रियो वश्यताम्,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां,
विद्वेषमात्मैनसाम् ।

स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो,
मोहस्य संमोहनम् ।
पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी,
साराधना देवता ॥३॥

अनन्तानन्तसंसार-
सन्ततिच्छेदकारणम् ।
जिनराजपदाम्भोजस्मरणं
शरणं मम ॥४॥

अन्यथा शरणं नास्ति,
त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन,
रक्ष रक्ष योगीश्वर ॥५॥

न हि त्राता न हि त्राता,
न हि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो,
न भूतो न भविष्यति ॥६॥

जिने भक्तिर्जिने,
भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु,
सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥७॥

भूतकाल-तीर्थङ्करा:

(१) श्री निर्वाण (२) सागर (३) महासाधु (४) विमलप्रभ (५) श्रीधर (६) सुदत्त (७) अमलप्रभ (८) उद्धर (९) अंगिर (१०) सन्मति (११) सिन्धु (१२) कुसुमाञ्जलि (१३) शिवगण (१४) उत्साह (१५) ज्ञानेश्वर (१६) परमेश्वर (१७) विमलेश्वर (१८) यशोधर (१९) कृष्णमति (२०) ज्ञानमति (२१) शुद्धमति (२२) श्री भद्र (२३) अतिक्रान्त (२४) शान्ताश्चेतिभूतकालसम्बन्धि चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

वर्तमानकाल-तीर्थङ्करा:

(१) ऋषभ (२) अजित (३) सम्भव (४) अभिनन्दन (५) सुमतिनाथ (६) पद्मप्रभ (७) सुपार्श्व (८) चन्द्रप्रभ (९) पुष्पदन्त (१०) शीतल (११) श्रेयांस (१२) वासुपूज्य (१३) विमल (१४) अनन्त (१५) धर्मनाथ (१६) शान्ति (१७) कुन्थु (१८) अर (१९) मल्लि (२०) मुनिसुव्रत (२१) नमि (२२) नेमि (२३) पार्श्वनाथ (२४) महावीराश्चेति वर्तमानकाल-सम्बन्धि-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ।

भविष्यत्काल तीर्थङ्कराः

(१) श्री महापद्म (२) सुरदेव (३) सुपार्श्व (४) स्वयंप्रभ (५) सर्वात्मभूत (६) देवपुत्र (७) कुलपुत्र (८) उदंक (९) प्रौष्ठिल (१०) जयकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (१२) अर (अमम) (१३) निष्पाप (१४) निष्कषाय (१५) विपुल (१६) निर्मल (१७) चित्रगुप्त (१८) समाधिगुप्त (१९) स्वयम्भू (२०) अनिवृंत्तक (२१) जय (२२) विमल (२३) देवपाल (२४) अनन्तवीर्याश्चेति भविष्यत्- काल - सम्बन्धि-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

विदेह-क्षेत्रस्थ- विंशतितीर्थङ्कराः

(१) सीमन्धर (२) युगमन्धर (३) बाहु (४) सुबाहु (५) सुजात (६) स्वयंप्रभ (७) वृषभानन (८) अनन्तवीर्य (९) सुरप्रभ (१०) विशालकीर्ति (११) वज्रधर (१२) चंद्रानन (१३) भद्रबाहु (१४) भुजंगम (१५) ईश्वर (१६) नेमप्रभ (नेमि) (१७) वीरसेन (१८) महाभद्र (१९) देवयश (२०) अजितवीर्याश्चेति विदेहक्षेत्रस्थ-विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

सुप्रभातस्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥१॥

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिः
रालीढपादयुग ! दुर्द्धरकर्मदूर !
श्रीनाभिनंदन ! जिनाजित ! शम्भवाख्य !
त्वद्-ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥

छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान-
देवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र ।
पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३॥

अर्हन् सुपार्श्वकदली दलवर्णगात्र,
प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर ।
चन्द्रप्रभस्फटिकपाण्डुर पुष्पदन्त,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥४॥

संतप्तकाञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य,
श्रेयान्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक ।

बंधूक बन्धुररुचे जिनवासुपूज्य,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तुसततं मम सुप्रभातम् ॥५॥

उद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग,
स्थेमन्ननंतजिदनंतसुखाम्बुराशेः ।
दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६॥

देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ,
कुन्थो दयागुण विभूषणभूषितांग ।
देवाधिदेव भगवन्नर तीर्थनाथ,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥७॥

यन्मोहमल्ल-मदभंजन मल्लिनाथ,
क्षेमंकरावितथशासन सुव्रताख्य ।
यत्संपदाप्रशमितो नमिनामधेय,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥८॥

तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वलनेमिनाथ,
घोरोपसर्ग-विजयिन्, जिनपार्श्वनाथ ।
स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण वर्द्धमान,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥९॥

प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासं
यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः ।

ध्यायंतिं सप्ततिशतं जिनवल्लभानाम्
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं माङ्गल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनंदितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥

सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखावहम् ॥१३॥

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

- इति श्री सुप्रभात स्तोत्राय नमः -

देवदर्शन स्तोत्रम्

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥१॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभं ।
जन्म जन्म कृतं, पाप दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनं ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ॥४॥

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणं ।
जन्मदाह विनाशाय, वर्धनं सुख वारिधे ॥५॥

जीवादित्तत्त्वप्रतिपादकाय,
सम्यक्त्व मुख्याष्ट गुणाश्रयाय ।
प्रशांतरुपाय दिगम्बराय,
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥६॥

चिदानन्दैकरुपाय, जिनाय, परमात्मनै ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥७॥

अन्यथा शरणं नास्ति,
त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन,
रक्ष रक्ष जिनेश्वर (योगीश्वर) ॥८॥

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

जिने भक्ति र्जिने भक्ति, र्जिने भक्ति र्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥

जिन धर्मविनिर्मुक्तो, मा भुवंच्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

जन्म जन्मकृतं पापं, जन्म कोटिमुपार्जितं ।
जन्म मृत्यु जरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अद्या भवत्सफलता नयन द्वयस्य,
देव त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसार वारिधिरयं, चुलुकप्रमाणम् ॥१३॥

॥ इति श्री दर्शनस्तोत्राय नमः ॥

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा रचित

शारदा-स्तुति

(द्रुतविलम्बित छन्द)

जिन वरानन-नीरज निर्गते !
गणधरैः पुनरादर संश्रिते !
सकल-सत्व-हिताय वितानिते !
तदनु ते रिति हे ! किल शारदे ॥१॥

सकल-मानव मोद-विधायनी !
मधुर भाषिणी ! सुन्दर रुपिणि !
गत मले ! द्वय लोक-सुधारिणि ।
मम मुखे वस पाप-विदारिणि ॥२॥

असि सदा हि विष क्षय-कारिणि ।
भुवि कु दृष्टय हये तिविरागिनि ॥
कुरु कृपां करुणे कर वल्लकि ।
मयि विभो पद-पंकज षट् पदे ॥३॥

उपलजो निज भाव महो यदा
सुरसयोगत आशु विहाय सः ॥
कनक भाव मुपैति समेति किं ।
न शुचि भावमहं तव योगतः ॥४॥

जगति भारति ! तेऽक्षि युगं खलु ।
नय मिषेण कुमार्गरताग मम ।।
नयति हास्य स्पदंनन तदस्मयं ।
मयि ! वचोमृत पूर्व सरोवरे ।।५।।

वृष लजेन वरेण वृषापगे ।
शमय ताप महो ! मम दुस्सहम् ।
सुख मुपैति निजीयम पूर्वकम् ।
द्रुत महं लघु धीरथ येनहि ।।६।।

शिरसिते न हि कृष्ण तमाः कचा ।
स्त्वयि न ते निलयं परिगम्य वै ।।
परमतामसका बहिरागता ।
इति सरस्वति ! हे किल मे वचः ।।७।।

विगत कल्मष भाव निकेतने ।
तव कृता वर भक्तिरियं सदा ।।
बिभवदा शिवदा पविभूयता ।
मिति ममास्ति शिशोशुभ कामना ।।८।।

शशि कलेव सितासि विनिर्मला ।
विकचकंज-जय-क्षम लोचने ।।
यदि न मानव कोऽति सुखायते ।
त्व दवलोकन मात्र तया कथम् ।।९।।

शशिकला वदनप्रभया जिता ।
नयनहारितया तव शारदे ॥
सपदि वैगतमान-तयेतिसा ।
नखमिषेण तवांध्रि युगंश्रिता ॥१०॥

श्रुति युगं तव मान-मिषेण वै ।
वितय मान मतं परिदूष्य च ॥
जिन मते गदितं यतिभिः परै ।
यंदिति सूचयतीह वरं हि तत् ॥११॥

इह सदाऽऽस्वनितं शुभ कर्मणि ।
भवतु मे चरणं च सुवर्त्मनि ॥
जगति वंद्यत एव सरस्वति ।
तनुधिया सदया ह्यथ या मया ॥१२॥

॥ इति श्री सरस्वति स्तोत्राय नमः ॥

मंगलाष्टकम्

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमु-
कुटप्रद्योतरत्नप्रभा ।
भास्वत्पादनखेन्दवः
प्रवचनाम्भोधींदवः स्थायिनः ।।
ये सर्वे जिनसिद्धिसूर्यनुगतास्ते,
पाठकाः साधवः ।
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः,
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ।।१।।

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं
रत्नत्रयं पावनं ।
मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिन
पत्युक्तोऽपवर्गप्रदः ।।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं,
चैत्यालयं श्रयालयं ।
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी,
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ।।२।।

नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवन,
ख्याताश्चतुर्विंशतिः ।

श्री मन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो,
ये चक्रिणो द्वादश ।।
ये विष्णु प्रतिविष्णु लांगलधराः,
सप्तोत्तरा विंशतिः ।
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः,
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ।।३।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां,
जन्माभिषेकोत्सवो ।
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः
केवलज्ञानभाक् ।।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा,
संभाविनः स्वर्गिभिः ।
कल्याणानि च तानि पञ्च,
सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ।।४।।

कैलासे वृषभस्य निर्वृत्तिमही,
वीरस्य पावापुरे ।
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः,
सम्मेदशैलोऽर्हताम् ।।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे,
नेमीश्वरस्यार्हतो ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवा,
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ।।५।।

ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे,
मेरौ कुलाद्रौ स्थिता ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु,
तथा वक्षाररुप्याद्रिषु ॥
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे,
द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः,
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥६॥

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो,
वृद्धिंगताः पञ्च ये ।
ते चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला,
येऽष्टौविधाश्चारणः ॥
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो
ये बुद्धिऋद्धीश्वराः ।
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥७॥

देव्योऽष्टौ च जयादिका
द्विगुणिता विद्यादिका देवताः ।
श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनकाः
यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा ॥

द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा
दिक्कन्यकाश्चाष्टधाः ।
दिक्पाला दश चेत्यमी सुरगणाः
कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥८॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं
सौभाग्यसंपत्प्रदं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु
सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः ॥
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति
तैश्च सुजनैर्धर्थर्माकामान्विवता ॥
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता
निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥९॥

॥ इति श्री मंगलाष्टक स्तोत्राय नमः ॥

अद्याष्टक-स्तोत्रम्

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसंपदः ॥१॥

अद्य संसारगंभीरपारावारः सुदुस्तरः ।
सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥

अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमंगलम् ।
संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥४॥

अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादश स्थिताः ।
नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः ।
सुखसंगंसमापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥७॥

अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् ।
सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥८॥

अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।९।।

अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः ।
भुवनत्रय पूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।१०।।

अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः ।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।११।।

।। इति श्री अद्याष्टक स्तोत्राय नमः ।।

दृष्टाष्टक स्तोत्रम्

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभवसम्भवभूरिहेतुः ।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी,
नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ॥१॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी,
धामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम् ।
विधाधरामरवधूजनमुक्तदिव्य-
पुष्पांजलिप्रकरशोभित भूमिभागम् ॥२॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-
विख्यातनाकगणिकागणगीयमानम् ।
नानामणिप्रचयभासुररश्मिजाल-
व्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ॥३॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्ष-
गन्धर्वकिन्नरकरार्पितवेणु वीणा ।
संगीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादै-
रापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालम् ॥४॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-
मालाकुलालिकलितालकविभ्रमाणम् ।
माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां
लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ।।५।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेम
सारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः ।
सन्मङ्गलैः सततमष्टशतप्रभेदैः
विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ।।६।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु-
कर्पूरचन्दनतरुष्क सुगन्धिधूपैः ।
मेघायमानगगने पवनाभिघात-
चंचच्चलद्विमलकेतनतुङ्गशालम् ।।७।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र-
च्छाया निमग्नतनुयक्षकुमारवृंदैः ।
दोधूयमानसितचामरपंक्तिभासं
भामण्डलद्युतियुतप्रतिमाभिरामम् ।।८।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-
पुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिः ।
नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं
सन्मङ्गलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यम् ।।९।।

दृष्टं मयाद्य मणिकांचनचित्रतुङ्ग-
सिंहासनादिजिनबिंबविभूतियुक्तम् ।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे
सन्मङ्गलं सकलचंद्रमुनीद्रवंद्यम् ॥१०॥

॥ इति श्री दृष्टाष्टक स्तोत्राय नमः ॥

कविवर भागचंद्रजी कृत

श्रीमहावीराष्टक स्तोत्रम्

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये, मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भांति ध्रौव्य, व्ययजनिलसंतोतरहिताः ।
जगत्साक्षी मार्ग, प्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः, कमलयुगलं स्पंदरहितं
जनान्कोपापायं, प्रकटयति वाभ्यंतरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य, प्रशमितमयी वातिविमला
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

नमन्नाकेन्द्राली, मुकुटमणिभाजालजटिलं
लसत्पादांभोज, द्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वालाशांत्यै, प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

यदर्चाभावेन, प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी, गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ।
लभंते सद्भक्ताः, शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको, नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ।
अजन्मापि श्रीमान्, विगतभवरागोद्‌भुतगतिर्ः
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥५॥

यदीया वाग्गङ्गा, विविधनयकल्लोलविमला
बृहज्ज्ञानांभोभिर्ज, गति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा, बुधजनमरालैः परिचिता
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

अनिर्वारोद्रेक, स्त्रिभुवनजयी कामसुभटः
कुमारावस्थाया, मपि निजबलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानंद, प्रशमपदराज्याय स जिनः
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥७॥

महामोहातङ्क, प्रशमनपराकस्मिकभिषग्
निरापेक्षो बंधुर्वि, दितमहिमा मङ्गलकरः ।
शरण्यः साधूनां, भवभयभृतामुत्तमगुणो
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
यः पठेच्छ्रणु याच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

॥ इति श्रीमहावीराष्टक स्तोत्राय नमः ॥

श्री शुभचंद्र आचार्य विरचित

मन्दालसा स्तोत्रम्

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि ।
संसार माया परिवर्जितोऽसि
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां ।
मन्दालसा वाक्यमुपास्स्वपुत्र ॥१॥

ज्ञातोऽसि दृष्टोऽसि परात्मरुपो ।
अखण्डऽरुपोऽसि गुणालयोऽसि ।
जितेन्द्रियस्त्वं त्यजमानमुद्रा ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्वपुत्र ॥२॥

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीन ।
सिद्धस्वरुपोऽसि कलङ्कमुक्तः ।
ज्योतिःस्वरुपोऽसि विमुञ्च मायां ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्वपुत्र ॥३॥

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि ।
चिद्रुपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि ।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहम् ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्व पुत्र ॥४॥

निष्कामधामासि विकर्मरुपो ।
रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रं ।
वेत्तासि चेतोऽसि विमुञ्चकामं ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्व पुत्र ॥५॥

प्रमाद मुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि ।
अनन्तबोधादि चतुष्टयोऽसि ।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरुपम् ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्व पुत्र ॥६॥

कैवल्याभावोऽसि निवृत्तयोगो ।
निरामयो ज्ञातसमस्ततत्व: ।
परात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरुपम् ।
मन्दालसावाक्यमुपास्स्वपुत्र ॥७॥

चैतन्यरुपोऽसि विमुक्तमारोऽभावा
दिकर्मासि समग्रवेदी ।
ध्याय प्रकामं परमात्मरुपम्
मन्दालसावाक्यमुपास्स्वपुत्र ॥८॥

इत्यष्टकैर्या पुरतस्तनूजा बिबोध्य
नाथं नरनाथपूज्यं ।
प्रावृज्य भीता भवभोग भावात्
स्वकैस्तदासौसुगति प्रपेदे ॥९॥

इत्यष्टकं पापपराङ्मुखो यो
मन्दालसया भणति प्रमोदात् ।
स सद्गति श्री शुभचन्द्रभासि
सम्प्राप्य निर्वाणगति प्रपद्येत ॥१०॥

॥ इति श्री मंदालसा स्तोत्राय नमः ॥

वीतरागस्तोत्रम्

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं,
न देवो न बंधुर्न कर्ता न कर्म ।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥१॥

न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः,
न योगं न भोगं न व्याधिंन शोकं ।
न कोपं न मानं न मायं न लोभं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥२॥

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,
न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा ।
ना स्वामी न भृत्यं न देवो न मर्त्यः,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥३॥

न जन्म न मृत्यू न मोहो न चिंता,
न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा ।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥४॥

त्रिदंडे त्रिखंडे हरे विश्वनाथम्,
हृषीकेश विध्वस्तकर्मादिजालम् ।

न पुण्यं न पापं न चाक्षादि पापम्,
चिदानंदरूपं नमो वीतरागम् ॥५॥

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो,
न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः ।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा,
चिदानंदरूपं नमो वीतरागम् ॥६॥

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यात्,
न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः ।
न शिष्यो न गुरुर्न न हीनं न दीनं,
चिदानंदरूपं नमो वीतरागम् ॥७॥

इदं ज्ञानस्वरूपं स्वयं तत्त्ववेदी,
न पूर्णं न शून्यं न चैत्यंस्वरूपी, ।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकम्,
चिदानंदरूपं नमो वीतरागम् ॥८॥

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्यरत्नाकरं
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे ज्ञाते त्वया सर्वगे ।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायंति योगीश्वराः
वंदे तं हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९॥

॥ इति श्री वीतरागस्तोत्राय नमः ॥

परमानन्दस्तोत्रम्

परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थिम् ।।१।।

अनंतसुखसंपन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम् ।
अनंतवीर्यसंपन्नं, दर्शनं परमात्मनः ।।२।।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंघविवर्जितम् ।
परमानन्दसंपन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ।।३।।

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यात्, मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, परचिन्ताधमाधमा ।।४।।

निर्विकल्पसमुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसं।
विवेकमंजलिं कृत्वा, तं पिबंति तपश्विनः ।।५।।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पंडितः ।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ।।६।।

नलिनाच्च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
सोऽयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ।।७।।

द्रव्यकर्ममलैः मुक्तं, भावकर्मविवर्जितम् ।
नोकर्म-रहितं सिद्धं, निश्चयेन चिदात्मकम् ।।८।।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यंधा इव भास्करम् ।।९।।

सद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम् ।।१०।।

ये ध्यानलीना मुनयः प्रधानाः,
ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सन्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्वं
व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेवं ।।११।।

आनंदरूपं परमात्मतत्त्वं,
समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं,
जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ।।१२।।

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम् ।
अनंतसुखसंपन्नम्, सर्वसंघविवर्जितम् ।।१३।।

लोकमात्रप्रमाणोयं, निश्चयेन हि न संशयः ।
व्यवहारे तनुर्मात्रः, कथितः परमेश्वरैः ।।१४।।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा निर्विकल्पसमाधितः ।।१५।।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥१६॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकः ॥१७॥

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम् ।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवः ॥१८॥

स एव परमानंदः, स एव सुखदायकः ।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः ॥१९॥

परमाह्लादसंपन्नं, रागद्वेषविवर्जितम् ।
सोहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पंडितः ॥२०॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥२१॥

तत्सदृशं निजात्मानं, यो जानाति स पंडितः ।
सहजानंदचैतन्यं, - प्रकाशाय महीयसे ॥२२॥

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैलं देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पंडितः ॥२४॥

॥ इति श्री परमानन्दस्तोत्राय नमः ॥

श्री भट्टाऽकलंक प्रणीत

स्वरूपसम्बोधनम्

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना ।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्ति नमामि तम् ॥१॥

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः ।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥२॥

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मै, रचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञानदर्शनतः तस्मात्, चेतनाचेतनात्मकः ॥३॥

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥४॥

स्वदेहप्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः ।
ततः सर्वगतश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः ।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥५॥

नानाज्ञानस्वभावत्वा, देकोऽनेकोऽपि नैव सः ।
चैतनेकस्वभावत्वा, देकानेकात्मको भवेत् ॥६॥

नाऽवक्तव्यः स्वरूपाद्यैः, निर्वाच्यः परभावतः ।
तस्मान्नैकांततो वाच्यो, नापि वाचामगोचरः ॥७॥

स स्याद्विधिनिषेधात्मा, स्वधर्मपरधर्मयोः ।
समूर्तिर्बोधमूर्तित्वाद, मूर्तिश्च विपर्ययात् ॥८॥

इत्याद्यनेककर्मत्वं, बंधमोक्षौ तयोः फलम् ।
आत्मा स्वीकुरुते, तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥९॥

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु ।
बहिरन्तरुपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥१०॥

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रमुपायः स्वात्मलब्धये ।
तत्त्वे याथात्म्य संस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतम् ॥११॥

यथावद्वस्तुनिर्णीतिः, सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत् ।
तत्स्वार्थव्यवसायात्म कथञ्चित्प्रमितेः पृथक् ॥१२॥

दर्शनज्ञानपर्या, येषूत्तरोत्तरभाविषु
स्थिरमालंबनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुखदुःखयोः ॥१३॥

ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः ।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवापरम् ॥१४॥

तदेतन्मूलहेतोः स्यात्, कारणं सहकारकम् ।
तद्बाह्यं देशकालादि, तपश्च बहिरंगकम् ॥१५॥

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः ।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥१६॥

कषायै रञ्जितं, चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते ।
नीली रक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः॥१७॥

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः ।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्वचिंतापरो भव ॥१८॥

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः ।
निरालम्बो भवान्यस्मा, दुपेये स्वावलम्बनः ॥१९॥

स्व परं चेति वस्तुत्वं, वस्तुरूपेण भावय ।
उपेक्षा भावनोत्कर्ष-पर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥२०॥

मोक्षेऽपि यस्य नकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति ।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी कांक्षा न क्वापि योजयेत् ॥२१॥

सोऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभां यदि चिन्त्यते ।
आत्माधीने सुखे तात यत्नं किं न करिष्यसि ॥२२॥

स्वं परं विद्धि तत्रापि व्यामोहं छिन्धि किन्त्वमम् ।
अनाकुलस्वसंवेद्ये स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२३॥

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरे ।
स्वस्मिन् ध्यात्वालभेत्स्वेस्थमानंदममृतं पदम् ॥२४॥

इति स्वतत्त्वं परिभाव्यवाङ्मयं,
यएतदाख्याति श्रृणोति चादरात् ।
करोति तस्मै परमार्थसम्पदं,
स्वरूपसंबोधन पंचविंशति

॥ इति श्री स्वरूपसम्बोदन स्तोत्राय नमः ॥

अकलंकस्तोत्रम्

(शार्दूलविक्रीडितछन्दः)

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं, सालोकमालोकितं,
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले, रेखात्रयं सांगुलि।
रागद्वेषभयामयान्तकजरा, लोलत्वलोभादयो,
नालं यत्पदलंघनाय स, महादेवो मया वंद्यते ।।१।।

दग्धं येन पुरत्रयं शरभुवा, तीव्रार्चिषा वह्निना,
यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने, यस्यात्मजो वा गुहः।
सोऽयं किं मम शंकरो भयतृषा, रोषार्तिमोहक्षयं,
कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां, क्षेमंकरः शंकरः ।।२।।

यत्नाद्येन विदारितं कररूहै, दैत्येन्द्र वक्षः स्थलं।
सारथ्येन धनंजयस्य समरे, योऽमारयत्कौरवान्।
नासौ विष्णुरनेककालविषयं, यज्ज्ञानमव्याहतं,
विश्वं व्याप्य विजृंभते, स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम।।३।।

उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं, चेतो यदीयं पुनः,
पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो, यस्याकृतार्थस्थितिम्।
आविर्भावयितुं भवंति स कथं, ब्रह्मा भवेन्मादृशां,
क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो, ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तु नः ।।४।।

यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं, जीवं च शून्यं वदन्,
कर्त्ता कर्मफलं न भुक्त इति यो, वक्ता स बुद्धः कथम्।
यज्ज्ञानं क्षणवर्ति वस्तु सकलं, ज्ञातुं न शक्तं सदा,
यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं, साक्षात्स बुद्धो मम ॥५॥

(स्त्रग्धरा छन्द)

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः, शूलपाणिः कथं स्यात्,
नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं, सांगनः सात्मजश्च।
आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति, किं वेत्ति नात्मान्तरायं,
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः, कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥६॥

ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेशविभ्रान्तचेताः,
शम्भुः खट्वाङ्गधारी, गिरिपतितनयापाङ्गलीलानुविद्धः।
विष्णुश्चक्राधिपः, सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहात्,
अर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः, कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥७॥

एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां, चक्रे सहस्रं भुजान्,
एकः शेषभुजंगभोगशयने, व्यादाय निद्रायते।
द्रष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगा, देकश्चतुर्वक्त्रताम्,
एते मुक्तिपथं वदंति विदुषा, मित्येतदत्यद्भुतम् ॥८॥

यो विस्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं, वचनमनुपमं, निष्कलंकं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवंद्यं, सकलगुणनिधिं, ध्वस्तदोषद्विषन्तं
बुद्धं वा वर्ध्दमानं, -शतदलनिलयं, केशवं वा शिवं वा ॥९॥

माया नास्ति जटा-कपाल-मुकुटं, चन्द्रो न मूर्धावली
खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः, शूलं न चोग्रं मुखम्।
कामो यस्य न कामिनी न, च वृषो-गीतं न नृत्यं पुनः
सोऽस्मान् पातु निरंजनो जिनपतिः, सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः॥१०॥

नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः, शम्भोर्न मुद्रांकितं
नो चन्द्रार्ककरांकितं सुरपते, वंज्रांकितं नैव च।
षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं, जैनेन्द्रमुद्रांकितम्॥११॥

मौञ्जी दण्ड-कमण्डलु-प्रभृतयो, नो लाञ्छनं ब्रह्मणो
रुद्रस्यापि जटा-कपाल मुकुटं, -कौपीन-खट्वांगनाः।
विष्णोश्चक्र-गदादि-शंख मतुलं, बुद्धस्य सक्ताम्बरं
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं, जैनेन्द्र-मुद्रांकितम्॥१२॥

नाहंकारवशीकृतेन मनसा, न द्वेषिणा केवलं।
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने, कारुण्यबुद्ध्या मया॥
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि, प्रायो विदग्धात्मनो।
बौद्धौघान्सकलान् विजित्य स घटः, पादेन विस्फालितः॥१३॥

खटवांगं नैव हस्ते न च हृदि रचिता, लम्बते मुण्डमाला,
भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता, नैव हस्ते कपालं।
चन्द्रार्द्धं नैव मूर्धन्यपि वृषगमनं, नैव कण्ठे फणीन्द्रः
तं वन्दे त्यक्तदोषं, भवभयमथनं, चेश्वरं देवदेवं ।।१४।।

किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा, देवोऽकलंकः कलौ
काले यो जनतासु धर्मनिहितो, देवोऽकलंको जिनः।
यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरी, जाले प्रमेयाकुला
निर्मग्ना तनुतेतरां भगवती, ताराशिरःकम्पनम् ।।१५।।

सा तारा खलुदेवताभगवती, मन्याऽपि मन्यामहे
षण्मासावधिजाड्यसांख्यभगवद्, भट्टाकलंकप्रभोः।
वाक्कल्लोलपरंपराभिरमते, नूनं मनोमज्जन-
व्यापारं सहतेस्म विस्मितमतिः, संताडितेतस्ततः ।।१६।।

।। इति श्री अकलंक स्तोत्राय नमः ।।

अजित ब्रह्मा विरचित

कल्याणालोचना स्तोत्रम्

परमात्मानं वर्द्धितमतिं परमेष्ठिनं
करोमि नमस्कारम् ।
स्वकपरसिद्धिनिमित्तं
कल्याणालोचनां वक्ष्ये ॥१॥

रे जीवा ! अनंतभवे
संसारे संसारताबहुवारम् ।
प्राप्तो न बोधिलाभः
मिथ्यात्वविजृंभितप्रकृतिभिः ॥२॥

संसारभ्रमणगमनं कुर्वन्
आराधितो न जिनधर्मः ।
तेना विना वरं दुःखं
प्राप्तोऽसि अनन्तवारम् ॥३॥

संसारे निवसन्
अनन्तमरणानि प्राप्तोऽसि त्वम् ।
केवलिना विना तेषां
संख्यापर्याप्तिर्न भवति ॥४॥

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि
षट्षष्ठिसहस्रवारमरणानि ।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि
निगोदमध्ये ॥५॥

विकलेन्द्रिये अशीतिं
षष्ठिं चत्वारिंशदेव जानीहि ।
पंचेन्द्रिये चतुर्विंशति
क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्तस्य ॥६॥

अन्योन्यं क्रुध्यन्तो जीवा
प्राप्नुवन्ति दारुणं दुःखम् ।
न खलु तेषां पर्याप्तिः
कथं प्राप्नोति धर्ममतिशून्यः ॥७॥

माता पिता कुटुम्बः स्वजनजनः
कोपि नायाति सह ।
एकाकी भ्रमति सदा न हि
द्वितीयोऽस्ति संसारे ॥८॥

आयुःक्षयेपि प्राप्ते न समर्थः
कोपि आयुर्दाने च ।
देवेन्द्रो न नरेन्द्रो
मण्यौषधमन्त्रजालानि ॥९॥

सम्प्रति जिनवरधर्मं
लब्धोऽसि त्वं विशुद्धयोगेन ।
क्षमस्व जीवान् सर्वान्
प्रत्येकसमये प्रयत्नेन ॥१०॥

त्रीणि शतानि त्रिषष्ठिमिथ्यात्वानि
दर्शनस्य प्रतिपक्षाणि ।
अज्ञानेन श्रद्धितानि मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥११॥

मधुमांसमद्यद्योतप्रभृतीनि
व्यसनानि सप्तभेदानि ।
नियमो न कृतस्तेषां मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥१२॥

अणु व्रतमहाव्रतानियानि
यमनियमशीलानि साधुगुरुदत्तानि ।
यानि यानि विराधितानि खलु
मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥१३॥

नित्येतरधा तु सप्त तरुदश
विकलेन्द्रियेषु षट् चैव ।
सुरनारकतिर्यक्षु चत्वारश्चतुर्दश
मनुष्ये शतसहस्राणि ॥१४॥

एते सर्वे जीवाश्चतुरशी
तिलक्षयोनिवशे प्राप्तः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥१५॥

पृथ्वी जलाग्निवायुतेजो
वनस्पतयश्च विकलत्रयाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥१६॥

मलसप्ततिर्जिनोक्ता व्रतविषये वा
विराधना विविधा ।
सामायिकक्षमादिका खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥१७॥

मलसत्तरा जिणुत्ता वयविसये जा
विराहणा विविहा ।
सामइय खमइया खलु मिच्छा मे
दुष्कृतं भवतु ॥१८॥

फलपुष्पत्वग्वल्ली अगालितस्नानं
च प्रक्षालनादिभिः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥१९॥

कन्दफलमूलबीजानि
सचित्तरजनीभोजनाहाराः ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२०॥

नो पूजा जिनचरणे
न पात्रदानं न चेर्यागमनम् ।
न कृता न भाविता मया मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२१॥

एकः स्वभावसिद्धः, स आत्मा विकल्पपरिमुक्ताः।
बह्वारम्भपरिग्रह, सावद्यानि बहूनि प्रमाददोषेण।
जीवा विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ॥२२॥

सप्ततिशतक्षेत्रभवाः
अतीतानागतवर्तमानजिनाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२३॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः
साधवः पंचपरमेष्ठिनः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२४॥

जिनवचनं धर्मः चैत्यं जिनप्रतिमाः
कृत्रिमा अकृत्रिमाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२५॥

दर्शनज्ञानचारित्रे दोषा
अष्टाष्टपंचभेदाः हि ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२६॥

मतिः श्रुतमवधिः मनःपर्ययं तथा
केवलं च पंचकम् ।
ये ये विराधिताः खलुमिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२७॥

आचारादीन्यंगानि पूर्वप्रकीर्णकानि
जिनैः प्रणीतानि ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२८॥

पंचमहाव्रतयुक्ता
अष्टादशसहस्रशीलकृतशोभाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥२९॥

लोके पितृसमाना
ऋद्धिप्रसन्ना महागणपतयः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥३०॥

निर्ग्रंथा आर्यिकाः
श्रावक-श्राविकाश्च चतुर्विधः संघः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥३१॥

देवा असुरा मनुष्या नारकाः
तिर्यग्योनिगतजीवाः ।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥३२॥

क्रोधो मानो माया
लोभ एते रागद्वेषाः ।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥३३।

परवस्त्रं परमहिला
प्रमादयोगेनार्जितं पापम् ।
अन्येपि अकरणीया मिथ्या मे
दुष्कृतं भवतु ॥३४॥

एकः स्वभावसिद्धः

स आत्मा विकल्पपरिमुक्ताः ।

अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः

परमात्मा ॥३५॥

अरसोऽरूपोऽगंधोऽव्या

बाधोऽनन्तज्ञानमयः ।

अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः

परमात्मा ॥३६॥

ज्ञेयप्रमाणं ज्ञानं समयेनैकेन

भवति स्वस्वभावे ।

अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः

परमात्मा ॥३७॥

एकानेकविकल्पप्रसाधने

स्वकस्वभावशुद्धगतिः ।

अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः

परमात्मा ॥३८॥

देहप्रमाणो नित्यो लोकप्रमाणोऽपि

धर्मतो भवति ।

अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः

परमात्मा ॥३९॥

केलदर्शनज्ञाने समयेनैकेन
द्वावुपयोगौ ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४०॥

स्वकरूपसहजसिद्धो
विभावगुणमुक्तकर्मव्यापारः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४१॥

शून्यो नैवाशून्यो
नोकर्मकर्मवर्जितो ज्ञानम् ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४२॥

ज्ञानतो यो न भिन्नः
विकल्पभिन्नः स्वभावसुखमयः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४३॥

अच्छिन्नोऽवच्छिन्नः
प्रमेयरूपत्वमगुरुलघुत्वं चैव ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४४॥

शुभाशुभभावविगतः
शुद्धस्वभावेन तन्मयं प्राप्तः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४५॥

न स्त्री न नपुंसको न पुमान्
नैव पुण्यपापमयः ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः
परमात्मा ॥४६॥

तव को न भवति स्वजनः
त्वं कस्य न बंधुः स्वजनो वा ।
आत्मा भवेत् आत्मा एकाकी
ज्ञायकः शुद्धः ॥४७॥

जिन देवो भवतु सदा मतिः
सुजिनशासने सदा भवतु ।
सन्यासेन च मरणं भवे भवे
भवतु मम सम्पत् ॥४८॥

जिनो देवो जिनो देवो
जिनो देवो जिनो जिनः ।
दयाधर्मो दयाधर्मो
दयाधर्मो दया सदा ॥४९॥

महासाधवः महासाधवः
स्थ्येमहासाधवो दिगंबराः ।
एवं तत्त्वं सदा भवतु
यावन्नो मुक्तिसंगमः ॥५०॥

एवमेव गतः
कालोऽनन्तो हि दुःखसंगमे ।
जिनोपदिष्टसंन्यासे न
यत्नारोहणा कृता ॥५१॥

सम्प्रति एव
सम्प्राप्ताऽऽराधना जिनदेशिता ।
का का न जायते मम
सिद्धिसन्दोहसम्पत्तिः ॥५२॥

अहो धर्मः अहो धर्मः,
अहो मे लब्धिर्निर्मला ।
संजाता सम्पत्सारा येन
सुखमनुपमम् ॥५३॥

एवमाराधयन्नालोचनवंदनप्रतिक्रमणानि ।
प्राप्तनोति फलं च तेषां निर्दिष्टमजितब्रह्मणा ॥५४॥

॥ इति श्री कल्याणालोचन स्तोत्राय नमः ॥

श्रीमानतुंगाचार्य विरचित

भक्तामर स्तोत्रम्

युगादिकर्ता को नमन

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्
उद्योतकं दलित पापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात्
उद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

असमर्थता प्रकट

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब
मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम् ॥३॥

अल्पज्ञता ज्ञापन

वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र ! शशांककांतान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम्
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

भक्ति और शक्ति

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रम्
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

लघुता का प्रदर्शन

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

स्तुति का फल

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धम्
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सुर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

स्वाभिमानता

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेदम
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

जिननाम भी पाप का नाशक

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषम्
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥

भक्ति का उदार फल

नात्यद्‌भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः !
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

भाव पूर्वक जिन दर्शन की महिमा

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयम्
नान्यत्रतोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।

पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेः रसितुं क इच्छेत् ॥११॥

अद्वितीय सुन्दररूप

यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

अनुपम रूप

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

जिनाश्रय की महिमा

सम्पूर्ण-मण्डल-शशांककलाकलाप
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथमेकम्
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

मेरूवत् अचल

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिः
नींतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

अपूर्व दिपक

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

अपूर्व सूर्य

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

अपूर्व चन्द्रमा

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारम्
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।

विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥१८॥

अन्धकार का नाशक

किं शर्वरीषु शशिनाऽन्हि विवस्वता वा
युष्मन्मखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्न शालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभार नम्रैः ॥१९॥

अनुपम ज्ञानी

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशम्
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वम्
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

संतोषप्रदाता

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टाः
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

अनुपम जननी सुत

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिम्
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

मार्गदर्शक

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युम्
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥

सहस्र नाम से स्तुति

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यम्
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकम्
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

बुद्ध, शंकर, ब्रह्मा जिन ही है

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।

धाताऽसि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

नमस्कार

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

पूर्ण निर्दोष

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैः
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविबुधाश्रयजागतगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

अशोक वृक्ष

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखम्
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानम्
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

सिंहासन

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानम्
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

चामर

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार ।
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्रत्रय

छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम्
प्रख्यापयस्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

दुदुंभिनाद

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभागः
त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराज ! जय घोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

पुष्पवृष्टि

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

भामंडल

शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्यु तिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्पपि निशामपि सोमसौम्याम्॥३४॥

दिव्यध्वनि

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणप्रयोज्यः ॥३५॥

चरण तल में कलम रचना

उन्निद्रहेमनवपंकज-पुंजकान्ति
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

सूर्य और ग्रह

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

हाथी का भय

श्च्योतन्मदाविलविलोलक-पोलमूल
मत्त-भ्रमद् भ्रमरनाद्विवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तम्
दृष्ट्वाऽभयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

सिंह भय

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त
मुक्ताफलप्रकर भूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥

अग्नि भय

कल्पान्तकालपवनोद्धतवन्हिकल्पम्
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तम्
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

सर्प भय

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलम्
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंकः
त्वन्नामनागदनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

युद्ध भय

वल्गत्तुरंगगजगर्जित भीमनाद
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम्
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह
वेगावतार तरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षाः
त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

समुद्र भय

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र
पाठीनपीठभयदोल्वणबाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

रोग भय

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

बन्धन भय

आपादकण्ठमुरुश्रृङ्खलवेष्टिताङ्गाः
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

स्तुति से अष्टभय - मुक्ति

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।

तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

जिन स्तुति के कंठस्थ करने का फल

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्तेजनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

॥ इति श्री मानतुङ्गाचार्यविरचित भक्तामरस्तोत्राय नमः ॥

श्री कुमुदचंद्राचार्यप्रणीत

कल्याणमंन्दिर स्तोत्रम्

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि-
भीताभयप्रदमनिन्दितमंघ्रिपद्मम् ।
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तु
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रंसुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधा तुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोः
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप
मस्मादृशाः कथमधीशभवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥३॥

मोहक्षयादनु भवन्नपि नाथमर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयस. प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेतकेनजलधेः र्न नु रत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥

ये योगिनामपि नयान्तिगुणस्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ।
जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग
मभ्यागते वन शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र
रौद्रैरूपद्रव शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनी स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेनय दुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेषनून
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपिहतप्रभावाः
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्द्धरवाडवेन ॥११॥

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृ-तमित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥

चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ।।२०।।

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसंमदसङ्गभाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ।।२१।।

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ।।२२।।

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य शिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
चामी कराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ।।२३।।

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ।।२४।।

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन
    मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
    मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ
    तारान्वितो विधुरयं विहतान्धकारः ।
मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्र
    व्याजात्त्रिधा धृदधनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन
    कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्यहेमरजत-प्रविनिर्मितेन
    सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

दिव्यस्त्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना
    मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र
    त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
    यत्तारयस्त्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिवनिृपस्य सतस्तवैव
    चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरित विश्वविकासहेतु ॥३०॥

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीम
भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारिदध्रे
तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृति मर्त्यमुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रतिभवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः
पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव
मन्ये मयामहितमीहितदानदक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

नूनं न मोहतिमरावृतलोचनेन
पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥३८॥

त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य
कारुण्य पुण्यवसते वशिनां वरेण्य ।
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥३९॥

निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य
मासाद्य सादितरिपुप्रथितावदानम् ।
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन हा हतोऽस्मि ॥४०॥

देवेन्द्रवन्द्य विदिताखिलवस्तुसार-
संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ ।
त्रायस्व देव करुणान्हृद मां पुनीही
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥४१॥

यद्यस्ति नाथ भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां
भक्ते फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुलक कञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्म्या
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्याः ॥४३॥

जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वराः, स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

॥ इति श्री सिद्धसेनदिवाकरप्रणीत कल्याणमन्दिरस्तोत्राय नमः ॥

श्री वादिराज-प्रणीत

एकीभाव-स्तोत्रम्

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति ।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनवरे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ।।१।।

ज्योतिरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वंशहेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः ।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानः
तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ।।२।।

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्र मन्त्रैर्भवन्तम् ।
यश्चाभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यात्
निष्कास्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ।।३।।

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम् ।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टः
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ।।४।।

लोकस्यकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुः
त्वय्येवाऽसौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका ।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥५॥

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी ।
तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥६॥

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेष मनो मे ।
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥७॥

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्दधाम प्रविष्टम् ।
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुंठन्तिः॥८॥

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः ।
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥९॥

ह्रद्यः प्राप्तोमरुदपी भवन्मूर्ति शैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबन्धं धुनोति ।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टः
तस्याशक्यः क इह भुवने देवलोकोपकारः ॥१०॥

जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम् ।
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥१२॥

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम् ।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो
मुक्तिद्वारं परिदृढमहा मोहमुद्राकवाटम् ॥१३॥

प्रच्छन्नः खल्वयमघमवैरन्धकारैः समन्तात्
पन्था मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः ।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः ॥१४॥

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषाम् ।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्धप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥१५॥

प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धे
र्या देव त्वत्पदकमलयोः सङ्गता भक्तिगङ्गा ।
चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥१६॥

प्रादुर्भूतस्थिरपदसुखं त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा ।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां
दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ती ॥१७॥

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गीतरङ्गैः
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते ।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ती ॥१८॥

आहार्येभ्यः स्पृहयती परं यः स्वभावादहृद्य ।
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः ।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यै वेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमीत्थम् ।।२०।।

वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्‌गारः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते ।
मैवं भूवंस्तदपिभगवन्भक्तिपीयूषपुष्टाः
ते भव्यानामभिमतफलाः पारिजाता भवन्ति ।।२१।।

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम् ।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी
क्वैवंभूतं भुवनतिलकः प्राभवं त्वत्परेषु ।।२२।

देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्ति
तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिर्जनो यः ।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जाहूर्ति पन्थाः
तत्त्वग्रन्थस्मरणविषयो नैष मोमूर्ति मर्त्यः ।।२३।।

चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं
देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गः स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणांनां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ।।२४।।

भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद ! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम् ।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ।।२५।।

वादिराजमनुशाब्दिकलोकः वादिराजमनुतार्किकसिंहः ।
वादिरामनुकाव्यकृतस्ते वादिराजमनुभव्यसहायः ।।२६।।

।। इति श्री वादिराजकृत एकीभावस्तोत्राय नमः ।।

श्री धनञ्जयकविप्रणीत

विषापहार-स्तोत्रम्

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त,
व्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः ।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्यः,
पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥१॥

परैरचिन्त्यं युगभारमेकः, स्तोतुं
वहन्योगिभिरप्यशक्यः ।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः,
किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥२॥

तत्त्याजशक्रः शकनाभिमानं, नाहं
त्यजामि स्तवनानुबन्धम् ।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं,
वातायनेनेव निरूपयामि ॥३॥

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो,
विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं कियान्कीदृश मित्यशक्यः
स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥४॥

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै
रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम् ।
हिताहितान्वेषणमान्धभाजः,
सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः ॥५॥

दाता न हर्त्ता दिवसं विवस्वा,
नद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः ।
सव्याजमेव गमयत्यशक्तः,
क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि,
त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुखःम् ।
सदावदातद्युतिरेकरूप-
स्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

अगाधताऽब्धेः स यतः पयोधि,
र्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र ।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव,
व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥८॥

तवानवस्था परमार्थतत्त्वं,
त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषी,
विरुद्धवृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥९॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्
नुद्धूलितात्मा यदिनाम शम्भुः ।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः,
किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा,
तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम् ।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव,
स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥

कर्मस्थितिंजन्तुरनेकभूमिं,
नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ,
जिनेन्द्रनौनाविकयोरिवाख्यः ॥१२॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्,
धर्माय पापानि समाचरन्ति ।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं,
निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥

विषापहारं मणिमौषधानि,
मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च ।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति,
पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं,
देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं,
सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥

त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी,
स्वामीति संख्यानियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यं,
स्तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम् ॥१६॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं,
नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो,
रुद्विभ्रतश्च्छत्रमिवादरेण ॥१७॥

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः,
स चेत् किमिच्छाप्रतिकूलवादः ।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं,
तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥१८॥

तुङ्गात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च,
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे,
र्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥१९॥

त्रैलोक्यसेवानियमाय दण्डं,
दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं
तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥२०॥

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः,
श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः ।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकार,
स्थायी क्षतेऽसौ न तथातमःस्थम् ॥२१॥

स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि,
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-
स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥२२॥

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव,
त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं,
प्राणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥२३॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः,
सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुर्मू-
लस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥२४॥

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्ते
श्चतुर्गतीनां गहनं परेण ।
सर्वंमया दृष्टमिति स्मयेन,
त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोके ॥२५॥

स्वर्भानुरर्कस्यहविर्भु जोऽम्भः,
कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः ।
संसारभोगस्य वियोगभावो,
विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥२६॥

अजानतस्त्वां नमतः फलं-
यत्तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।
हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं
तस्य बुद्धया वहतो न रिक्तः ॥२७॥

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायै,
र्दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः ।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं,
दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥२८॥

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं,
हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति,
ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते,
काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्यदंशुः,
स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना,
बहुप्रकारा बहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने न तेषां,
गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१॥

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या,
स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं,
केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥३२॥

ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं,
नित्यं परं ज्योतिरनन्तशक्तिम् ।
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं,
नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥३३॥

अशब्दमस्पर्शमरूपगन्धं,
त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम् ।
सर्वस्य मातारमेयमन्यै-
र्जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥३४॥

अगाधमन्यैर्मनसाऽप्यलङ्घ्यं,
निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः ।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं
पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥

त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते,
यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत् ।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रिकल्पः,
पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोऽभूत् ॥३६॥

स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा,
न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम् ।
न लाघवं गौरवमेकरूपं,
वन्दे विभुं कालकलामतीतम् ॥३७॥

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्या,
द्वरं न याचे त्व मुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥३८॥

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध,
स्त्वय्येव शक्तां दिशभक्तिबुद्धिम् ।
करिष्यते देव तथा कृपां मे,
को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥३९॥

वितरति विहिता यथाकथंचिज्जिन
विनताय मनीषितानि भक्तिः ।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषाद्दिशति
सुखानि यशो धनं जयं च ॥४०॥

॥ इति श्रीधनंजयकृतं विषापहारस्तोत्राय नमः ॥

श्री भूपालकविप्रणीत

जिनचतुर्विंशतिका

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं, कीर्तिप्रमोदास्पदं।
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमा, क्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं, यः प्रार्थितार्थप्रदं।
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांङ्घ्रिद्वयम् ॥१॥

शान्तं वपुः श्रवणहारिवचश्चरित्रं,
सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः।
संसारमारवमहास्थलरुंद्रसान्द्र-
च्छायामहीरुह भवन्तमुपाश्रयन्ते ॥२॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्धकूपोदरा।
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलव, ज्जन्मास्मि चाद्यस्फुटम्।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदा, नन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवर काननेन्दुममृत, स्यन्दिप्रभाचन्द्रिकम् ॥३॥

निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखा, रत्नप्रदीपावली।
सान्द्रीभूतमृगेन्द्रविष्टरतटी, माणिक्यदीपावलिः।
क्वेयं श्रीः क्व च निस्पृहत्व, मिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः।
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा, लोकेश लोकोत्तरः ॥४॥

राज्यं शासनकारिनाकपति य, त्त्यक्तं तृणावज्ञया।
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा, यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकर, स्यान्तःकृतं तत्त्वया।
सैषाऽऽश्चर्यपरम्परा जिनवर, क्वान्यत्र संभाव्यते।।५।।

दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्, पात्राय सद्वृत्तये।
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं, पूजाश्च वन्हयः कृताः।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः, सर्वः समासादितो।
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः, श्रद्धापरेण क्षणम्।।६।।

प्रज्ञापारमितः स एव भगवन्, पारं स एव श्रुत-
स्कन्धाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति, श्लाघ्यः स एव ध्रुवम्।
नीयन्ते जिन येन कर्णहृदया, लंकारतां त्वद्गुणाः।
संसाराहिविषापहारमणाय, स्त्रैलोक्यचूडामणेः।।७।।

मालिनी छन्दः

जयति दिविजवृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचि-
र्निचय रुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मीम्,
युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः।।८।।

स्रग्धरा छन्दः

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्र-भाषा
पुष्पोघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुरमनुजसभाम्भोजिनी भानुमाली
पायान्नः पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेन्द्रः ॥९॥

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवन, नटन्नाकनारीनिकाय
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदा, तोद्यमाद्यन्निलिम्पः।
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनो दामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते ॥१०॥

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने, नेत्रामृतस्यन्दिनं।
त्वद्वक्त्रेंन्दुमतिप्रसादसुभगै, स्तेजोभिरुद्भासितम्।
तेनालोकयता मयानतिचिरा, च्चक्षुः कृतार्थीकृतं।
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकर, व्याजृम्भमाणोत्सवम् ॥११॥

वसंत तिलका छन्दः

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चिन्
मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम्।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपातः
तस्य त्वमेव विजयी जिनराजमल्लः ॥१२॥

मालिनी छन्दः

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्,
कुसुमितमतिसान्द्रं तत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ।।१३।।

त्रिभुवनवनपुष्पात्पुष्पकोदंडदर्प-
प्रसरदवनवाम्भोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः।
स जयति जिनराजव्रातजीमूतसङ्घः
शतमखशिखिनृत्यारम्भनिर्बन्धबन्धुः ।।१४।।

स्रग्धरा छन्दः

भूपालः स्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणि नेत्रालिमाला
लीलाचैत्यस्यचैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलास्त्रि परित्य,
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः
संश्रितोऽस्मीवमुक्तिम् ।।१५।।

वसंततिलका छन्द

देव त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणेऽस्मिन्,
अर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।

श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि,
भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि ॥१६॥

मालिनी छन्दः

जयति सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोऽयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखरशुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः ॥१७॥

विमनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्ताकान्ति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो,
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ॥१८॥

वसंततिलका छन्दः

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय,
द्रष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं,
त्रैलोक्यमङ्गलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥१९॥

शार्दूलविक्रीडित छन्दः

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम,
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः।

त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसीहंसस्त्वमुत्तंसकैः,
कैर्भूपाल न धार्यसे गुणमणिस्त्रङ्मालिभिर्मौलिभिः ॥२०॥

मालिनी छन्दः

शिवसुखमजरश्रीसङ्गमं चाभिलष्य,
स्वमभिनिगमयन्ति क्लेशपाशेन केचित्।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्तः,
तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ॥२१॥

शार्दूल विक्रीडित छन्दः

देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गनामङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्वदेवा जगुः।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे।
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ॥२२॥

देव त्वज्जननाभिषेकसमये, रोमाञ्चसत्कञ्चुकैः।
देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्तनविधौ, लब्धप्रभावैः स्फुटम्।
किं चान्यत्सुरसुन्दरी, कुचतटप्रान्तावनद्धोत्तम-
प्रेङ्खद्वल्लकिनादझंकृमहो, तत्केन संवर्ण्यते ॥२३॥

देव त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुजदल, स्मेरेक्षणं पश्यतां।
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो, दृष्टेरियान्वर्तते।

साक्षात्तत्रभवन्तमीक्षितवतां, कल्याणकाले तदा।
देवानामनिमेषलोचनतया, वृत्तः स किं वर्ण्यते ।।२४।।

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां, दृष्टं निधीनां पदं।
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं, दृष्टं च चिन्तामणेः।
किं दृष्टेरथवानुषाङ्गिकफलै, रेभिर्मयाद्य ध्रुवं।
दृष्टं मुक्तिविवाहमङ्गलगृहं, दृष्टे जिनश्रीगृहे ।।२५।।

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र विकसद्, भूपेन्द्रनेत्रोत्पलैः।
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शंतिं मया गम्यते।
देव त्वद्गतचेतसैव भवतो, भूयात्पुनर्दर्शनम् ।।२६।।

।। इति श्रीभूपालकविप्रणीत जिनचतुर्विंशतिक स्तोत्राय नमः ।।

श्री जिनसेनाचार्यकृतं

श्री जिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥१॥

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२॥

कर्मशत्रुहरणं देवमामनन्ति मनीषिणः ।
त्वामानमत्सुरेण्मौलिभामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥

ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः ।
अनन्तभवसन्तानजयादासीरनन्तजित् ॥४॥

त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान् ॥५॥

विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्यबांधवः ।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥६॥

त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुरमर्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्द्धं नारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः ।
शंकरः कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

वृषभोऽसि जनज्जेष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः ।
नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनंदनः ॥१०॥

त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्धसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः ॥११॥

चतुःशरणमांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरसूधीः ।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

स्वर्गावतरणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥

संनिष्क्रान्तावघोराय पदं परममीयुषे ।
केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तपदभाजिने ।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥

ज्ञानावरणनिर्ह्रासात् नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥

नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये ।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥

नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोऽनन्तसुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्तलोकाय लोकालोकावलोकिने ॥१८॥

नमस्तेऽनन्तदानाय नमस्तेऽनन्तलब्धये ।
नमस्तेऽनन्तभोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने ॥१९॥

नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

नमः परमविद्याय नमः परमतच्छिदे ।
नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे ।
नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥

परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमःप्राप्तधाम्ने परतरात्मने ॥२३॥

नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबंध नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायाऽनिन्द्रियात्मने ॥२५॥

कायबन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ॥२६॥

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः ।
नमः परमयोगीन्द्रवन्दितांघ्रिद्वयाय ते ॥२७॥

नमः परमविज्ञान नमः परमसंयम ।
नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः ॥२८॥

नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशकस्पृशे ।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥

संज्ञसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥

अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाऽक्षरात्मने ॥३२॥

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः ।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥

एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥३४॥

॥ इति श्री पीठिका ॥

प्रसिद्धाष्टसहस्त्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम् ।
नाम्नामष्टसहस्त्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥३॥

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥४॥

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ॥५॥

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः ।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ॥६॥

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः ।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः ।
ब्रह्मविद्ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्तः सिद्धशासनः ।
सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

॥ इति श्री मदादिशतम् ॥१॥

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्ता निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥

अग्रणीग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो
भवान्तकः ॥७॥

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः ।
स्वयंप्रभः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥

सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञ सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥९॥

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतःपादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः॥१०॥

सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥११॥

॥ इति श्री दिव्यभाषापत्यादिशतम् ॥२॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

विश्वभृद् विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः॥२॥

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥

विनेयजनताबन्धुः र्विलीनाशेषकल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः॥४॥

क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः ।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्रामपूजितः ।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६॥

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः ।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युंजयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥९॥

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१०॥

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥११॥

॥इति श्री स्थविष्ठादिशतम् ॥३॥

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्त्रष्टा पद्मविष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥

पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः ।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः ।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥

पापापेतो विपापात्मा विपात्मा वीतकल्मषः ।
निर्द्वंद्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः ।
निष्कलंको निरस्तैना निर्द्धूतांगो निरास्रवः ॥७॥

विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिंत्यवैभवः ।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनयतत्ववित् ॥८॥

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः ।
धीशो विद्यनिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥९॥

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः ।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥११॥

॥ इति श्री महाशोकध्वजादिशतम् ॥४॥

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥

सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः ।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्द्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥

वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥

अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्र्यो महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥

उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः ।
अगाह्यो गहनं गुह्यं पराध्र्यः परमेश्वरः ॥६॥

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यप्राग्रयहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः ।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥

महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥

महामतिर्महानीतिर्महाक्षांतिर्महोदयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

महामहा महाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः ।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥

॥ इति श्री वृक्षादिशतम् ॥५॥

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः ।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ॥२॥

महाकारुणिको मंता महामंत्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसां पतिः ॥३॥

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसां धाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥

महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥

महाभवाब्धिसंतारी महामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मो महाव्रतः ।
महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

सर्वयोगीश्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

आनन्दो नन्दनो नंदो वंद्योऽनिन्द्योऽभिनंदनः ।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिन्जयः ॥१२॥

॥ इति श्री महामुन्यादिशतम् ॥६॥

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वै कृतांतकृत् ।
अंतकृत् कांतिगुः कांतशिंचतामणिरभीष्टदः ॥१॥

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥२॥

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।
महेन्द्रवंद्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः ।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः ।
विशिष्टः शिष्टभुक्शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तो गुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

॥ इति श्री असंस्कृतादिशतम् ॥७॥

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुशीषो गिरांपतिः ॥१॥

नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाऽध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥४॥

धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः ।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहाऽनघः ॥८॥

अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः ।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः ।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥

शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षांतिपरायणः ।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः ।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

॥इति श्री बृहदादिशतम् ॥८॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः ।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥

पुराण पुरुषः पूर्व कृतपूर्वाङ्गविस्तरः ।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥

युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः ।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥

कल्याणप्रकृतिर्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मषः ।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥

देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः ।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्य कोटिसमप्रभः ॥७॥

तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः ।
संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥

निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥

द्युम्नाभो जातरूपाभः तप्तजाम्बूनदद्युतिः ।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरःक्षमः ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः ।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कांतिमान्कामितप्रदः ॥१२॥

श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

॥इति श्री त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥९॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥

तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोऽपहः ॥२॥

जगच्चूडामणिर्दीप्तः संवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥

अनिन्द्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥

मुमुक्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशांतरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥५॥

मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥७॥

श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो-वीतभीरभयंकरः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥

लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९॥

प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेंद्रियः ।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥

सुमुन्मूलितमारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः ।
कर्मण्य कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥११॥

अनंतशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्लिोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
शूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुधर्मदेशकः ॥१३॥

शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

॥ इति श्री दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥१०॥

धाम्नां पते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः ।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः ।
स्तोता तथाप्य संदिग्धं त्वत्तोभीष्टफलं भजेत् ॥२॥

त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥

त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् ।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं सोत्थानंत चतुष्टयः ॥४॥

त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः ।
षड्भेद भावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥

दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवलमब्धिकः ।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः ॥६॥

युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया ।
भवंतं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाणनः ॥७॥

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः ।
यः सं पाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ।।८।।

ततः सदेदं पुण्यार्थि पुमान्पठति पुण्यधीः ।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ।।९।।

स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं ।
ततस्तीर्थविहारस्य व्याधात्प्रस्तावनामिमां ।।१०।।

स्तुतिपुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ।।११।।

यः स्तुत्योजगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्याचित् ।
ध्योयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ।।१२।।

यो नेतृन् नयते नमस्कृतिमलं नंतव्यपक्षेक्षणः ।
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवःपुरुःपावनः।।१३।।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरम् ।
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम् ।।१४।।

मानस्तम्भविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिम् ।
प्रासाचिंत्य बहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ।।१५।।

।। इति श्री धाम्नांपत्यादिशतम् ।।११।।

।। इति श्री भगवज्जिनसेनाचार्य विरचितजिनसहस्रनामस्तोत्राय नमः ।।

श्रीस्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचित

बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्

वृषभनाथ जिन स्तुति

(वंशस्थ - छन्दः)

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले,
समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा ।
विराजितं येन विधुन्वता तमः,
क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः ।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो,
ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥२॥

विहाय यः सागरवारिवाससं
वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम् ।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान्,
प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा,
निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम् ।

जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा
बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥४॥

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां
समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः ।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो
जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः ॥५॥

॥ इति श्री आदिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अजितनाथ जिन स्तुति

(उपजाति - छन्दः)

यस्य प्रभावात्त्रिदिवच्युतस्य,
क्रीडास्वपि क्षीबमुखारविन्दः ।
अजेयशक्तिर्भुवि बन्धुवर्ग,
श्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥६॥

अद्यापि यस्याजितशासनस्य,
सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं,
स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥७॥

य: प्रादुरासीत्प्रभुशक्तिभूम्ना,
भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै ।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो,
यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥८॥

येन प्रणीतं पृथुधर्मतीर्थं,
ज्येष्ठं जना: प्राप्य जयन्ति दु:खम् ।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं,
गजप्रवेका इव धर्मतप्ता: ॥९॥

स ब्रह्मनिष्ठ: सममित्रशत्रु:,
र्विद्याविनिर्वान्तकषायदोष: ।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा,
जिन:श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥१०॥

॥ इति श्री अजितनाथ जिनेंद्राय नमो नम: ॥

शम्भवनाथ जिन स्तुति

(इन्द्रवज्रा - छन्द:)

त्वं शम्भव: संभवतर्षरोगै:,
संतप्यमानस्य जनस्य लोके ।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो,
वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशांत्यै ॥११॥

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः,
प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम् ।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्तं,
निरञ्जनां शान्तिसजीगमस्त्वम् ॥१२॥

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं,
तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः ।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं,
तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥

बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः,
बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः ।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं
नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः,
स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः ।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो,
ममार्य देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥१५॥

॥ इति श्री सम्भवनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अभिनंदन जिन स्तुति

(वंशस्थ - छन्दः)

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्,
दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रयत् ।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये,
द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥१६॥

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपिच,
ममेदमित्याभिनिवेशकग्रहात् ।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च,
क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥१७॥

क्षुधादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिः-
र्न चेन्द्रियार्तप्रभवाल्पसौख्यतः ।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनो-
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥१८॥

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबंधदोषतो,
भयादकार्येष्विह न प्रवर्त्तते ।
इहाप्यमुत्राप्यनुबंधदोषवित्
कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥१९॥

सचानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्
तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः ।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं
ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥२०॥

॥ इति श्री अभिनंदननाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

सुमतिनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्द)

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं,
स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम् ।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति,
सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः ॥२१॥

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं,
भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे,
तच्छेषलोपोऽपि ततोनुपाख्यम् ॥२२॥

सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः,
खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम् ।

सर्वस्वभावच्च्युतप्रमाणं

स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥२३॥

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति, न च

क्रियाकारकमत्र युक्तम् ।

नैवासतो जन्म सतो न नाशो,

दीपस्तमःपुद्गलभावतोऽस्ति ॥२४॥

विधिर्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ,

विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था ।

इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं,

मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥२५॥

॥ इति श्री सुमतिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

पद्मप्रभनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः,

पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः ।

बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां,

पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः ॥२६॥

बभार पद्मां च सरस्वतीं च,
भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः ।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां,
सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥२७॥

शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते,
बालार्करश्मिच्छविरालिलेप ।
नरामराकीर्णसभां प्रभांव,
च्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥२८॥

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं,
सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः ।
पादाम्बुजैः पातितमोहदर्पो,
भूमौ प्रजानां विजहर्ष भूत्यै ॥२९॥

गुणाम्बुधेर्विप्रु षमप्यजस्रं,
नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षे ।
प्रागेव मादृक्किमुतातिभक्ति,
र्मांबालमालापयतीदमित्थम् ॥३०॥

॥ इति श्री पद्मप्रभ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

सुपार्श्वनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां,
स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति,
रितीदमाख्यद्भगवान्सुपार्श्वः ॥३१॥

अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं,
यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च,
स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥३२॥

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं,
हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा ।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः,
संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो
नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः ।
तथापि बालो भयकामवश्यो,
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता,
मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता,
मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥३५॥

॥ इति श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

चन्द्रप्रभनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं,
चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कांतम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं,
जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥३६॥

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं,
तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च,
ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥३७॥

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता,
वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।

प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा,
गजा यथा केशरिणो निनादैः ॥३८॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः,
पदं बभुवाद्भुतकर्मतेजाः ।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः,
समंतदुःखक्षयशासनश्च ॥३९॥

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां,
विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः ।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः,
पूज्यात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥४०॥

॥ इति श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमो नमः ॥

सुविधिनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं,
प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम् ।
त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना,
नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥४१॥

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्, त्तथा
प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित् ।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च,
विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥४२॥

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न
नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः ।
न तद्विरुद्धंबहिरन्तरङ्ग, निमित्तनै-
मित्तिकयोगतस्ते ॥४३॥

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं,
वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या ।
अकांक्षिणः स्यादिति वै निपातो,
गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ॥४४॥

गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं,
जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां,
ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥४५॥

॥ इति श्री पुष्पदंतनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

शीतलनाथ जिन स्तुति

(वंशस्थ-छन्दः)

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो,
न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः,
शमाम्बुगर्भा शिशिरा विपश्चिताम् ।।४६।।

सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं,
मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः ।
विदिध्यपस्त्वं विषदामोहितं,
यथा भिमग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहं ।।४७।।

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया,
दिवा श्रमार्ता निशि शेरते प्रजाः ।
त्वमार्य नक्तंदिवमप्रमत्तवा
नजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ।।४८।।

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया,
तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया,
त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणत् ।।४९।।

त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः,
क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः ।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरै,
र्बुधप्रवेकैर्जिनशीतलेड्यसे ॥५०॥

॥ इति श्री शीतलनाथजिनेंद्राय नमो नमः ॥

श्रेयांसनाथ जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः,
श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः ।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्,
नेको यथा वीतघनो विवस्वान् ॥५१॥

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरुपः,
प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम् ।
गुणोपरो मुख्यनियामहेतु,
र्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥५२॥

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो,
गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।

तथाऽरिमित्राऽनुभयादिशक्ति,
द्वयाऽवधिः कार्यकरं हि वस्तु ।।५३।।

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे,
साध्यं प्रसिध्येन्न तु तादृगस्ति ।
यत्सर्वथैकान्तनियामिदृष्टं,
त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ।।५४।।

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धि,
र्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य ।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट्,
ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवाऽर्ह : ।।५५।।

।। इति श्री श्रेयांसनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ।।

वासुपूज्य जिन स्तुति

(उपजाति-छन्दः)

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु,
त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः ।
मयाऽपि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र !,
दीपर्चिषा किं तपनो न पूज्य : ।।५६।।

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्य : ॥५७॥

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य,
सावद्यलेशो बहुपुण्याराशौ ।
दोषाय नाऽलं कणिका विषस्य,
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥५८॥

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते-
र्निमित्त मभ्यंतरमूलहेतोः ।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूत,
मभ्यंतरं केवलमप्यलं ते ॥५९॥

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं,
कार्येसु ते द्रव्यगतः स्वभाव : ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां,
तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बु धानाम् ॥६०॥

॥ इति श्री वासुपूज्यजिनेंद्राय नमो नमः ॥

श्री विमलनाथ जिन स्तुति

(वंशस्थ छन्दः)

य एव नित्यक्षणिकादयो नया,
मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः ।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः,
परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥६१॥

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये,
समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम् ।
तथैव सामान्यविशेषमातृका,
नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥६२॥

परस्परेक्षाऽन्वयभेदलिङ्गतः,
प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव ।
समग्रताऽस्ति स्वपरावभासकं,
यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥६३॥

विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो,
यतोविशेष्यं विनियम्यते च यत् ।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते,
विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥६४॥

नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता,
रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रे तगुणा यतस्ततो,
भवन्त्यमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥६५॥

॥ इति श्री विमलनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अनंतनाथ जिन स्तुति

(वंशस्थ छन्दः)

अनन्तदोषाऽऽशयविग्रहो ग्रहो,
विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि ।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता,
त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥६६॥

कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिना,
मशेषयन्नाम भवानशेषवित् ।
विशोषणं मन्मथदुर्मदाऽमयं,
समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयत् ॥६७॥

परिश्रमाऽम्बुर्भयवीचिमालिनी,
त्वया स्वतृष्णासरिदाऽऽर्य ! शोषिता ।

असंगघर्मार्कगभस्तितेजसा,
परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥६८॥

सुहृत्त्वयि श्री सुभगत्वमश्नुते,
द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते ।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि,
प्रभो परं ! चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम,
प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने ।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि,
शिवाय संस्पर्श इवाऽमृताम्बुधेः ॥७०॥

॥ इति श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

धर्मनाथ जिन स्तुति

(रथोद्धता छंदः)

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन्,
धर्म इत्यनुमतः सतां भवान् ।
कर्मकक्षमदहत्त पोऽग्निभिः,
शर्म शाश्वतमवाप शंङ्करः ॥७१॥

देवमानवनिकायसत्त मै,
रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः ।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो,
व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥७२॥

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि
विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्,
नापि शासनफलैषणाऽऽतुरः ॥७३॥

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो,
नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो,
धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्,
देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ ! परमाऽसि देवता,
श्रेयसे जिनवृष ! प्रसीद नः ॥७५॥

॥ इति श्री धर्मनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

शांतिनाथ जिन स्तुति

(उपजाति छन्दः)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां,
राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्ति,
र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाऽघशान्तिम् ॥७६॥

चक्रेणयः शत्रुभयंकरेण,
जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय,
महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥७७॥

राजश्रिया राजसु राजसिंहो,
रराज यो राजसुभोगतन्त्रः ।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो,
देवाऽसुरोदारसभे रराज ॥७८॥

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं,
मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं,
ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥७९॥

स्वदोषशान्त्या विहिताऽऽत्मशान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८०॥

॥ इति श्री शान्तिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

कुन्थुनाथ जिनस्तुति

(वसन्ततिलका छन्दः)

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः,
कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै ।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै,
भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥८१॥

तृष्णाऽर्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाऽऽचरस्त्व-
मध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।

ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरेऽस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो
रत्नत्रयाऽतिशयतेजसि जातवीर्य : ।
बिभ्राजसे सकलवेदविधेर्विनेता
व्यभ्रे यथावियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥८४॥

यस्मान्मुनीन्द्र ! तव लोकपितामहाद्या,
विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति ।
तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमाऽऽर्याः,
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकताना: ॥८५॥

॥ इति श्री कुन्थुनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अरहनाथ जिन स्तुति

(पथ्यावकत्रं छन्दः)

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः ।
आनन्त्याते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥

तथाऽपि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामाऽपि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्यकीर्तेनस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम् ।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरतृणमिवाऽभवत् ॥८८॥

तव रुपस्य सौन्दर्यं दृष्टवा तृप्तिमनापिवान् ।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥८९॥

मोहरुपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः ।
दृष्टिसंपिदुपेक्षाऽस्त्रैस्त्वया धीर ! पराजितः ॥९०॥

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्यविजयार्जित : ।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥९१॥

आयत्यां च तदात्वे चे दुःखयोनिर्दुरुत्तरा ।
तृष्णा नदी त्वयोतीर्णा विद्यानावा ववित्तया ॥९२॥

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखः सदा ।
त्वामन्तकाऽन्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः॥९३॥

भूषावेषाऽऽयुधत्यागि विद्यादमदयापरम् ।
रुपमेव तवाऽऽचष्टे धीर ! दोषविनिग्रहम् ॥९४॥

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा ।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मध्यानतेजसा ॥९५॥

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात्प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ ! सचेतनम् ॥९६॥

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम् ।
प्रणियत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः ।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥९८॥

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः ।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥९९॥

ते तं स्वघातिनं दोषंशमीकर्त्तुमनीश्वराः ।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वाऽवक्तव्यतां श्रिताः ॥१००॥

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥१०१॥

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१०२॥

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१०३॥

इति निरुपमयुक्त शासनः
प्रियहितयोगगुणाऽनुशासनः ।
अरजिन ! दमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां
प्रतिबोधनाय कः ॥१०४॥

मतिगुणविभवानुरुपतस्त्वयि
वरदाऽऽगमदृष्टिरुपतः ।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम
भवताद्दुरितासनोदितम् ॥१०५॥

॥ इति श्री अरहनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

मल्लिनाथ जिन स्तुति

(सांद्रपदं छन्दः) अथवा (श्रीछन्दः) अथवा
(वनवासिका छन्दः)

यस्य महर्षेः सकलपदार्थ-
प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात् ।
सामरमर्त्त्यं जगदपि सर्वं,
प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपतति स्म ॥१०६॥

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव,
स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा ।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा,
स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥

यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना,
न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते ।

भूरपि रम्या प्रतिपदमासी-
ज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥१०८॥

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः,
शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत् ।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्र-
त्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥१०९॥

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि-
र्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत् ।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं,
मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥११०॥

॥ इति श्री मल्लिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

मुनिसुव्रतनाथ जिन स्तुति

(वैतालियं छन्दः)

अधिगतमुनिसुव्रतस्थिति-
र्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः ।
मुनिपरिषदि निर्बभौ-भवा
नुडुपरिषत्परिवीतसोमवत् ॥१११॥

परिणतशिखिकण्ठरागया,
कृतमदनिग्रहविग्रहाभया ।
तव जिन ! तपसः प्रसूतया,
ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥११२॥

शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं,
सुरभितरं विरजो निजं वपुः ।
तव शिवमतिविस्मयं यते !
यदपि च वाङ् मनसीयमीहितम् ॥११३॥

स्थितिजननिरोधलक्षणं,
चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम् ।
इति जिन ! सकलज्ञलाञ्छनं,
वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥११४॥

दुरितमलकलंकमष्टकं,
निरुपमयोगबलेन निर्दलन् ।
अभवदभवसौख्यवान् भवान्
भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥११५॥

॥ इति श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

नमिनाथ जिन स्तुति

(शिखरिणि छन्दः)

स्तुतिस्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा ।
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे ।
स्तुयान्न त्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ।।११६।।

त्वया धीमन् ! ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगिलं ।
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी ।।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगव-।
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ।।११७।।

विधेयं वार्यं चाऽनुभयमुभयं मिश्रमपि तद् ।
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः ।।
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा ।
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ।।११८।।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं ।
न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ।।
ततस्तत्सिध्द्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं ।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ।।११९।।

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तकरणं ।
यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातंकविजयम् ।
विना भीमैः शस्त्रैरदयहृद्यामर्षविलयं ।
ततस्तवं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥१२०॥

॥ इति श्री नेमिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

नेमिनाथ जिन स्तुति

(विषमजातावुग्दता छन्दः)

भगवानृषिः परमयोग-
दहनहुतकल्मषेन्धनः ।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं,
प्रतिबुध्य बुद्धकमलायतेक्षणः ॥१२१॥

हरिवंशकेतुरनवद्य-
विनयदमतीर्थनायकः ।
शीलजलधिरभवोविभव-
स्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥१२२॥

त्रिदेशन्द्रमौलिमणिरत्न-
किरणविसरोपचुम्बितम् ।

पादयुगलममलं भवतो,
विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥१२३॥

नखचन्द्ररश्मिकवचाति-
रुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः,
प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षय : ॥१२४॥

द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्ब-
किरणजटिलांशुमण्डलः ।
नीलजलजदलराशिवपुः,
सहबन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥१२५॥

हलभृच्च ते स्वजनभक्ति-
मुदितहृदयौ जनेश्वरौ ।
धर्मविनय रसिकौ सुतरां,
चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥१२६॥

ककुदं भुवः खचरयोषि
दुषितशिखरैरलंकृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्र्,
तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥१२७॥

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च,
सततमभिगम्यतेऽद्य च ।

प्रीतिविततहृदयैः परितो,
भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥१२८॥

बहिरन्तरप्युभयथा च,
करणमविघाति नार्थकृत् ।
नाथ ! युगपदखिलं च सदा,
त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥

अत एव ते बुधनुतस्य,
चरितगुणमद्भुतोदयम् ।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि
सुप्रसन्नमनसः स्थितावयम् ॥१३०॥

॥ इति श्री नेमिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

पार्श्वनाथ जिन स्तुति

(वंशस्थ छन्दः)

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः,
प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रु तो,
महामना यो न चचालयोगतः ॥१३१॥

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं,
स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं,
विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥१३२॥

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया
निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम् ।
अवापदार्हन्त्यमचिंत्यमद्भुतं,
त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥१३३॥

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं,
तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः,
शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥१३४॥

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः,
समग्रधीरुग्रकुलाम्बुरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनःप्रणम्यते,
विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥१३५॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

महावीरनाथ जिन स्तुति

(स्कन्धक छन्दः अथवा आर्यागीति छन्दः)

कीर्त्या भुवि भासि तया,
वीर त्वं गुणसमुत्थया भासितया ।
भासोडुसभासितया,
सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया ॥१३६॥

तव जिन शासनविभवो,
जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः ।
दोषकशासनविभवः,
स्तुवंति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥१३७॥

अनवद्यः स्याद्वादस्तव,
दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितय-
विरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥१३८॥

त्वमसि सुरासुरमहितो,
ग्रन्थिकसत्वाशयप्रणामामहितः ।
लोकत्रयपरमहितो
ऽनावरण ज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः ॥१३९॥

सभ्या नामभिरुचितं,
दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम् ।
मग्नं स्वस्यां रुचितं,
जयसि च मृगलांछनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥१४०॥

त्वं जिन गतमदमाय-
स्तव भावानां मुमुक्षुकामद मायः ।
श्रेयान् श्रीमदमायस्
त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥१४१॥

गिरिभित्त्यवदानवतः,
श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः ।
तव शमवादानवतो,
गतमूर्जितमपगतप्रमादा - नवतः ॥१४२॥

बहुगुणसंपदसकलं,
परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम् ।
नयभक्तवतंसकलं,
तव देव मतं समन्तभद्रं सकलं ॥१४३॥

॥ इति श्री महावीरनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

योनि:शेषजिनोक्तधर्मविषय: श्री गौतमाद्यै: कृत: ।
सुक्तार्थैरमलै: स्तवोयमसम: स्वल्पै: प्रसन्नै: पदै: ॥
दतयाख्यानमदो यथा ह्यवगत: किञ्चित्कृतंलेशत: ।
स्थेयाच्च न्द्रदिवाकरवधि बुधप्रल्हादचेतस्यलम् ॥१४४॥

॥ इति श्री समन्तभद्र आचार्य विरचित
बृहत्स्वयम्भू स्तोत्राय नमो नमः ॥

समन्तभद्र की भद्रता

आचार्य श्री विद्यासागरजी द्वारा अनुवादित

(स्वयंभू स्तोत्र)

वृषभनाथ-स्तवन

(ज्ञानोदय छन्द; लय : मेरी भावना)

पर से बोधित नही हुए पर,
स्वयं आप ही बोधित हो ।
समकित-संपत्ति ज्ञान नेत्र पा
जग में जग हित शोभित हो ॥
विमोह-तम को हरते तुम प्रभु
निज-गुण-गण से विलसित हो ।
जिस विध शशि तम हरता
शुचितम किरणावलि ले विकसित हो ॥१॥

जीवन इच्छुक प्रजाजनों को
जीवन जीना सिखा दिया ।
असि, मषि, कृषि आदिक
कर्मों को प्रजापाल हो दिखा दिया ॥
तत्त्व-ज्ञान से भरित हुए फिर
बुध-जन में तुम प्रमुख हुए ।

सुर-पति को भी अलभ्य सुख पा
विषय-सौख्य से विमुख हुए ॥२॥
सागर तक फैली धरती को
मन-वच-तन से त्याग दिया ।
सुनन्द-नन्दा वनिता तजकर
आतम में अनुराग किया ॥
आतम-जेता मुमुक्षु बनकर
परीषहों को सहन किया ।
इक्ष्वाकू-कुल-आदिम प्रभुवर
अविचल मुनिपन वहन किया ॥३॥
समाधि-मय अति प्रखर अनल
को निज उर में जब जनम दिया ।
दोष-मूल अघ-घाति कर्म
निर्दय बनकर भसम किया ॥
शिव-सुख-वांछक भविजन को
फिर परम तत्त्व का बोध दिया ।
परम-ब्रह्म-मय-अमृत पान-
कर तुमने निज घर शोध लिया ॥४॥
विश्व-विज्ञ हो विश्व-सुलोचन
बुध-जन से नित वंदित हो ।
पूरण-विद्या-मय तन धारक
बने निरंजन नंदित हो ॥

जीते छुट-पुट वादी-शासन
अनेकान्त के शासक हो ।
नाभि-नन्द हे ! वृषभ जिनेश्वर
मम-मन-मल के नाशक हो ॥५॥

दोहा

आदिम तीर्थंकर प्रभो
आदिनाथ मुनिनाथ ।
आधि व्याधि अघ मद मिटे
तुम पद में मम माथ ॥१॥

शरण, चरण हैं
आपके तारण तरण जहाज ।
भव-दधि-तट तक ले चलो !
करुणाकर जिनराज ॥२॥

॥ इति श्री वृषभनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अजितनाथ-स्तवन

बन्धु-वर्ग तो खेल-कूद में भी
विजयी तव मस्त रहा ।
अजेय-बनकर अमेय बल पर
मुदित मुखी बन स्वस्थ रहा ।
यह सब प्रभाव मात्र आपका
दिवि से आ जब जन्म लिया ।
"अजित"-नाम तव सार्थक रख
तव परिजन सार्थक जन्म किया ॥१॥

अजेय शासन के शासक थे
अनेकान्त के पोषक थे ।
भविजन हित-सत पथदर्शक थे
अजित नाथ ! जग-तोषक थे ॥
वांछित-शिव-सुख, मंगल पाने
मुमुक्षु जन अविराम यहाँ ।
आज ! अभी भी लेते जिन का
परम सुपावन नाम महा ॥२॥

भवि-जन का सब पाप मिटे
बस यही भाव ले उदित हुए ।

मुनि नायक प्रभु समुचित बल ले
घाति-घात करम ुदित हुए ॥
मेघ-घटा बिन नभ-मंडल में
दिनकर जिस विध पूर्ण उगा ।
कमल-दलों को खुला-खिलाता,
अन्धकार को पूर्ण भगा ॥३॥

चन्दन-सम शीतल जल से
जो भरा लबालब लहराता ।
तपन ताप से तपा मत्त गज
उस सर में ज्यों सुख पाता ॥
धर्म-तीर्थ तव परम-श्रेष्ठ शुचि
जिसमें अवगाहन करते ।
काम-दाह से दग्ध दुखी जन
पल में सुख पावन वरते ॥४॥

शत्रु मित्र में समता धरकर
परम ब्रह्म में रमण किया ।
आत्म-ज्ञान-मय सुधा-पान कर
कषाय-मल का वमन किया ॥
आतम-जेता अजित-नाथ हो
चेतन-श्री का वरण किया ।
जिन-पद-सपंद-प्रदान कर दो
तुम-पद में "यह" नमन किया ॥५॥

दोहा

जित इन्द्रिय जित मद बने,
जित भव विजित कषाय ।
अजित-नाथ को नित नमूँ,
अर्जित दुरित पलाय ॥१॥

कोंपल पल-पल कों पले,
वन मे ऋतु-पति आय ।
पुलकित मम जीवन-लता,
मन मे जिन पद पाय ॥२॥

॥ इति श्री अजितनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
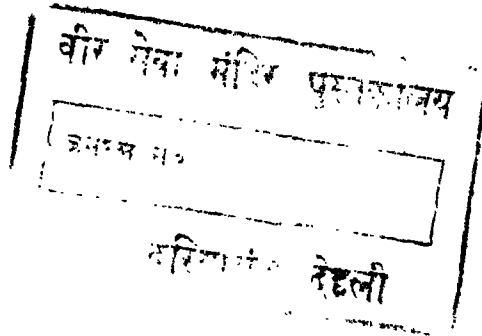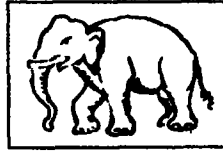
शम्भवनाथ स्तवन

ऐहिक सुख-तृष्णामय रोगों से
जो पीड़ित जग जन हैं।
उन्हें निरोगी पूर्ण बनाने
वैद्य रहे शंभव जिन हैं ।।
प्रति-फल की पर वाँछा कुछ
नहिं बिना-स्वार्थ परहित रत हैं।
वैद्य लोग ज्यों रोग मिटाते
दया-भाव से परिणत हैं ।।१।।

अहंकार-मय विभाव भावों
मिथ्या-मल से रंजित है।
क्षणिक रहा है त्राण-हीन है
जगत रहा सुख वंचित है ।।
जनन-मरण से जरा रोग से
पीड़ित दुःखित विकल अहा !
उसे किया जिन निरंजना-मय
शान्ति पिला कर सबल महा ।।२।।

बिजली-सम पलजीवी चंचल
इन्द्रिय-सुख है तनिक रहा।

तृष्णा-मय-मारी के पोषण
का कारण है क्षणिक रहा ॥
तृष्णा की वह वृद्धि, निरंतर
उपजाती है ताप निरा ।
ताप जगत को पीड़ित करता
जिन कहते, तज पाप जरा ॥३॥

बंध-मोक्ष क्या उनका कारण
सुफल मोक्ष का कौन रहा?
बद्ध जीव औ मुक्त जीव
सब जग में रहते कौन कहाँ ?
ये सब वर्णन देव ! तुम्हारे
स्याद्-वाद मत में पाते ।
एकान्ती -मत में ना, पाते
शिव-पथ-नेता तुम तातैं ॥४॥

पुण्य वर्धनी तुम स्तुति करने
इन्द्र विज्ञ असमर्थ रहा ।
किन्तु अज्ञ मैं स्तोत्र कार्य में
उद्यत हूँ ना अर्थ रहा ॥
तदपि भक्तिवश तुम-पद-पंकज-स्तुति,
अलि बन अनिवार्य किया ।
शिव-सुख की कुछ गंध सुँघा दो
आर्य देव ! शुभ कार्य-किया ॥५॥

दोहा

तुम-पद पंकज से प्रभो
झर-झर-झरी पराग ।
जब तक शिव-सुख ना मिले
पीऊँ षट्पद जाग ॥१॥

भव-भव, भव-वन भ्रमित हो
भ्रमता-भ्रमता आज ।
शंभव-जिन भव शिव मिले
पूर्ण हुआ मम काज ॥२॥

॥ इति श्री शम्भवनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
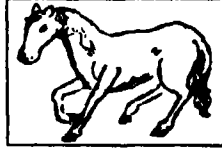
अभिनन्दननाथ-स्तवन

क्षमा-सखी युत दया-वधू में
सतत निरत हो नन्दन हो ।
गुण-गण से अति परिवर्धित हो
इसीलिए अभिनन्दन हो ।।
''लक्ष'' बना कर समाधि भर का
समाधि पाने यमी बने ।
बाहर-भीतर नग्न बने प्रभु
ग्रन्थ तजे सब दमी बने ।।१।।

निरे अचेतन तन-मन-धन हैं
वचन बंधु-जन तनुज रहें ।
हम इनके ये रहें हमारे इस
विध जग के मनुज कहें ।।
मोह-भूत के वशीभूत हो
अस्थिर को स्थिर समझे हैं ।
तत्त्व-ज्ञान प्रभु उन्हें बताया
उलझे जन-जन सुलझे हैं ।।२।।

अशन-पान कर, क्षुधा तृषा से
जनित दुःख के वारण से ।

तन तन धारक नहिं ध्रुव बनते,
    क्षणिक विषय सुख पानन से ॥
इसीलिए ये विषय सुखादिक
    किसी तरह नहिं गुणकारी ।
इस विध इस जग को समझाया
    प्रभो आप गुणगणधारी ॥३॥

यदपि दास बन विषयों का
    शठ लोलुपता से पूर रहा ।
तदपि नृपादिक भय से
    परवश दुराचार से दूर रहा ॥
इस पर भव में 'दुखद' विषय है
    इस विध जो जन यदि जाने ।
किस विध विषयन में फिर
    रमते यही कहा प्रभु, बुध माने ॥४॥

विषयों की वह विषय-वासना
    ताप बढ़ाती क्षण-क्षण है ।
तृष्णा फलतः द्विगुणित,
    जिस सुख, से तोषित ना जड़ जन हैं ॥
सदुपदेश यों देते जिससे
    निहित-लोक-हित तुम मत में ।
अतः शरण हो सुधी जनों के
    मुनि गण के सब अभिमत में ॥५॥

दोहा

विषयों को विष लख
तजूँ बन कर विषयातीत ।
विषय बना ऋषि ईश को
गाऊँ उनका गीत ॥१॥

गुण धारे पर मद नहीं
मृदुतम हो नवनीत ।
अभिनन्दन जिन ! नित
नमूँ मुनि वन मैं भवभीत ॥२॥

॥ इति श्री अभिनन्दननाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

सुमतिनाथ-स्तवन

स्व पर तत्त्व का सही सुनिर्नय
सुयुक्तियों से स्वतः लिया ।
सुमति-नाथ मुनि 'सुमति' नाम को
सार्थक तुमने अतः किया ।।
शेषमतों में क्रिया-कर्म
औ कारक कारण की विधियाँ ।
चूँकि सही नहिं सभी सर्वथा
एकान्तीपन की छवियाँ ।।१।।

तुमसे स्वीकृत तत्त्व सही है
अनेक भी है एक रहा ।
पर्यय वश वह अनेक
देखता द्रव्य अपेक्षा एक रहा ।।
इक उपचारी इनमें हो तो
दूजा झूठा, इक लय से ।
शेष मिटेगा अवाच्य जिससे
तत्त्व बनेगा निश्चय से ।।२।।

तत्त्व कथंचित असत्त्व सत ही
अपर अपेक्षा चहक रहा ।

नभ में यद्यपि न पुष्प खिला पर,
तरु पर खुल-खिल महक रहा ॥
तत्त्व, सत्त्व औ असत्त्व बिन
यदि, रहा, नहीं सम्मानित है ।
तुम मत से प्रभु अन्य सभी मत,
स्वीय वचन से बाधित हैं ॥३॥

तत्त्व सर्वथा नित्य रहा जो
मिटता-उगता नहीं कभी ।
तथा क्रिया औ कारक विधियाँ
उसम बनती नहीं कभी ॥
जनन असत का नहीं सर्वथा
सत भी वह ना विनस रहा ।
दीपक, खुद, बुझ, सघन तिमिर बन,
पुद्गल-पन से विहस रहा ॥४॥

नास्तिपना और अस्तिपना है
इष्ट कथंचित् यही सही ।
वक्ता के कथनानुसार
ये मुख्य-गौण हो कभी कहीं ॥
तत्त्व-कथन की सही प्रणाली
सुमति-नाथ प्रभु तव प्यारी ।
स्तुति करती है तव, मम मंदा मति,
अमंद हो सुख प्याली ॥५॥

दोहा

सुमति नाथ प्रभु सुमति हो
मम मति है अति मंद ।
बोध कली खुल-खिल उठे
महक उठे मकरन्द ॥१॥

तुम जिन मेघ मयूर मैं
गरजो बरसो नाथ ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा
ऊपर कर के माथ ॥२॥

॥ इति श्री सुमतिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

पद्मप्रभ-स्तवन

शुचिमय तन-चेतन लक्ष्मी से
मंडित निज में निवस रहें ।
लाल-लाल फल पलाश छवि
से अहो-पद्मप्रभ ! विलस रहे ।।
लोकबन्धु हो भविक-कमल ये
तुम दर्शन से खिलते हैं ।
जिस विध सर में सरोज दल
वे दिनकर को लख खुलते हैं ।।१।।

अक्षय सुख-मय लक्ष्मी वर
के दिव्य भारती पाय लसे ।
पूर्णमुक्ति से पूर्ण प्रभो !
तुम त्रयोदशी गुण माँय बसे ।।
देव-रचित था समवसरण तब
उसमें नहि, अनुरक्त हुए ।
दिव्य देशना त्याग अन्त में
सर्वज्ञान युत मुक्त हुए ।।२।।

नयन मनोहर किरणावलि छवि
आप देह से उछल रही ।

बाल भानु की द्युति सम भाती
  धरती छूने मचली रही ॥
नर सुर से जो भरी सभा को
  ललित लाल अति करा रही ।
पद्म राग-मय पर्वत जिस विध
  स्वीय-पार्श्व को विभामयी ॥३॥

सहस्त्रदल वाले कमलों के
  मध्य आप चलने वाले ।
चरण-कमल से नभ-तल को
  प्रभु पुलकित अति करने वाले ॥
मत्त मदन का मद-मर्दन कर
  निर्मद जीवन बना लिया ।
विश्वशान्ति के लिए विश्व में
  विचरण इच्छा बिना किया ॥४॥

तुम में हे ! ऋषिवर गुण-गण
  का लहराता वह सिन्धु महा ।
इन्द्र विज्ञ तव श्रुति करके भी
  पी न सका वह बिन्दु अहा !!
अज्ञ, सफल क्या ? मैं हो
  सकता स्तुति करने जो उद्यत हूँ ।
बाध्य मुझे तब भक्ति कराती
  तुम पद में तब अवनत हूँ ॥५॥

दोहा

शुभ्र-सरल तुम, बाल तव
कुटिल कृष्ण-तम नाग ।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से
किन्तु न उसमें दाग ॥१॥

विराग पद्मप्रभु आपके
दोनों पाद-सराग ।
रागी मम मन जा वहीं
पीता तभी पराग ॥२॥

॥ इति श्री पद्मप्रभ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
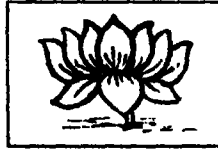
सुपार्श्वनाथ-स्तवन

निज आतम में चिर स्थिर बसना
भविक जनों का स्वार्थ नहीं ।
भाँति-भाँति के क्षणभंगुर सब
भोग कभी ये स्वार्थ नहीं ॥
तृष्णा का वह अविरल बढ़ना
ताप शान्ति के हेतु नहीं ।
सुपार्श्व प्रभु का कथन यही है
भवसागर का सेतु सही ॥१॥

जंगम चालक जभी चलाता,
स्थानु यंत्र तब चल पाता ।
तथा जीव से तन चल पाता,
जड़मय तन की यह गाथा ॥
दुखद विनाशी रुधिरमांस मय,
तन हैं इस विध बता दिया ।
जन की ममता अतः वृथा है,
शिव का तुमने पता दिया ॥२॥

बाह्याभ्यंतर कारण द्वारा बनी
हुई कृति जो दिखती ।

होनहार सो हो कर रहती
रोके वह नहिं रुक सकती ।
बाहर कारण सब पाकर भी
अहंकार से दुखित हुए ।
सब कार्यों में विफल रहे शठ,
प्रभु तुम कहते सुखित हुए ।।३।।

मात्र मरण से भले भीति हो
मोक्ष-धाम वह नहिं मिलता ।
शिव की वांछा-भर से शिव
नहिं मिलता जीवन नहिं खिलता ।
मृत्यु-भीति से काम-चोर से
ठगा हुआ जड़ अज्ञानी ।
वृथा व्यथा है सहता फिर भी,
तुमने कह दी यह वाणी ।।४।।

धर्म-रत्न की गवेषणा में
निरत जनों के नायक हो ।
जननी-सम जड़ जन के हित
प्रभु सदुपदेश के दायक हो।।
सकल विश्व के जड़-चेतन मय
सकल तत्त्व के ज्ञायक हो ।
इसीलिए मैं तव गुण-गण
का गीत गा रहा, गायक हो ।।५।।

दोहा

अबंध भाते काट के
वसु विध विधि का बंध ।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभु-
पना पा पाये आनन्द ॥१॥

बांध-बांध विधि-बंध मैं
अन्ध बना मति मन्द ।
ऐसा बल दो अंध को
बंधन तोड़ूँ द्वन्द्व ॥२॥

॥ इति श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

चंद्रप्रभ-जिन-स्तवन

अपर चन्द्र हो अनुपम जग
  में जग मग जगमग दमक रहे ।
चन्द्र-प्रभा सम नयन-मनोहर
  गौर वर्ण से चमक रहे ॥
जीते निज के कषाय-बंधन
  बने तभी प्रभु जिनवर हो ।
चन्द्रप्रभो ! मम नमन तुम्हें हो
  सुरपति नमते ऋषिवर हो ॥१॥

परम ध्यानमय दीपक उर में
  जला आत्म को जगा दिया ।
मोह-तिमिर को मानस-तल से
  पूर्ण-रूप से भगा दिया ॥
हे प्रभु ! तब तन की श्रीछवि से
  बाह्य सघन तम दूर भगा ।
दिनकर को लख, तम ज्यों भगता,
  पूरब में द्युति-पूर उगा ॥२॥

पूरे भीगे कपोल जिनके
  मद से गज गण मद-धारे ।

सिंह-गर्जना सुनते, डरते,
बनते ज्यों निर्मद सारे ॥
निज मत स्थिति से पूर्ण मत्त
हो प्रतिवादी त्यों अभिमानी ।
स्याद्वाद तव सिंहनाद
सुन बनते वे पानी-पानी ॥३॥

तपः साधना अद्भुत करके
हित-उपदेशक आप्त हुए ।
परम इष्ट पद को तुम प्रभुवर
त्रिभुवन में जब प्राप्त हुए ॥
अनन्त सुख के धाम बने हो
विश्व-विज्ञ अविनश्वर हो ।
जग-दुख-नाशक शासक के ही
शासक तारक ईश्वर हो ॥४॥

भगवन तुम शशि, भव्य कुमुद
ये खिलते हैं दृग खोल रहे ।
राग-रोष मय मेघ तुम्हारे
चेतन में नहिं डोल रहे ॥
स्याद्वाद मय विशद वचन की
मणिमय माला पहने हो ।
परमपूत हो, पावन कर दो,
मम मन, वश में रहने दो ॥५॥

दोहा

चंद्र कलंकित, किन्तु हो
चन्द्र प्रभु अकलंक ।
वह तो शंकित केतु से
शंकर तुम निःशंक ॥१॥

रंक बना हूँ मम अतः
मेटो मन का पंक ।
जाप जपूँ जिन-नाम का
बैठ सदा पर्यंक ॥४॥

॥ इति श्री चंद्रप्रभ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
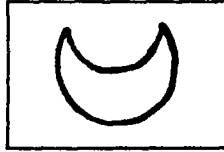
पुष्पदंत-स्तवन

विरोध एकान्ती का करता
　　तर्कादिक से सिद्ध सही ।
तदतत्-स्वभाव धारक यानी
　　मुख्य-गौण हो कहीं-कहीं ॥
सुविधि नाथ प्रभु आत्मज्योति से
　　तत्त्व प्ररूपित सही किया ।
तुम मत से विपरीत मतों ने
　　जिसका स्वाद न कभी लिया ॥१॥

स्वभाव-वश औ अन्यभाव-
　　वश तत्त्व रहा वह नहीं रहा ।
क्योंकि कथंचित् उसी तरह
　　ही प्रतीत होता सही रहा ॥
निषेध-विधि में कभी सर्वथा
　　अनन्यपन या अन्यपना ।
होते नहिं हैं जिन मत गाता
　　तत्त्व अन्यथा शून्य बना ॥२॥

वही रहा यह" प्रतित इसविध
　　तत्त्व अतः यह नित्य रहा ।

अन्य रूप ही झलक रहा है
इसीलिए नहिं नित्य रहा ॥
बाहर-भीतर के कारण औ
कार्य-रोग वश, तत्त्व वही ।
नित्यानित्यात्मक संगत है
तव मत का यह सत्त्व सही ॥३॥

एक द्रव्य वश अनेक गुण वश
वाच्य रहा वह वाचक का ।
"वन है तरु हैं" इस विध कहते
भाव विदित ज्यों गायक का ॥
सर्व धर्म के कथन चाहते
गौणपक्ष पर नहिं माने ।
एकान्ती मत कहते उनको
स्याद्-पद दुखकर, बुध जाने ॥४॥

गौण-मुख्य मय अर्थ-युक्त
तव दिव्य वाक्य है सुख-कारी ।
यदपि तदपि तुम मत से चिढ़ते
उनको निश्चित दुखकारी ॥
साधु राज हे चरण-कमल तव
सुर-नर-पति से वंदित हैं ।
अतः मुझे भी वन्दनीय हैं
सुरभित-सौम्य-सुगंधित हैं ॥५॥

दोहा

सुविध ! सुविधि के पूर हो,
विधि से हो अति दूर ।
मम मन से मत दूर हो,
विनती हो मंजूर ॥१॥

बाल मात्र भी ज्ञान ना
मुझ में मैं मुनि-बाल ।
बबाल भव का मम मिटे
प्रभु पद में मम भाल ॥२॥

॥ इति श्री पुष्पदंत जिनेंद्राय नमो नमः ॥

शीतलनाथ-स्तवन

ना तो मलयाचल चंदन और
चन्द्र चान्दनी शीतल है ।
शीतल गंगा का भी जल नहिं
मणिमय माला शीतल है ॥
हे मुनिवर तव वचन-किरण में
प्रशम भाव-मय नीर भरा ।
शीतलतम है, बुधजन जिसका
सेवन करते पीर हरा ॥१॥

विषय-सौख्य की चाह-दाह से
क्लान्त किया था तप्त किया ।
निज के मन को ज्ञान-नीर से
शान्त किया तुम तृप्त किया ॥
वैद्य-राज ज्यों मंत्र-शक्ति से
ज़हर शक्ति को हरता है ।
ज़हर-दाह से मूर्च्छित निज के
तन को सुशान्त करता है ॥२॥

जीवन की औ काम सौख्य
की तृष्णा के जो नौकर हैं ।

जड़ जन दिन-भर श्रम कर
थक कर रात बिताते सो कर हैं ॥
शुचि-तम निज आतम में तुम
तो निशि-दिन निश्चल जाग रहे ।
यही आर्य ! अनिवार्य कार्य तव,
प्रमाद रिपु-सम त्याग रहे ॥३॥

सुर-सुख की, सुत-धन की,
धन की तृष्णा जिनके मन में है ।
ऐसे ही कुछ जड़ जन, तापस,
बन तप तपते वन में हैं ॥
किन्तु, जनन-मृति-जरा मिटाने
समधी बन यम धार लिया ।
मन बच तन की क्रिया मिटा दी,
तुमने भव-दधि पार किया ॥४॥

धवलित केवलज्ञान-ज्योति हो
जन्म-रिहत दुख सर्व हरें ।
आप कहाँ ये अन्य कहाँ
जड़ अल्प ज्ञान ले गर्व करें ॥
शिव-सुख के अभिलाषी बुधजन
अतः सदा तव गुण गाते ।
शीतल प्रभु मुझ शीतल कर दो
तुम्हें भजे मम मन तातैं ॥५॥

दोहा

शीतल चन्दन है नहीं
　　शीतल हिम ना नीर ।
शीतल जिन ! तव मत
　　रहा शीतल, हरता पीर ॥१॥

सुचिर काल से मैं
　　रहा मोह-नींद से सुप्त ।
मुझे जगा कर, कर कृपा
　　प्रभो करो परितृप्त ॥२॥

॥ इति श्री शीतलनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

श्रेयांसनाथ स्तवन

दोष-रहित, शुभ वचन सुधारों
श्रेयन् ! जिन ! अघ गला दिया ।
हित पथ दर्शित कर हित पथ
पर हितैषियों को चला दिया ।।
एक अकेले विलसित हो तुम
त्रिभुवन में ज्यों उदित हुआ ।
मेघ-रहित इस विशाल नभ में
रवि लसता, जग मुदित हुआ ।।१।।

अस्तिपना जो नास्तिपना मय
प्रमाण का वह विषय बना ।
अस्ति-नास्तिपन में इक होता
गौण एक तो प्रमुख बना ।।
प्रमुख बना या, जिसको उसके
नियमन का नय हेतु रहा ।
दृष्टान्तन का रहा समर्थक
जिन दर्शन का केतु रहा ।।२।।

प्रासंगित जो मुख्य कहाता
तव मत कहता पुण्य मही ।

प्रासंगिक जो नहीं रहा सो
गौण भले पर शून्य नहीं ॥१॥
मित्र कथंचित् शत्रुमित्र हो
किसी अपेक्षा अनुभय हो ।
सगुण गुणी अस्तिनास्ति
वश वस्तु कार्य में सक्रिय हो ॥२॥

समुचित है दृष्टान्त जभी से
लोक सिद्ध वह मिल जाता ।
वादी-प्रतिवादी का झगड़ा
स्वयं शीघ्र तव मिट जाता ॥
मतैकान्त का पोषक तव
मत में मिलता दृष्टान्त नहीं ।
साध्य-हेतु दृष्टान्तन में मत
चूंकि श्रेष्ठ नैकान्त सही ॥४॥

स्याद्-वाद मय रामबाण से
रगरग जिसको छेद दिया ।
एकान्ती मत का मस्तक
प्रभु पूर्ण रूप से भेद दिया ॥
लाभ लिया कैवल्य विभव
का मोह-शत्रु का नाश किया ।
अतः बने अरहन्त तभी मम मन
तुम पद में वास किया ॥५॥

दोहा

अनेकान्त को कान्ति से
हटा तिमिर एकान्त ।
नितान्त हर्षित कर दिया
क्लान्त विश्व को शान्त ।।१।।

निश्रेयस् सुख-धाम
हो हे जिन वर श्रेयांस ।
तव थुति अविरल
मैं करूँ लौं घट में श्वास ।।२।।

।। इति श्री श्रेयांसनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ।।

वासुपूज्यनाथ-स्तवन

मंगल कारक गर्भ जन्म
मय कल्याणों में पूज्य हूए।
वासुपूज्य प्रभु शत इन्दों से
तुम पद-पंकज पूज्य हुए ॥
हे मुनि-नायक लघु धी
मैं हूँ मेरे भी अब पूज्य बनें।
पूजा क्या नहिं दीपक से हो
रवि की जो द्युति-पुंज तनें ॥१॥

वीतराग जिन बने तुम्हें अब
पूजन से क्या अर्थ रहा?
बैरी कोई रहे न तब फिर
निंदक भी अब व्यर्थ रहा ॥
फिर भी तव गुण-गण-स्मृति
से प्रभु परम लाभ है वह मिलता।
निर्मलता जीवन है बनता
मम मन-मल सब यह धुलता ॥२॥

पूजन पूजक पूज्य प्रभो !
जिन तब जब करता भव्य यहाँ।

अल्प पाप तब पाता फिर भी
पाता पावन मुख्य महा ॥
किन्तु पाप वह ताप नहीं है
घटना-भर अनिवार्य रही ।
सुधा-सिन्धु में विष-कण करता
बाधक का कब कार्य नहीं ? ॥३॥

उपादानमय मूल हेतु का
बाह्य द्रव्य ले सहकारी ।
श्रावक जब तब पूजन करता
पाप-पुण्य का अधिकारी ॥
किन्तु साधु जब पूजन करते
संग-रहित ही जो रहते ।
पुण्य-पाप में भाव शुभाशुभ
केवल कारण, जिन कहते ॥४॥

बाह्याभ्यन्तर हेतु परस्पर
यथायोग्य ये मिले सही ।
तभी कार्य सब जग के बनते
द्रव्य धर्म बस दिखे यही ॥
मोक्ष कार्य में यही व्यवस्था
पर इससे विपरीत नहीं ।
अतः वन्द्य तुम बुध जन से ऋषि-
पति हो, कहता गीत सही ॥५॥

दोहा

वसुविध मंगल द्रव्य ले
जिन पूजो सागार ।
पाप-घटे फलतः
फले पावन पुण्य अपार ॥१॥

बिना द्रव्य शुचि भाव से
जिन पूजों मुनि लोग ।
बिन निज शुभ उपयोग के
शुद्ध न हो उपयोग ॥२॥

॥ इति श्री वासुपूज्य जिनेंद्राय नमो नमः ॥

विमलनाथ-स्तवन

तत्त्व नित्य या क्षणिक सर्वथा
इत्यादिक जो नय गाते ।
कलह परस्पर करते मरते
सभी परस्पर भय खाते ॥
विमल नाथ प्रभु अनेकान्तमय
तुम-मत के जो नय मिलते ।
बने परस्पर पूरक, हिल-मिल
सभी कथंचित् पथ चलते ॥१॥

निजी सहायक शेष कारकों को
आपेक्षित करते हैं ।
एक-एक कर जिस विध कारक
कार्य सिद्ध सब करते हैं ॥
समानता को विशेषता को
लखते हैं क्रमवार भले ।
उस विध तव नय गौण-मुख्य हो
वक्ता के अनुसा चले ॥२॥

ज्ञानमयी हो स्व-पर प्रकाशक
प्रमाण जिस विध निश्चित है ।

जैनागम में निराबाध वह
स्वीकृत है औ समुचित है ॥
अभेद-मय औ भेद-ज्ञान में
सदा मित्रता शुद्ध रहीं ।
समानता और विशेषता की
समाष्टि जिन से सिद्ध रही ॥३॥

किसी वस्तु की विशेषता का,
कथक विशेषण होता है ।
विशेषता जिसकी की जाती
विशेष्य बस वह होता है ॥
किन्तु विशेषण विशेष्य इनमें
नित्य निहित सामान्य रहा ।
स्यात् पद-वश प्रासंगिक होता
मुख्य-गौण तब अन्य रहा ॥४॥

स्यात् पद भूषित तव नय बनते
सुर सुख शिव सुख-दाता हैं ।
जिस विध पारस योग प्राप्त कर
लोह स्वर्ण बन भाता है ॥
अतः हितैषी सविनय होते
तव पद में प्रणिपात रहें ।
परम पुण्य का फलतः बुधजन
लाभ लुटा दिन-रात रहें ॥५॥

दोहा

कराल काला व्याल सम
कुटिल चाल का काल ।
मार दिया तुमने उसे
फाड़ा उसका गाल ॥१॥

मोह-अमल वश समल बन
निर्बल मैं भगवान ।
विमलनाथ तुम अमल हो
संबल दो भगवान ॥२॥

॥ इति श्री विमलनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अनन्तनाथ-स्तवन

चिर से जीवित तुम उर में था
  मोह-भूत जो पाप-मयी ।
अमित-दोष का कोष रहा था
  जिसता तन परिताप मयी ॥
उसे जीत कर बने विजेता
  आत्म तत्त्व के रसिक हुए ।
अतः नाम तव अनन्त सार्थक,
  तव सेवक हम भविक हुए ॥१॥

समाधि-मय गुणकारी औषध,
  का तुमने अनुपान किया ।
दुर्निवार संतापक दाहक
  काम रोग का प्राण लिया ॥
रिपु-सम दुःखद कषाय-दल का
  और पुर्णतः नाश किया ।
पूर्णज्ञान पर परमजोति से
  त्रिभुवन को परकाश दिया ॥२॥

भरी लबालब श्रम के जल से
  भय-भय लहरें उपजाती ।

विषय-वासना-सरिता तुममें
चिर से बहती थी माती ॥
उसे सुखा दी अपरिग्रहमय
तरुण अरुण की किरणों से ।
मुक्ति-वधू वह हुई प्रभावित
इसीलिए तब चरणों से ॥३॥

भक्त बना तव निरत भक्ति में
भुक्ति मुक्ति सुख वह पाता ।
तुमसे जो चिढ़ता वह निश्चित
प्रत्यय-सम मिट दुख पाता ॥
फिर भी निन्दक वंदक तुम को
सम है समता-धाम बने ।
तव परिणति प्रभु विचित्र कितनी
निज रस में अविराम सने ॥४॥

तुम ऐसे हो तुम वैसे हो
मम-लघु धी का कुछ कहना ।
केवल प्रलाप-भर है मुनिवर !
भक्ति-भाव में बस बहना ॥
तव महिमा का पार नहीं
पर अल्प मात्र भी तारण है ।
अमृत-सिन्धु का स्पर्श तुल्य बस
शान्ति सौख्य का कारण है ॥५॥

दोहा

अनन्त गुण पा कर दिया
अनन्त भव का अन्त ।
अनन्त सार्थक नाम तव
अनन्त जिन जयवन्त ॥१॥

अनन्त सुख पाने सदा
भव से हो भयवन्त ।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें
स्मरूँ स्मरें सब सन्त ॥२॥

॥ इति श्री अनंतनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

धर्मनाथ-स्तवन

वीतराग-मय धर्मतीर्थ को
किया प्रसारित त्रिभुवन में ।
धर्म नाम तव सार्थक कहते
गणधर गुरु जो मुनिगण में ॥
सघन कर्म के वन को तपमय
तेज अनल से जला दिया ।
शंकर बन कर सुखकर शिव-सुख
पाकर जग को जगा दिया ॥१॥

भद्र भव्य सुर-नरपति गण नत
तुम पद में अति मोहित है ।
मुनिगण-नायक गणधर से-
प्रभु आप घिरे है, शोभित हैं ।
जैसा नभ में पूर्ण कला ले-
शान्त चन्द्रमा निखरा हो ।
जिसके चारों ओर विहसता
तारक-दल भी बिखरा हो ॥२॥

छत्रादिक से सजा हुआ-
जिस समवशरण में निवस रहे ।

विरत किन्तु निज तन से भी-
हो निरीह सब से विलस रहे ।
नर, सुर, किन्नर भव्य जनों को
शिव-पथ दर्शित करा रहे ।
प्रति-फल की कुछ वांछा नहिं-
पर हमको हर्षित करा रहे ।।३।।

तन की मन की और वचन की
चेष्टाएँ तव होती हैं ।
किन्तु बिना इच्छा के केवल
सहज भाव से होती हैं ।।
थोथी यद्वा-तद्वा भी नहिं
सही ज्ञान से सहित सभी ।
धीर ! नीर-निधि-सम तव परिणति,
अचिंत्य-लख बुध, मुक्ति सभी ।।४।।

मानवता से ऊपर उठ कर
ऊपर उन्नत चढ़े हुए ।
सुर, सुर-पालक देवों में भी
पूज्य हुए हो बड़े हुए ।।
इसीलिए देवाधिदेव हो परम
इष्ट जिन ! नाथ हुए ।
हम पर करुणा कर दो शिव-सुख,
तुम पद में नत-माथ हुए ।।५।।

दोहा

दया धर्म वर धर्म है
अदया-भाव अधर्म ।
अधर्म तज प्रभु ने
समझाया पुनि धर्म ॥१॥

धर्मनाथ को नित नमूँ
सधे शीघ्र शिव शर्म ।
धर्म-मर्म को लख सकूँ
मिटे मलिन मम कर्म ॥२॥

॥ इति श्री धर्मनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
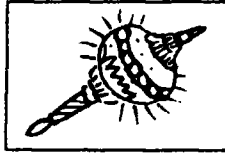
शान्तिनाथ-स्तवन

प्रजा सुरक्षित कर रिपुओं-
से निजी राज्य अविभाज्य किया।
सुचिर काल तक प्रतापशाली
अजेय राजा राज्य किया ॥
स्वयं आप मुनि बन वन में
पापों का अतिशमन किया।
शान्तिनाथ जिन ! दया-धाम हो
शान्ति-रमा से रमण किया ॥१॥

पुण्य-पुरुष चक्री बन तुमने
चक्र दिखा कर डरा दिये।
छहों खण्ड के नराधिपों को
पूर्ण रूप से हरा दिये ॥
समाधि-मय निज दिव्य चक्र-
पुनि मोह-शत्रु पे चला दिया।
दुर्नय-दुर्जय दुष्ट क्रूर को
मिट्टी में बस मिला दिया ॥२॥

राजाओं-के-राजा बन कर
राजसभा में राजित थे।

लघु राजाओं के सुख-साधन
तुम पर ही निर्धारित थे ।।
किन्तु पुनः जब निजाधीन हो
आर्हत पद को प्राप्त हुए ।
अगणित अमरासुर पतिगण में
हुए सुशोभित, आप्त हुए ।।३।।

नरेन्द्र जब थे, नरपति-दल ने
तब चरणों में शरण लिया ।
सदय बने जब मुनिवर तुम को
दया-धर्म ने नमन किया ।।
पूज्य बने जिन तव पद युग में
सुरदल आ प्रणिपात हुआ ।
ध्यानी बनते, कर्म विनसता,
हाथ जोड़, नत-माथ हुआ ।।४।।

निजी दोष सब पूर्ण मिटा कर,
प्रथम प्रशम बन शान्त हुए ।
शान्ति दिलाते शरणागत को,
सुचिर काल से क्लान्त हुए ।।
शान्तिनाथ जिन ! शाति विधायक,
शान्त मुझे अब आप करो ।
शरण, चरण में मुझे दिला कर
भव-भव का मम ताप हरो ।।५।।

दोहा

शान्तिनाथ हो शान्त,-
कर सातासाता सान्त ।
केवल, केवल-ज्योतिमय
क्लान्ति मिटी सब ध्यान्त ॥१॥

सकल ज्ञान से सकल को
जान रहे जगदीश ।
विकल रहे जड़ देह से
विमल नमूँ नतशीश ॥२॥

॥ इति श्री शान्तिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
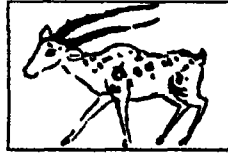
कुन्थुनाथ-स्तवन

चक्री बन शासित नरपों को
प्रथम किया यश सुख पाने ।
तीर्थंकर बन धर्म-चक्र,
फिर चला दिया निज-घर जाने ।।
जरा जनन मृति रोग मिटाने
सदय स्वजीवन बना लिया ।
कुन्थु कृमी आदिक जीवों पर,
कुन्थु जिनेश्वर दया किया ।।१।।

स्वभाव से ही तृष्णा-ज्वाला
सदा धधकती वह जलती ।
भोग्य वस्तुएँ भले भोग लो
तृष्णा बुझती नहिं बढ़ती ।।
विषय-सौख्य तो निमित्त केवल,
हर सकते ! तन-ताप भले ।
विमुख हुए हैं अतः विषय से,
मुनि बन, शिव-पथ आप चले ।।२।।

कष्ट-साध्य बहु बाह्य तपों से
तन को मन को जला दिया ।

आभ्यंतर तप उद्दीपित हो
　　यही प्रयोजन बना लिया ॥
आर्त ध्यान को, रौद्र ध्यान को,
　　पूर्ण ध्यान से हटा दिया ।
धर्म ध्यान में, शुक्ल ध्यान में,
　　क्रमशः निज को बिठा दिया ॥३॥

रत्नत्रयी मय होम-कुण्ड को
　　योग अनल से तेज किया ।
होमा जिसमें घाति कर्म को
　　यम-पुर रिपु को भेज दिया ॥
अतुल वीर्य पा सकल ज्ञेय
　　के प्रतिपादक आगम-कर्त्ता ।
विलस रहे प्रभु मेघ-रहित नभ
　　में जिस विध रवि तम-हर्ता ॥४॥

विद्या-धन का निधान दुर्लभ
　　मुनिवर ! तुम में अहा खुला ।
ब्रह्मा महेश आदिक को
　　पर जिसका कण भी कहाँ मिला ॥
अमिट-अमित हो स्तुत्य बने हो
　　जन्म-रहित जिन-देव ! तभी ।
निज हित-इच्छुक अतः सुधी ये
　　तुम्हें भजे स्वयमेव सभी ॥५॥

दोहा

ध्यान-अग्नि से नष्ट कर
प्रथम पाप परिताप ।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से
बने न अपने-आप ॥१॥

ऐसी मुझ पे हो कृपा
मम मन मुझमें आय ।
जिस विध पल में लवण है
जल में घुल मिल जाय ॥२॥

॥ इति श्री कुन्थुनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

अरहनाथ-स्तवन

किसी पुरुष के अल्प गुणों का
बढ़ा-चढ़ा कर यश गाना ।
जग में बुधजन कविजन कहते
स्तुति का वह है बस बाना ॥
पूज्य बने हो ईश बने हो
अगणित गुण के धाम बने ।
ऐसी स्थिति में आप कहो-
फिर कैसे स्तुति का काम बने ॥१॥

यदपि मुनीश्वर की स्तुति करना
रवि को दीपक दिखलाना ।
तपदि भक्ति-वश मचल रहा-
मन कुछ कहने को अनजाना ॥
तथा अल्प भी जो तव यश का
भविक यहाँ गुण-गान करें ।
शुचितम बनता, क्यों ना हम-
फिर तव थुति-रस का पान करें ॥२॥

चौदह मनियाँ निधियाँ नव भी
चक्री तुम थे तुम्हें मिली ।

हाथी छोड़े कोटि, नारियाँ
  कुछ कम लाखों तुम्हें बरी ॥
मुमुक्षुपन की किन्तु किरण जो
  तुम में जगमग जभी जगी ।
सार्वभौम पदवी भी तुमको
  जीरण तृण सम सभी लगी ॥३॥

सविनय द्वय नयनों से तव मुख
  छवि को जब अनिमेष लखा ।
किन्तु तृप्त वह हुआ नहीं पर
  लख-लख कर अमरेश थका ॥
सहस्र लोचन खोल लिये फिर
  निजी ऋद्धि से काम लिया ।
चकित हुआ तब अंग-अंग का
  प्रभु दर्शन अभिराम किया ॥४॥

मोहरूप रिपु-भूप, पाप-का-
  बाप-ताप का कारक है ।
कषाय-मय सेना का चालक,
  चेतन निधि का हारक है ॥
समकित-चारित-भेदज्ञान मय
  कर में खर तर-बार लिया ।
किया वार निज मोह-शत्रु पर
  धीर आपने, मार दिया ॥५॥

तीन लोक को अपने बल पर
जीत विजेता बना हुआ ।
काम समझ में यों लोक ईश मैं
व्यर्थ गर्व से तना हुआ ।।
धीर वीर जिन किन्तु आप पर
प्रभाव उसका नहीं पड़ा ।
लज्जित होकर शिशु-सा आकर
तव चरणों में तभी पड़ा ।।६।।

इस भव में भी पर भव में भी
दुस्सह दुख की है जननी ।
तृष्णा-रूपी नदी भयंकर
यह नरकों की वैतरणी ।।
इसका पाना पार कठिन है
कई तैरते हार गये ।
वीतराग-मय ज्ञान-नाव में
बैठ किन्तु प्रभु पार गये ।।७।।

सदा काल से काल जगत को
रुला रहा था सता रहा ।
जन्म-रोग को मित्र बना कर
जीवन अपना बिता रहा ।।

महाकाल विकराल किन्तु प्रभु
काल आपने विकल किया ।
कुटिल चाल को छोड़ काल ने
सरल चाल में बदल दिया ॥८॥

शस्त्रों, वस्त्रों, पुत्र, कलत्रों,
आभरणों से रहित रहा ।
विराग विद्या दया दमन से
पूर्ण रूप से सहित रहा ॥
इस विध जो तव रूप मनोहर
मौन रूप से बोल रहा ।
धीर ! रहित हो सकल दोष से
तब जीवन अनमोल रहा ॥९॥

तव तन की अति प्रखर ज्योतिमा
फैल रही चहुँ ओर सही ।
फलतः बाहिर सघन तिमिर सब,
भगा हुआ हो भोर कहीं ॥
इसी तरह निज शुद्धातम के
परम विभा से नाश किया ।
मोह-मयी अतिघनी निशा का,
निज-घर शिव में वास किया ॥१०॥

सकल विश्व का जानन हारा
तुममें केवलज्ञान हुआ ।
समवशरण आदिक अनुपम-
तन अतिशय आविर्मान हुआ ।।
पुण्य-पाक मय इस अतिशय को
भविक जनों ने निरखा हो ।
तव पद में नत क्यों ना होवे
दोष गुणन को परखा हो ।।११।।

जिसकी भाषा, उस भाषा में
उसको समझाती वाणी ।
अमृतमयी है जिनवाणी-
है ज्ञानी कहते कल्याणी ।।
समवशरण में फैल सभी के
कर्ण तृप्त भी है करती ।
सुधा जगत में जिस विध, जन-जन
को सुख दे सब दुख हरती ।।१२।।

अनेकान्त तव दृष्टि रही है
सत्य तथ्य बुध-मीत रही ।
तथ्य-हीन एकान्त दृष्टि है
औरों की विपरीत रही ।।

एकान्ती का जो कुछ कहना
असत्य भी है उचित नहीं ।
और रहा निज मत का घातक
इसीलिए वह मुदित नहीं ॥१३॥

पर मत की कमियों को लखने
नेत्र खोलकर जाग रहे ।
निज-कमियाँ लख भी नहि लखते
जैसे सोते नाग (हाथी) रहे ।
निज मत थापित पर मत बाधित
करने में भी निर्बल है ।
तापस वे नहिं समझ सकेंगे
तव मत जो अति निर्मल है ॥१४॥

एकान्ती जन दोष-बीज ही
सदा निरन्तर बोते हैं ।
निज मत घातक दोष मिटाने
सक्षम नहिं वे होते हैं ॥
अनेकान्त तब मत से चिढ़ते
आत्महनक हैं बने हुए ।
अवक्तव्य ही "तत्त्व सर्वथा"
जड़ जन कहते तने हुए ॥१५॥

अवक्तव्य वक्तव्य नित्य या
अनित्य ही यह वस्तु रही ।
सदसत् या है एक रही या
अनेक अथवा वस्तु रही ॥
कहें सर्वथा यों नय करते
वस्तु-तत्त्व को दूषित हैं ।
पोषित करते, किन्तु आपके
स्याद् पद से नय भूषित हैं ॥१६॥

प्रमाण द्वारा ज्ञात विषय की
सदा अपेक्षा रखता है ।
किन्तु "सर्वथा नियम" रखे बिन
वस्तु-भाव को चखता है ॥
ऐसा स्याद् पद पर मत का
नहिं तव मत का श्रृंगार रहा ।
अतः "सर्वथा पद" ही परमत
निजमत को संहार रहा ॥१७॥

प्रमाण नय साधन से साधित
अनेकान्त-मय तव मत में ।
अनेकान्त भी अनेकान्त है
जिसका सेवक अवनत मैं ॥

पूर्ण वस्तु को विषय बनाते
प्रमाण-वश नैकान्त बने ।
वस्तु-धर्म हो एक विवक्षित,
नय-वश तब एकान्त तने ॥१८॥

निराबाध औ निरुपम शासन के-
शासक गुण-धारक हो ।
सुखद-योग-गुण-पालन का
पथ दिखलाते अघ मारक हो ॥
इन्द्रिय-विजयी धर्म-तीर्थ के हे-
अर जिन तुम नायक हो ।
तुम बिन, भविजन हितपथ दर्शक,
अन्य कौन? सुखदायक हो ॥१९॥

आगम का भी अल्प ज्ञान है
पूर्ण ज्ञान वह मिला नहीं ।
मंद बुद्धि मम, विशद नहीं है
भक्ति-भाव-भर मिला यहीं ॥
मानस आगम-बल से फिर भी
जो कुछ तव गुणगान किया ।
पाप-शमन का हेतु बनेगा वरद !
यही अनुमान लिया ॥२०॥

दोहा

नाम-मात्र भी नहिं रखो
  नाम-काम से काम ।
ललाम आतम में करो
  विराम आठों याम ॥१॥

नाम धरो 'अर' नाम तव
  अतः स्मरूँ अविराम ।
अनाम बन शिव-धाम में
  काम बनूँ कृत-काम ॥२॥

॥ इति श्री अरदनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

मल्लिनाथ-स्तवन

बने महा ऋषि जब तुम,
तुममें सुसुप्त जागृत योग हुआ ।
लोकालोकालोकित करता
अतुलनीय आलोक हुआ ॥
इसीलिए बस सादर आकर
अमराकर नर-जगत सभी ।
जोड़ करों को हुआ प्रणत तव,
पद में हूँ मुनि जगत अभी ॥१॥

तव तन आभा तप्त स्वर्ण-सी
तन की चारों ओर सही ।
परिमण्डल की रचना करती
यह शोभा नहिं और कहीं ॥
वस्तु-तत्त्व को कहने आतुर
स्याद्-पद वाली तव वाणी ।
दोनों मुनिजन को हर्षाती
जिनकी शरणा सुखदानी ॥२॥

मन मानी तज प्रतिवादी जन
तव सम्मुख हो गतमानी ।

वाद करे ना कुतर्क करते
जब प्रभु पूरण हो ज्ञानी ॥
तथा आपके शुभ दर्शन से
हरी-भरी हो भी लसती ।
खिली कमलिनी मृदुतम-सी
यह धरा सुन्दरा भी हसती ॥३॥

शान्त कान्ति से शोभ रहे हैं
पूर्ण चन्द्रमा जिनवर हैं ।
शिष्य-साधु चहुँ-ओर घिरे हैं
गृह-बन गणधर मुनिवर हैं ॥
तीर्थ आप का ताप मिटाता
अनुपम सुख का हेतु रहा ।
दुखित भव्य भव पार कर सके
भव-सागर का सेतु रहा ॥४॥

शुक्ल ध्यान मय तपश्चरण के
दीप्त अनल से जला जला ।
राख किया कटु पाप कर्म को
तभी तुम्हें शिव किला मिला ॥
शल्य-रहित कृत-कृत्य बने हो
मल्लिनाथ जिन पुंगव हो ।
चरणों में दो शरण मुझे अब
भव-भव पुनि ना संभव हो ॥५॥

दोहा

मोह मल्ल को मार कर
मल्लिनाथ जिनदेव ।
अक्षय बनकर पा लिये
अक्षय सुख स्वयमेव ।।१।।

बाल ब्रह्मचारी विभो
बाल समान विराग ।
किसी वस्तु से राग ना
मम तव पद से राग ।।२।।

।। इति श्री मल्लिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ।।

मुनिसुव्रतनाथ-स्तवन

मुनि बन मुनि-पथ चलते मुनिपन
में दृढ़ हो मुनिनाथ हुए ।
मुनिसुव्रत प्रभु पाप-रहति हो
निज में रत दिन-रात हुए ॥
मुनियों की उस भरी सभा में
अनुपम द्युति से शोभ रहे ।
तारक गण के ठीक बीच ज्यों
शोभित शीतल सोम रहे ॥१॥

द्वादश विध खर तप कर
तुमने देह-मोह सब भुला दिया ।
काम रोग को अहंकार को
पूर्ण रूप से जला दिया ॥
मोर-कण्ठ-सम सघन नीलिमा फलतः
तव तन में फूटी ।
पूर्णचन्द्र के परितः फैली
मण्डल-द्युति पड़ती झूठी ॥२॥

चन्द्र-चाँदनी-सम धवलित
शुचि रुधिर भरा है तव तन में ।

परम सुगंधित निर्मल तन है
ऐसा तन ना त्रिभुवन में ॥
केवल सुख-कर नहीं किन्तु-
तव तन वच की परिणतियाँ ।
विस्मय जग को सदा करातीं
जिन से मिटती चहुँ गतियाँ ॥३॥

युगों-युगों से जड़-चेतन ये
जग के पदार्थ सारे हैं ।
ध्रौव्य-जनन-मय तथा नाशमय
लक्षण यथार्थ धारे हैं ॥
इस विध तव वाणी यह कहती,
सकल विश्व के ज्ञायक हैं ।
शिव पथ शासन कर्त्ताओं में
कुशल आप हा शासक हैं ॥४॥

निरुपम चौथे शुक्ल ध्यान मय
संबल निज में जगा लिया ।
अष्टकर्म-मल पाप-किट्ट को
जला जला कर मिटा दिया ॥
भवातीत उस मोक्ष-सौख्य का
लाभ आपने उठा लिया ।
करो नाश अब मम भव का भी,
मन में तव पद बिठा लिया ॥५॥

दोहा

मुनि वन मुनिपन में निरत हो
  मुनि यति बिन स्वार्थ ।
मुनिव्रत का उपदेश दे
  हमको किया कृतार्थ ।।१।।

यही भावना मम रही
  मुनिव्रत पाल यथार्थ ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ
  पावन पाय पदार्थ ।।२।।

।। इति श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ।।
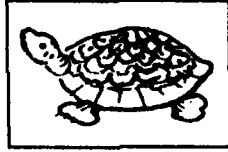
नमिनाथ-स्तवन

स्तुत्य रहे या नहीं रहे, फल
उसे मिले या नहीं मिले ।
स्तुति जब करता सज्जन मन में
पुण्य-भाव की कली खिले ॥
निजाधीन औ सुलभ मोक्षपथ
जग में इस विध बनता हो ।
पूज्य ईश नमि जिन फिर क्यों
ना तव थुति रत बुध जनता हो ॥१॥

परम ब्रह्म रत हो तोड़ा भव-
बंधन प्रभु कृत-काम बने ।
इसीलिए जिन सुधीजनों के
बोध-धाम शिव-धाम बने ॥
ज्ञान-जोति अति प्रखर किरण ले
उदित हुई फलतः तुम में ।
पर-मत जुगुनू सम कुंदित हैं
तेज उदित हो रवी नभ में ॥२॥

अस्ति नास्ति औ उभय रूप भी
अवक्तव्य भी तत्त्व रहा ।

अवक्तव्य भी तीन रूप यों
सप्त भंगमय तत्त्व रहा ।।
आपस में आपेक्षित बहुविध
धर्मों से जो भरित रहा ।
गौण-मुख्य कर बहुनय-वश
वह लोक ईश से कथित रहा ।।३।।

अणु-भर भी षडारम्भ हो
वहाँ दया यह नहीं रहे ।
जीव-दया सो परम-ब्रह्म है
जग में बुधजन यही कहें ।।
अतः दया की प्राप्ति हेतु प्रभु
करुण भाव से दूर रहें ।
उभय संग तज बनो दिगंबर
विकृत वेष से दूर रहे ।।४।।

भूषण वसनादिक से रीता
नग्न काय तव यों गाता ।
जीता तुमने काम-बली को
जित इन्द्रिय हो हो धाता ।।
तीक्ष्ण शस्त्र बिन निज उर में
थित अदय क्रोध का नाश किया ।
निर्मोही हो अतः शरण दो
शान्ति-सदन में वास किया ।।५।।

दोहा

अनेकान्त का दास हो
अनेकान्त की सेब ।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से
अनेक गुण स्वयमेव ।।१।।

अनाथ मैं जगनाथ हो
नमीनाथ दो साथ ।
तव पद में दिन-रात हूँ
हाथ जोड़ नत-माथ ।।२।।

।। इति श्री नमिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ।।
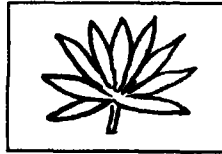
नेमिनाथ-स्तवन

ऋद्धि-सिद्धि के धारक, ऋषि हो,
  प्राप्त किया है निज धन को ।
शुक्ल ध्यान मय तेज अनल से
  जला दिया विधि-इंधन को ॥
खिले-खुले तव नील कमल-सम,
  युगल-सुलोचन विकसित हैं ।
सकल ज्ञान से सकल निरखते
  भगवन् जग में विलसित हैं ॥१॥

विनय-दमादिक पाप-रहित-
  पथ के दर्शक तीर्थंकर हो ।
लोक-तिलक हरिवंश मुकुट हो,
  संकट के प्रलयंकर हो ॥
हुए शील के अपार सागर,
  भवसागर से पार हुए ।
अजरामर हो अरिष्ट नेमी
  जिनवर ! जग में सार हुए ॥२॥

झिलमिल-झिलमिल मणियों से-
  जो जड़ित मुकुट को चढ़ा रहे ।

तव चरणों में अवनत सुरपति
　　और मंजुता बढ़ा रहे ॥
कोमल-कोमल लाल-लाल तव
　　युगल पाद-तल विमल लसे ।
तालोबों में खुले-खिले-ज्यों
　　लाल दलों से कमल लसे ॥३॥

शरद-काल के पूर्ण चन्द्र की
　　शुभ्र चाँदनी-सी लसती ।
पूज्य-पाद की नखावली ये जिनमें
　　जा मम मति बसती ॥
थुति करते नित तव पद में
　　नत प्रभु दर्शन की आस लगी ।
बुध-ऋषि, जिन को निज आतम सुख
　　की चिर से अतिप्यास लगी ॥४॥

तेज-भानु-सा चक्र-रत्न से
　　जिनके कंधे शोभित हैं ।
घिरे हुए हैं स्वजन बंधुओं से
　　जो पर में मोहित हैं ॥
सघन-मेघ-सम नील वर्ण का
　　जिन का तन जगनामी है ।
भ्रात चचेरे कृष्ण-राज तव तीन
　　खण्ड के स्वामी है ॥५॥

स्वजन-भक्ति से मुदित रहे हैं
जन-जन के जो सुखकर हैं ।
धर्म-रसिक हैं विनय-रसिक हैं
इस विध चक्री हलधर हैं ।।
भक्ति-भाव से प्रेरित होकर
नेमिनाथ तव ! चरणन में ।
दोनों आकर बार-बार नत
होते हर्षित तन-मन में ।।६।। (युग्म)

सौराष्ट्रन में, वृषभ-कंघ-सम
उन्नत पर्वत अमर रहें ।
खेचर महिलाओं से सेवित
जिसके शोभित शिखर रहें ।।
बादल-दल-से जिसके तट भी
सदा घिरे ही रहते हैं ।
जहाँ इन्द्र ने तव गुण लक्षण
लिखे, जिन्हें बुध कहते हैं ।।७।।

तव गुण लक्षण धारण करता
अतः तीर्थ वह महा बना ।
ऊर्जयन्त फिर ख्यात हुआ है
पुराण कहते महामना ।।

सुचिर काल से आज अभी भी
   जिसका वन्दन करते हैं ।
ऋषि-गण भी अति प्रसन्न होते
   सफल स्वजीवन करते हैं ॥८॥

बाहर से भी भीतर से भी ना-
   तो साधक बाधक हो ।
इन्द्रिय गण हो यद्यपि तुममें
   तदपि मात्र प्रभुज्ञायक हो ॥
एक साथ जिननाथ, हाथ की
   रेखा सम सब त्रिभुवन को ।
जान रहे हो देख रहे हो विगत-
   अनागत कण-कण को ॥९॥

इसीलिए यति मुनिगण से
   प्रभु-पद युग-पूजित सुखदाता ।
अद्भुत से अद्भुत तम आगम-
   संगत चारित तव साता ॥
इस विध तव अतिशय का चिन्तन
   करके मन में मुदित हुआ ।
जिन-पद में अति निरत हुआ हूँ
   आज भाग्य शुभ उदित हुआ ॥१०॥

दोहा

नील गगन में अधर हो
शोभित निज में लीन ।
नील कमल आसीन हो
नीलम से अति नील ॥१॥

शील-झील में तैरते
नेमि जिनेश सलील ।
शील डोर मुझ बाँध दो
डोर करो मत ढील ॥२॥

॥ इति श्री नेमिनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

पार्श्वनाथ-स्तवन

जल वर्षाते घने बादले
काले-काले डोल रहे ।
झंझा चलती बिजली तड़की
घुमड-घुमड़ कर बोल रहे ।
पूर्व वैर-वश कमठ देव हो
इस विध तुमको कष्ट दिया ।
किन्तु ध्यान में अविचल प्रभु हो
घाति कर्म को नष्ट किया ।।१।।

द्युति-मय बिजली-सम पीला निज
फण को मण्डप बना लिया ।
नाग इन्द्र तव कष्ट मिटाने
तुम पर समुचित तना दिया ।।
दृश्य मनोहर तव वह ऐसा
विस्मय-कारी एक बना ।
सध्या में पर्वत को ढकता
समेत-बिजली मेघ घना ।।२।।

आत्म ध्यान-मय कर में खर
तर खड्ग आपने धार लिया ।

मोहरुप निज दुर्जय रिपु को
   पल-भर में बस मार दिया ॥
अचिन्त्य-अद्‌भुत आर्हंत पद को
   फलतः पाया अघहारी ।
तीन लोक में पूजनीय जो
   अतिशयकारी अतिभारी ॥३॥

मनमाने कुछ तापस ऐसे
   तप करते थे वनवासी ।
पाप-रहित तुम को लख, इच्छुक
   तुम-सम बनने अविनाशी ॥
हम सब का श्रम विफल रहा यों
   समझ सभी वे विकल हुए ।
शम-यम-दम मय सदुपदेश सुन
   तव चरणन में सफल हुए ॥४॥

समीचीन विद्या-तप के
   प्रभु रहे प्रणेता वरदानी ।
उग्र-वंश मय विशाल नभ के
   दिव्य सूर्य, पूरण ज्ञानी ॥
कुपथ निराकृत कर भ्रमितों को
   पथिक सुपथ के बना दिये ।
पार्श्वनाथ मम पास वास बस
   करो, देर अब बिना किये ॥५॥

दोहा

खास दास की आस बस
श्वास-श्वास पर वास ।
पार्श्व करो मत दास को
उदासता का दास ॥१॥

ना तो सुर-सुख चाहता
शिव-सुख की ना चाह ।
तव थुति-सरवर में
सदा होवे मम अवगाह ॥२॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥
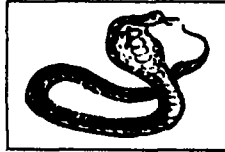
वीर-स्तवन

तव गुण-गण की फैल रही है
विमल कीर्ति वह त्रिभुवन में ।
तभी हो रहे शोषित ऐसे
वीर देव बुध जन-जन में ।।
कुन्द पुष्प की शुक्ल कान्ति-सम
कान्ति धाम शशि हो भाता ।
घिरा हुआ हो जिससे उडुदल
गीत-गगन में हो गाता ।।१।।

सत युग में था कलियुग में
भी तव शासन जयवन्त रहा ।
भव्यजनों के भव का नाशक
मम भव का भी अन्त रहा ।।
दोष चाबु को निरस्त करते
पर मत खण्डन करते हैं ।
निज-प्रतिभा से अतः गणी ये
जिनमत मण्डन करते हैं ।।२।।

प्रत्यक्षादिक से ना बाधित
अनेकान्त मत तव भाता ।

स्याद्-वाद सब वाद-विवादों
का नाशक मुनिवर ! साता ।।
प्रत्यक्षादिक से हैं बाधिक
स्याद्वाद से दूर रहे ।
एकान्ती मत इसीलिए सब
दोष धूल से पूर रहे ।।३।।

दुष्ट दुराशय धारक जन से
पूजित जिनवर रहे कदा ?
किन्तु सुजन से सुरासुरों से
पूजित बंदित रहे सदा ।।
तीन लोक के चराचरों के
परमोत्तम हितकारक हैं ।
पूर्ण ज्ञान से भासमान शिव को
पाया अघहारक हैं ।।४।।

समवशरण थित भव्यजनों को
रुचते मन को लोभ रहे ।
सामुद्रिक औ आत्मिक गुण से
हे प्रभुवर अति शोभ रहे ।।
चमचम चमके निजी कान्ति से
ललित मनोहर उस शशि को ।
जीत लिया तव काय कान्ति ने
प्रणाम मम हो जिन ऋषि को ।।५।।

मुमुक्ष जन के मनवांछित फलदायक !-
नायक ! जिन तुम हो ।
तत्त्व-प्ररुपक तव आगम तो
श्रेष्ठ रहा अति उत्तम हो ।।
बाहर-भीतर श्री से युत हो
माया को निःशेष किया ।
श्रेष्ठ श्रेष्ठतम कठिन कठिनतम
यम-दम का उपदेश दिया ।।६।।

मोह-शमन के पथ के रक्षक
अदया तज कर सदय हुए ।
किया जगत में गमन अबाधित
सभय सभीजन, अभय हुए ।।
ऐसा लगते तब, गज जैसा
मद-धारा, मद बरसाता ।
बाधक गिरि की गिरा करिनियाँ
अरुक अनाहत बस जाता ।।७।।

एकान्ती मत-मतान्तरों में वचन
यदपि श्रुति-मधुर सभी ।
किन्तु मिले ना सुगण कभी भी
नहीं सकल-गुण प्रचुर कभी ।।

तव मत "समन्तभद्र" देव है
सकल गुणों से पूरण हैं ।
विविध नयों की भक्ति-भूख को
शीघ्र जगाता चूरण है ॥८॥

दोहा

नीर-निधी-से धीर हो
बीर बने गंभीर ।
पूर्ण तैर कर पा लिया
भवसागर का तीर ॥१॥

अधीर हूँ मुझे धीर दो
सहन करूँ सब पीर ।
चीर-चीर कर चिर लखूँ
अन्तर की तस्वीर ॥२॥

॥ इति श्री वीरनाथ जिनेंद्राय नमो नमः ॥

॥ इति श्री आचार्य विद्यासागरजी महाराज अनुवादित
स्वयम्भूस्तोत्राय नमो नमः ॥

भूल क्षम्य हो !

लेखक कवि मैं हूँ नहीं, मुझ में कुछ नहि ज्ञान ।
त्रुटियाँ होवें यदि यहाँ, शोध पढ़ें धीमान् ॥

मंगलकामना

विना-भीति विचरुँ सदा बन में ज्यों मृगराज ।
ध्यान-धरुँ परमात्म का निश्चल हो गिरिराज ॥१॥

सागर सम गंभीर मैं बनूं चन्द्र-सम शान्त ।
गगन-तुल्य स्वाश्रित रहूँ हरुँ दीप-सम ध्वान्त ॥२॥

रवि सम पर-उपकार मैं करुँ समझ कर्तव्य ।
रखूँ न मन में मान-मद सुन्दर हो भवितव्य ॥३॥

चिर संचित सब कर्म को राख करुँ बन आग ।
तप्त आत्म को शान्त भी करुँ बनूँ गतराग ॥४॥

सदा संग बिन पवन सम विचरुँ मैं निस्संग ।
मंत्र जपूँ निज तन्त्र का नष्ट शीघ्र हो अंग ॥५॥

तन मन को तप से तपा स्वर्ण बनूँ छविमान ।
भक्त बनूँ भगवान को, भजूँ बनूँ भगवान ॥६॥

द्रव्य हेय जड़मय तजूँ ध्येय बना निज द्रव्य ।
कीलित कर निज चित्त को पाऊँ शिव-सुख दिव्य ॥७॥

भद्र बनूँ बस भद्रता जीवन का श्रृंगार ।
द्रव्य दृष्टि में निहित है सुख का वह संचार ॥८॥

तापस बस प्रति लोम हो मुझमें चिर बस जाय ।
है यह हार्दिक भावना मोह सभी नश जाय ॥९॥

गुरु-स्मृति

तरणि "ज्ञानसागर" गुरो ! तारो मुझे ऋषीश ।
करुणाकर ! करुणा करो, कर से दो आशीष ॥

स्थान एवं समय-परिचय

भव सागर से भीत हैं सागर के सागार ।
प्रथम बार पहुँचा यहाँ ससंघ मैं अनगार ॥१॥

द्रव्य-गगन-गति-गंध की बीर जयन्ती आज ।
पूर्ण किया इस ग्रन्थ को ध्येय ! बनूँ जिनराज ॥२॥

श्रीमद् आचार्य श्री उमास्वामि विरचित

तत्वार्थसूत्रम्

त्रैकाल्यं द्रव्यं-षट्कं नव-पद-सहितं
जीव-षट्काय-लेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया
व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः ॥

इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः
प्रोक्तमर्हद्भिरी शेः ।
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान यः
स वैशुद्धदृष्टिः ॥१॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे
चउविहाराट्टणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं
आराहणा कमसो ॥२॥

उज्झोवणमुज्झोवणं णिव्वाणं
साहणं चणिच्छरणं ।
दंसण-णाण-चरित्तं
तवाणमाराहणा भणिया ॥३॥

मोक्ष मार्गस्य नेतारं
भेत्तारं कर्म भू भृताम् ।
ज्ञातारं बिश्वतत्वानं ।
वंदे तद्गुण लब्धये ॥४॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्नयासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽ-धिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥ सत्संख्याक्षेत्र-स्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रु-वाणां सेतराणां ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्यया-ऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः

षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्र-स्वामिविषयेभ्यो-ऽवधिमनः पर्ययोः ॥२५॥ मतिश्रुतयो र्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रुपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोप-लब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रह-व्यवहारर्जु सूत्रशब्दसमभिरुढैवंभूता नयाः ॥३३॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभ भोगापभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रि त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्र-संयमासंयमाश्च ॥५॥ गतिकषाय-लिङ्गमिथ्या-दर्शनाज्ञानाऽसंयताऽसिद्धलेश्याश्चतुस्चतुस्त्र्येकैकै-कैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥७॥

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्काऽमनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजो-वायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पंचेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैक वृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणी गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एक समयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकश-स्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणाम मुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥ औदारिक वैक्रियिकाहारकतैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिघाते ॥४०॥

अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयत्तस्यैव ॥४९॥ नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोतमदेहाऽसंख्येय वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधुमतमोमहातमः प्रभोभूमयोघनाम्बु वाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविशति पञ्चदश दशत्रिपञ्चोनैक नरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याऽऽशुभतरले-श्यापरिणामदेह वेदनाविक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरित दुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टासुरोदीरित दुःखाश्च प्रक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदश-सप्तदश द्वाविशतित्रयस्त्रिशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः

॥८॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्त्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरत - हैमवत - हरि - विदेह - रम्यक -हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि शिखरिणी वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन तपनीयवैडूर्यरजत-हेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥ पद्मधमहापद्मतिगिच्छ केशरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन सहस्त्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदा पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्रीं-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्काः ॥१९॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासी तासीतोदानारी नरकान्तासुवर्ण-रुप्यकूलारक्ता रक्तोदाः सरितस्तन्यमध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दश-नदीसहस्रपरिवृतागङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशति भागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुण-द्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ता ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः

॥२६॥ भरतैरावतयो र्वृद्धिह्रासौषट्समयाभ्यामुत्स र्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हेमवतकहारिवर्षक दैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिति परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

॥ इति श्री तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीता-न्तलेश्याछ ॥२॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोप पन्नपर्यंताः ॥३॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंश पारिषदात्मर क्षलोक पालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषि काश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोक-पालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयो र्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्शरुपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

भवनवासिनोऽसुरनागविद्यु त्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि द्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरग गन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्ण-कतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४। बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मै - शानसानत्कुमार - माहेंद्र - ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठशुक्र - महाशुक्र - शतारसहस्त्रारेष्वानत - प्राणतयोरारणा - च्युतयोर्नवसु -ग्रैवेयिकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थितिप्रभावसुखद्युति लेश्या विशुद्धीन्द्रियावधि विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीत पद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयिकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोय तुषिताव्याबाधा-रिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्यानेयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्यो-पमार्द्ध हीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः

सागरोपमेऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रिसप्तन वैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसुग्रैवेयिकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वाऽपूर्वानन्तरा ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्ष सहस्राणि प्रथमायाम ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्यावस्थिता-न्यरुपाणि ॥४॥ रुपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ अखंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानंताः ॥९॥ संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्मधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम्

॥१५॥ प्रदेशसंहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुःख जीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तनापरिणाम-क्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्दबन्ध-सौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया तपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसङ्घातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरुक्षत्वा-द्बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ गुण साम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

॥ इति श्री तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥१॥ स आस्त्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्या पथयोः ॥४॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्च पञ्च विंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञात भावाधिकरणवीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानु मतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोग-निसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्स-र्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयो : ॥१०॥ दुःख - शोक - तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभयस्थान्य-सद्वेद्यस्य ॥११॥ भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सराग-संयमादि-योगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया-तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशील व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नाः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरण-मर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादान-निक्षेपण समित्यालो-कितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोधलोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्य शुद्धि-सधर्माऽविसवांदाः पञ्च ॥६॥ स्त्री-राग-कथा-श्रवण-तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण-पेर्वरता-नुस्मरणवृष्येष्ट-रस-स्वशरीर संस्कार-त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय - विषय -रागद्वेष वर्जनानि पञ्च

।।८।। हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।।९।। दुःखमेव वा ।।१०।। मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्व-गुणाधिकक्लिश्यमानाऽविनेयेषु ।।११।। जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ।।१२।। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।।१३।। असदभिधानमनृतम् ।।१४। अदत्तादानं स्तेयम् ।।१५।। मैथुनमब्रह्म ।।१६।। मूर्च्छा परिग्रहः ।।१७।। निःशल्यो व्रती ।।१८।। अगार्यनगारश्च ।।१९।। अणुव्रतोऽगारी ।।२०।। दिग्देशानर्थदण्ड-विरतिसामायिकप्रोषधोप-वासोपभोग-परिभोगपरिमाणातिथिसम्विभा-गव्रतसम्पन्नश्च ।।२१।। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।।२२।। शङ्काकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि प्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।।२३।। व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।।२४।। बन्धवधच्छेदातिभारा रोपणान्नपान-निरोधाः ।।२५।। मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यान-कूट-लेख-क्रियान्या-सापहार-साकार-मन्त्रभेदाः ।।२६।। स्तेन-प्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्ध-राज्यातिक्र महीनाधिक मानोन्मान-प्रतिरुपक-व्यवहाराः ।।२७।। पर-विवाह -करणे त्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमना नङ्गक्रीडाकामतीव्रा भिनिवेशाः ।।२८।। क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धन-धाण्य-दासीदास-कुप्यभाण्ड-

प्रमाणाति-क्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्र-वृद्धिस्मृत्यन्यराधानानि ॥३०॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोगशब्दरुपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कन्द-र्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगा-नर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनु-पस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितो-त्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्तसम्बन्धस मिश्राभिषवदुः पक्काहाराः ॥३५॥ सचित निक्षेपापिधान-परव्यपदेश मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणा-शंसामित्रानुराग - सुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम गोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्चनवद्वयष्टाविंशति चतुर्द्विचत्वारिंश-द्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥

मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानाम् ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचला-प्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीया-कषाकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषाय कषायौ हास्य रत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपु न्नपुंसकवेदा अनंतानुबन्ध्य - प्रत्याख्यान - प्रत्याख्यान - संज्वलन - विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजाति शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माणबन्धन-संघात-संस्थानसंहनन स्पर्शरसगन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातात पोद्योतोच्छवास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभग सुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्ति स्थिरादेययशःकीर्ति सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चै र्नीचैश्च ॥१२॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरो पमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नाम गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामंन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नाम

प्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म प्रदेशेष्व-नन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्यशुभायुर्ना-मगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्तिसमिति धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वा-शुच्या-स्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-स्वाख्यात-तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थंपरिषोढव्याः परिषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्रीचर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वधयाचनाऽलाभ-रोगतृण-स्पर्शमल-सत्कार पुरस्कार-प्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थ वीतरागयोश्चतुदर्श ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादर साम्पराये सर्वे ॥१२॥

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शन मोहान्तराय योरदर्शनालाभो ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्या-क्रोशयाचनासत्कार पुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥१७॥ सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धिसूक्ष्म-साम्पराय-यथाख्यातमिति-चारित्रं ॥१८॥ अनशनावमौदर्यवृत्ति परिसंख्यानरस परित्याग विवक्त शय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त्यस्वाध्याय-व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नव चतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रम प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचना-प्रतिक्रमणतदुभय-विवेक-व्यत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञानदर्शन चारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्यायतप-स्विशैक्षग्लानगणकुल - सङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्र्-चिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त रौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥

वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेय -विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशा विरतयोः ॥३५॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रिया -निवर्तीनि ॥३९॥ त्र्यैकयोगकाय-योगायोगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावक विरतानन्त - वियोजक - दर्शन - मोहक्षपकोप - शमकोपशान्तमोहक्ष - पकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽ संख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकवकुशकुशील निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयमश्रुतप्र तिसेवनातीर्थ-लिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥४७॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र

केवलसम्यक्त्वज्ञान-दर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदन न्तरमूर्ध्वं गच्छन्त्यालोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगा दसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात् तथागति परिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलाल-चक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवद् ऐरण्ड बीजवद् अग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधि तज्ञानाऽवगाहना न्तरसंख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः ॥९॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं,
व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं,
को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने,
तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य,
भाषितं मुनिपुङ्गवै ॥

जं सक्कइ तं कीरइ जं चण
सक्केइ तं च सद्दहणं ।
सद्दहमणो जीवो पावइ
अजरामरं ठाणं ॥

तवयरणं वयधरंण,
वयधरंण संयम सरणं च जीवदया
करणं अंते समाहि मरणं
चउगइ दुःक्खं णिवारेइ ॥

पढमे चउक्के पढमं ।
पंचमिय जाण पुद्गलं तच्च ॥
छह सत्तमेसु आस्सव
अट्ठम्मिय बन्धं च णादव्वा ॥

णावमे संवरणिझ्जर ।
दहमे मोक्खं वियाणेइ ।
इह सत्त तच्च भणियं
जिण पणितं दह सुत्ते ॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो,
लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टै च सहस्त्रसंख्यमेत-
त् श्रुतं पञ्चपदं नमामि ॥१॥

अरिहन्त भासियत्थं
गणहरदेवेहि गंथियं सव्वं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो
सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥२॥

॥ इति श्री तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्र समाप्तम् ॥

श्री अमितगतिसूरिविरचित

भावना द्वात्रिंशतिका

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

शरीरतः कर्त्तुमनन्तशक्तिं,
विभिन्नमात्मानमपास्त दोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥

मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निषाताविव बिंबिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमोधुनानौ हृदि दीपिकाविव ॥४॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः,
प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता,
तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं सदा ॥५॥

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना,
मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं,
मनोवचः कायकषायनिर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं,
भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं ।
जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृते र्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः,
स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने,
त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः,
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः,
समस्तसंसार - विकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालं ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो,
यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः,
स देवदेवो हृदये ममास्तम् ॥१५॥

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गा,
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः,
सिद्धो बिबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः,
यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनाभासि ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्छा,
विषादनिद्राभयशोकचिन्ता ।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चः,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितः ।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥

न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां व कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चिंत्य विमुंच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्रमुक्त्यै ॥२४॥

आत्मानमात्मन्यवलोकमानः,
त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र,
स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

यस्यास्तिनैक्यं वपुषापि सार्द्धं,
तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं,
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं,
संसारकान्तार-निपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्षमाणो,
निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परोददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः,
सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते,
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः,
परमात्मान मीक्षते ।
योऽनन्यगतचेतस्को,
यात्यसौ पदमव्ययम् ॥३३॥

॥ इति अमितगतिसूरिविरचित सामायिकपाठाय नमः ॥

लघु सामायिकपाठः

सिद्धिं सम्पूर्णभव्यार्थ, सिद्धेः कारण्यमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्र, प्रतिपादनम् ॥१॥

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्ट, पादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं, लोकत्रितयमंगलम् ॥२॥

सिद्धवस्तुवचो भक्त्या सिद्धान् प्रणमतां सदा ।
सिद्ध-कार्याः शिवं प्राप्ताः सिद्धिं ददतु नोऽव्ययाम् ॥३॥

नमोस्तु धुतपापेभ्यः, सिद्धेभ्यः ऋषिपरिषदि ।
सामायिकं प्रपद्येऽहं, भवभ्रमणसूदनम् ॥४॥

समता सर्वभूतेषू, संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्याग, स्तद्धि सामायिकं मतम् ॥५॥

साम्यं मे सर्वभूतेषु, वैरं मम न केनचित् ।
आशाः सर्वाः परित्यज्य, समाधिमहमाश्रये ॥६॥

रागद्वेषान्ममत्वाद्वा, हा मया ये विराधिताः ।
क्षाम्यन्तु जन्तवस्ते मे, तेभ्यो मृष्याम्यहं पुनः ॥७॥

मनषा वपुषा वाचा, कृतकारितसम्मतैः ।
रत्नत्रयभवं दोषं, गर्हे निन्दामि वर्जये ॥८॥

तैरश्चं मानवं दैव, मुपसर्गं सहेऽधुना ।
कायाहारकषायादीन्, प्रत्याख्यामि त्रिशुद्धितः।।९।।

रागंद्वेषं भयं शोकं, प्रहर्षौत्सुक्यदीनताः ।
व्युत्सृजामि त्रिधा, सर्वामरतिं रतिमेव च ।।१०।।

जीविते मरणे लाभेऽलाभे, योगे विपर्यये ।
बन्धावरौ सुखे दुःखे, सर्वदा समता मम ।।११।।

आत्मैव मे सदा ज्ञाने, दर्शने चरणे तथा ।
प्रात्याख्याने ममात्मैव, तथा संसारयोगयोः ।।१२।।

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञानदर्शनलक्षणः ।
शेषा बहिर्भवा भावाः, सर्वे संयोगलक्षणः ।।१३।।

संयोगमूलाजीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा ।
तस्मात्संयोगसंबंन्धं, त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहम् ।।१४।।

एवं सामायिकात्, सम्यक्सामायिकमखण्डितम् ।
वर्त्ततां मुक्तिमानिन्या, वशीचूर्णायितं मम ।।१५।।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः ।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्वे ।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः ।।१६।।

तव पादौ मम हृदये मम
हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र
तावद्यावन्निवण सम्प्राप्तिः ॥१७॥

अक्खर पयत्थहीणं मत्ताहीणं
च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाण देवय
मज्झवि दुक्खक्खयं दिन्तु ॥१८॥

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ
समाहिमरणं च बोहिलाओ य ।
मम होउ जगदबन्धव जिणवर
तव चरणसरणेण ॥१९॥

॥ इति श्री लघु सामायिकपाठ स्तोत्राय नमः ॥
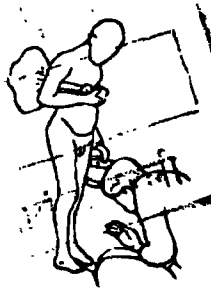
द्वितीय खंड

श्री ईर्यापथशुद्धिः

निःसंगोऽहं जिनानां सदन
मनुपमम् त्रिःपरीत्यैत्य भक्त्या ।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरण
परिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम् ॥

भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम
दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यम्
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहित
ममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥१॥

श्रीमत्पवित्रमक-लङ्कमनन्त-कल्पं
स्वायंभुवं सकल-मङ्गलमादि-तीर्थम् ।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥२॥

श्रीमत्परमगंभीर, स्याद्वादा मोघलाञ्छनम् ।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनम् ॥३॥

श्रीमुखालोकनादेव, श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः ॥४॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य
देव ! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणः ॥५॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

नमो नमः सत्वहितंकराय
वीराय भव्याम्बुजभास्कराय ।
अनन्त-लोकाय सुरार्चिताय
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥७॥

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय
विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥८॥

देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग !
सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! सिद्ध ! महानुभाव !
त्रैलोक्यनाथ ! जिनपुंगव ! वर्द्धमान !
स्वामिन् ! गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥९॥

जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः ॥१०॥

जयतु जिनवर्द्धं मानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबन्धुः।
त्रिदशपतिमुकुटभासुरचूडामणि रश्मिरंजितारुणचरणः ॥११॥

जय जय जय त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे,
नुद नुद नुद स्वान्त-ध्वान्तं जगत्कमलार्क नः।
नय नय नय स्वमिन्! शांतिं नितान्त-मनन्तिमाम्
नहि नहि नहि त्राता, लोकैक-मित्र-भवत्परः ॥१२॥

चित्ते मुखे शिरसि पाणि-पयोज-युग्मे
भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव ।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति
यश्चर्करीति तव देव ! स एव धन्यः ॥१३॥

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः ।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ॥१४॥

रूपं ते निरुपाधि सुन्दरमिदं पश्यन् सहस्रेक्षणः
प्रेक्षाकौतुककारिकोऽत्र भगवन्नोपैत्यवस्थान्तरम् ।
वाणीं गद्गदयन्वपुः पुलकयन्नेत्रद्वयं स्रावयन्
मूर्धानं नमयन्करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् ॥१५॥

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति।
श्रेयःसूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति ॥

प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणम्।
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन किं विज्ञापितैर्गोपितैः ॥१६॥

त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटि
प्रभाभिरालीढपदारविन्दम् ।
आमूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं
जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥१७॥

करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी ।
ईर्यापिथमिति भीत्या मुंचे तद्दोषहान्यर्थम् ॥१८॥

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा
देकेन्द्रिय प्रमुख जीव निकायबाधा ।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगांतरेक्षा,
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥१९॥

पडिक्कमामि भन्ते ! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे पाणुग्गमणे, विज्जुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवणखेलसिंघाणयवियडियपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइन्दिया वा, बेइंदिया वा, ते इंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचेंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेसिदा वा, छिंदिदा

वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहिकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं करोमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि। ''ॐ णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं'' ।। जाप्यानि ।।९।।

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये ।

इच्छामि भंते ! इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिम-चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण, जुगंतरदिट्ठिणा, भव्वेण, दट्ठव्वा, पमाददोसेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं एदेसिं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो समणुमण्णिदो वा, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पापिष्ठेन दुरात्मा जडधिया मायाविना लोभिना ।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना ।
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं निर्वर्तये कर्मणाम् ।।१।।

जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं, प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्।
अनन्तबोधादिभवं गुणौघं, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये।।२।।

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेणस क्लकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतंश्रीमत्सि-द्धभक्तिकायोत्सर्गं करो म्यहम् ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं । चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धामंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धेसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ॥ अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करेमि, किरियम्मं । करेमि भंते ! सामाइयं सव्वंसावज्जजोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसावचसा-कायेण, ण करेमि ण कारेमि अण्णंकरंतं पि ण समणु मणामि। तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि,

णिंदामि, गरहामि जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं, वोस्सरामि। जीवियमरणे लाहालाहे संजोगविप्पजोगे य बंधुरिसुहदुःक्खादो समदा सामाइअं णाम ॥

त्थोस्सामि हं जिणवरे,
तित्त्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए,
विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥

लोयस्सुज्जोयरे,
धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से,
चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

उसहमजियं च वंदे,
संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं,
जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥

सुविहं च ! पुप्फयंतं,
सीयल सेयं च वासुपूज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं,
धम्मं संति च वंदामि ॥४॥

कुन्थुं च जिणवरिन्दं
अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामिरिट्ठनेमिं,
तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

एवं मए अभित्थुया,
विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा,
तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

कित्तिय वंदिय महिया,
एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं,
दिन्तु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहिं णिम्मलयरा,
आइच्चेहिं अहियंपया संता ।
सायरमिव गम्भीरा,
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

॥ इति श्री इर्यापथ भक्तिः नमः ॥

अथ नमोऽस्तुते पौर्वान्हिक (अपरान्हिक) आचार्य वंदनायां श्री सिद्ध भक्ति कायोत्सर्गम् करोम्यहम् ।

श्री लघु सिद्ध भक्ति

सम्मत्त-णाण-दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु लहु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।

तव सिद्धे, मय-सिद्धे, संजम सिद्धे, चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

इच्छामि भंते ! सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्म-दंसण सम्म-चरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ-विह-कम्मविप्प मुक्काणं, अट्ठ-गुण संपण्णाणं, उड्ढ-लोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम सिद्धाणं, चरित-सिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहि-लाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अथ नमोऽस्तुते पौर्वान्हिक (अपरान्हिक) आचार्य वंदनायां श्री श्रुत भक्ति कायोत्सर्गम् करोम्यहम् ।

श्री लघु श्रुतभक्ति

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो,
लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानी चैव।
पंचाश-दष्टौ च सहस्त्र-संख्या,
मेतच्छुतं पुञ्चपदं नमामि ॥१॥

अरहंत-भासि-यत्थं,
गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भक्ति-जुत्तो, सुद-
णाण-महोवहिं सिरसा ॥२॥

इच्छामि भन्ते । सुदभत्ति का उस्सग्गो, कओ, तस्स आलोचेउं, अंगो वंगपइण्णए, पाहुड्य, परियम्म-सुत्त-पढमाणि, ओग पुव्व-गय-चूलिया, चेव, सुत्तत्थय-थुई-धम्म कहाइयं, सया निच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि मरणं, जिणगुण सम्पत्ति, होउ मज्झं।

श्री लघु आचार्य भक्ति

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः,
स्व-पर-मतविभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिम्यो,
नमो गुरु भ्यो गुणगुरु भ्यः ।।१।।

छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण संदरिसे ।
सिस्सागुणग्गह-कुसले, धम्मायरिये सदा वंदे ।।२।।

गुरु-भत्ति संजमेण य, तरन्ति संसार सायरं घोरम् ।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेति ।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः ।
षट्-कर्माभिरता-स्तपोधन-धनाः, साधु-क्रिया-साधवः ।।४।।

शील-प्रावरणा-गुम-प्रहरणाश्चन्द्रार्क तेजोऽधिकाः ।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटन भटाः प्रीणंतु माम् साधवः ।।५।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान दर्शन-नायकः ।
चारित्रार्णव गम्भीरा, मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।।६।।

अंच्चलिका

इच्छामि भन्ते । आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित जुत्ताणं, पंचविहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालन-रयाणं, सव्व साहुणं, सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदमि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण गुण सम्पत्ति होउ मज्झं ।

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तव समेतं श्रीमत् सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अथ श्री सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृति
समुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपम
गुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः ॥
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः
प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात् ।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा
हेमभावोपलब्धिः ॥१॥

नाभावः सिद्धिरिष्टा न
निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्तेः ।
अस्त्यात्मानादिबद्धः
स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी ॥
ज्ञाता दृष्टा स्वदेहप्रमिति
रुपसमाहारविस्तारधर्मा ।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत
इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२॥

स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभव
विमलसदर्शनज्ञानचर्या- ।
संपद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया
व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः ॥
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवर
सुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि- ।
ज्योतिर्वातायनादिस्थिर
परमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ॥३॥

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं
संप्रतृप्यन्वितन्वन् ।
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं
निचितमनुपमं प्रीणयन्नीशभावम् ॥
कुर्वन्सर्वप्रजानामपर
मभिभवन्ज्योतिरात्मानमात्मा ।
आत्मन्येवात्मनासौ क्षण
मुपजनयन्सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥

छिंदन् शेषानशेषान्निगल
बलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः ।
सूक्ष्मत्वाग्र् यावगाहागुरु लघुकगुणैः
क्षायिकैः शोभमानः ॥

अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवण

विषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै- ।

रूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो

धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ॥५॥

अन्याकाराप्तिहेतुर्नच भवति

परो येन तेनाल्पहीनः ।

प्रागात्मोपात्तदेहप्रति

कृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः ॥

क्षुत्तृष्णाश्वासकास

ज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह- ।

व्यापत्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः

कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

आत्मोपादानसिद्धं स्वय

मतिशयवद्वीतबाधं विशालम् ।

वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं

निःप्रतिद्वन्द्वभावम् ॥

अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं

शाश्वतं सर्वकालम् ।

उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य

सिद्धस्य जातम् ॥७॥

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद्वि
    विधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या ।
नास्पृष्टैर्गन्धमाल्यैर्न हि
    मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ॥
आतङ्कार्तेरभावे
    तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद् ।
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे
    दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपः
    संयमज्ञानदृष्टि- ।
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो
    विश्वदेवाधिदेवाः ॥
भूता भव्या भवन्तः सकलजगति
    ये स्तूयमाना विशिष्टैः ।
तान्सर्वान्नौम्यनंतांनिजिगमिषुररं
    तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥

कृत्वा कायोत्सर्गं
    चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम् ।
अति भक्तिसंप्रयुक्तो यो वंदते स
    लघु लभते परमसुखम् ॥१०॥

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउसग्गो कओ । तस्सालो - चेउं, सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचारित्त - जुत्ताणं अट्ठविहकम्म - विप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढ लोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चारित्त सिद्धाणं, अतीताणागद वट्ट माणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

॥ इति श्री सिद्धभक्ति नमः ॥
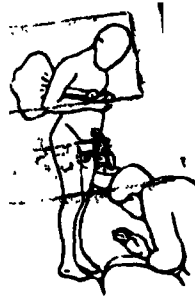
अथ श्री प्राकृत सिद्धभक्तिः

अट्ठविहक्कम्ममुक्के,
अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविटठे,
णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं ॥१॥

तित्थयरेदरसिद्धे,
जलथलआयासणिव्वुदे सिद्धे ।
अंतयडेदरसिद्धे,
उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे ॥२॥

उड्ढमहतिरियलोए,
छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे ।
उवसग्गणिरुवसग्गे,
दीवोदहिणिव्वुदे य वंदामि ॥३॥

पच्छायडे य सिद्धे,
दुगतिगचदुणाणपंचचदुरजमे ।
परिवडिदा परिवडिदे,
संजमसम्मत्तणाणमादीहिं ॥४॥

साहरणासाहरणे,
असमुग्घादेदरे य णिव्वादे ।
ठिदिपलियंकणिसण्णे,
विगयमले परमणाणगे वंदे ॥५॥

पुंवेदं वेदंता,
जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
सेसोदयेण वि तहा,
झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ॥६॥

पत्तेयसयंबुद्धा,
बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा ।
पत्तेयं पत्तेयं समयं,
समयं च पणिवदामि सदा ॥७॥

पण णव दु अट्ठवीसा,
चउतियणवदीयदोण्णिपंचेव ।
बावण्णहीणबियसय,
पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥८॥

अइसयमव्वाबाहं,
सोक्खमणंतं अणोवमं परमं ।
इंदियविसयातीदं,
अप्पत्थं अच्चवं च ते पत्ता ॥९॥

लोयग्गमत्थयत्था,
चरमसरीरेण ते दु किं चूणा ।
गयसित्थमूसगब्भे
जारिसआयार तारिसायारा ॥१०॥

जरमरणजम्मरहिया,
ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स ।
देंतु वरणाणलाहं,
बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥११॥

किच्चा काउस्सग्गं,
चउरङ्ङयदोसविरहिदं सुपरिसुद्धं ।
अइभत्तिसंपउत्तो, जो वंददि
सोलहु लहइपरमसुहं ॥१२॥

संसारचक्रगमनागतिविप्रमुक्ता- ।
न्नित्यं जरामरणजन्मविकारहीनान् ॥
देवेंद्रदानवगणैरभिपूज्यमानान् ।
सिद्धांस्त्रिलोकमहितान्शरणं प्रपद्ये ॥१३॥

असरीरा जीवघणा,
उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।
सायारमणायारा,
लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥१४॥

मूलुत्तरपयडीणं,
बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का ।
मङ्गलभूदा सिद्धा,
अट्ठगुणातीदसंसारा ॥१५॥

अट्ठविहकम्मवियला,
सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा,
लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥१६॥

सिद्धा णट्ठट्ठमला,
विसुद्धबुद्धीय लद्धीसब्भावा ।
तिहुयणसिरसेहरया,
पसीयंतु भंडारया सव्वे ॥१७॥

गमणागमणविमुक्के,
विहडियकम्मट्ठपयडिसंघाए ।
सासयसुहसंपत्ते,
ते सिद्धा वंदिमो णिच्चं ॥१८॥

जयमंगलभूदाणं,
विमलाणं णाणदंसणमयाणं ।
तइलोयसेहराणं,
णमो सया सव्वसिद्धाणं ॥१९॥

सम्मत्तणाणदंसण,
वीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वाबाहं,
अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥२०॥

तवसिद्धे णयसिद्धे,
संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य,
सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२१॥

इच्छामि, भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविधकम्म-विप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद वट्टमाण कालत्तय सिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोधिलाहो, सुगदिगमणं, समाधिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होदु मज्झं ।

अथार्हंत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत् श्री श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री श्रुतभक्तिः

स्तोष्ये संज्ञानानि,
परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि ।
लोकोलोक विलोकन, लोलित
सल्लोकलोचनानि सदा ।।१।।

मतिज्ञान की स्तुति

अभिमुखनियमितबोधन,
माभिनिबोधितकमनिन्द्रियेन्द्रियजम् ।
बह्वद्यवग्रहादिककृत,
षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदम् ।।२।।

विविधर्द्धिबुद्धिकोष्ठ,
स्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिकं ।
संभिन्नश्रोतृतया, सार्धं
श्रुतभाजनं वन्दे ।।३।।

श्रुतज्ञान की स्तुति

श्रुतमपि जिनवरविहितं,
गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम् ।
अङ्गाङ्गबाह्यभावित,
मनंतविषयं नमस्यामि ॥४॥

भावश्रुतज्ञान

पर्यायाक्षरपदसं, घातप्रतिपत्तिकानुयोगविधीन् ।
प्राभृतकप्राभृतकं, प्राभृतकं वस्तुपूर्वं च ॥५॥

तेषां समासतोऽपि च, विंशतिभेदान्समश्नुवानं तत् ।
वंदे द्वादशधोक्तं, गंभीरवरशास्त्रपद्धत्या ॥६॥

श्रुतज्ञान के बारह भेद

आचारं सूत्रकृतं, स्थानं समवायनामधेयं च ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च, ज्ञातृकथोपासकाध्ययने ॥७॥

वंदेऽन्तकृद्दश, मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थुम् ।
प्रश्नव्याकरणं हि, विपाकसूत्रं च विनमामि ॥८॥

दृष्टिवाद (बारहवे) अंग की स्तुति

परिकर्म च सूत्रं च, स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते ।
सार्द्धं चूलिकयापि च, पंचविधं दृष्टिवादं च ॥९॥

पूर्वगतं तु चतुर्दश, धोदितमुत्पादपूर्वमाद्यमहम् ।
आग्रायणीयमीडे, पुरूवीर्यानुप्रवादं च ॥१०॥

संततमहमभिवंदे, तथास्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च ।
ज्ञानप्रवादसत्यप्रवाद, मात्मप्रवादं च ॥११॥

कर्म प्रवादमीडेऽथ, प्रत्याख्याननामधेयं च ।
दशमं विद्याधरं, पृथुविद्यानुप्रवादं च ॥१२॥

कल्याणनामधेयं, प्राणावायं क्रियाविशालं च ।
अथ लोकबिन्दुसारं, वन्दे लोकाग्रसारपदं ॥१३॥

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टा,
दश च द्वयोर्द्विषट्कं च ।
षोडश च विंशतिं च,
त्रिंशतमपि पंचदश च तथा ॥१४॥

वस्तूनि दश दशान्ये,
ष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम् ।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि,
विंशतिं विंशतिं नौमि ॥१५॥

आग्रायणीय पूर्व के १४ अधिकारों के नाम

पूर्वांतं ह्यपरान्तं, ध्रुवमध्रुवच्च्यवनलब्धिनामानि ।
अध्रुवसंप्रणिधिं, चाप्यर्थं भौमाव याद्यं च ॥१६॥

सर्वार्थकल्पनीयं, ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम्।
सिद्धिमुपाध्यं च तथा, चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ।।१७।।

कर्म प्रकृति के २४ अनुव्योगों के नाम

पंचमवस्तुचतुर्थ, प्राभृतकस्यानुयोगनामानि ।
कृतिवेदने तथैव, स्पर्शनकर्मप्रकृतिमेव ।।१८।।

बंधननिबंधनप्रक्रमानु,
पक्रममथाभ्युदयमोक्षौ ।
संक्रमलेश्ये च तथा,
लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ।।१९।।

सातमसातं दीर्घं,
ह्रस्वं भवधारण्णीयसंज्ञं च ।
पुरुपुद्गलात्मनाम च,
निधत्तमनिधत्तमभिनौमि ।।२०।।

सनिकाचितमनिकाचित, मथ कर्म
स्थितिकपश्चिमस्कंधौ ।
अल्पबहुत्वं च यजे,
तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ।।२१।।

द्वादशांग श्रुतज्ञान की पद संख्या

कोटीनां द्वादशशत,
मष्टापंचाशतं सहस्त्राणाम् ।
लक्षत्र्यशीतिमेवच, पंच
च वंदे श्रुतपदानि ॥२२॥

एक एक पद के अक्षरों की संख्या

षोडशशतं चतुस्त्रिंशतं
कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि ।
शतसंख्याष्टासप्तति, मष्टाशीतिं
च पदवर्णान् ॥२३॥

अंग बाह्य के भेदों की स्तुति

सामायिकं चतुर्विंशति, स्तवं
वंदनां प्रतिक्रमणं ।
वैनयिकं कृतिकर्म च,
पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥२४॥

वरमुत्तराध्ययनमपि,
कल्पं व्यवहारमेवमभिवंदे ।
कल्पाकल्पं स्तौमि,
महाकल्पं पुंडरीकं च ॥२५॥

परिपाट्या प्रणिपतितो, ऽस्म्यहं
महापुण्डरीक नामैव ।
निपुणान्यशीतिकं,
च प्रकीर्णकान्यंगबाह्यानि ॥२६॥

अवधिज्ञान की स्तुति

पुद्गलमर्यादोक्तं,
प्रत्यक्षं सप्रभेदमवधिं च ।
देशा-वधि-परमावधि-,
सर्वावधिभेद-मभिवंदे ॥२७॥

मनः पर्ययज्ञान की स्तुति

परमनसि स्थितमर्थं,
मनसा परिविद्य मंत्रिमहितगुणम् ।
ऋजुविपुलमतिविकल्पं,
स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ॥२८॥

केवलज्ञान की स्तुति

क्षायिकमनन्तमेकं,
त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् ।
सकलसुखधाम सततं,
वंदेऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥

स्तुति के फल की प्रार्थना

एवमभिष्टुवतो मे,
ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि ।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि,
ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम् ॥३०॥

इच्छामि भंते ! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म सुत्तपढमाणिओगपुव्य-गयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

॥ इति श्री श्रुतभक्ति नमः ॥

अथ श्री प्राकृत श्रुत भक्तिः

सिद्धवरसासणाणं, सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं ।
काऊण णमोक्कारं, भत्तीए णमामि अंगाइं ॥१॥

आयारं सुद्धयडं, ठाणं समवायबाहुपण्णत्ती ।
णाणाधम्मकहाओ, उवासयाणं अज्झयणं ॥२॥

वंदे अंतयडदसं, अणुत्तरदसं च पण्हवायरणं ।
एयारसमं च तहा, विवायसुत्तं णमंसामि ॥३॥

परियम्मसुत्तपढमाणु, ओयपुव्वगयचूलिया चेव ।
पवरदरदिट्ठिवादं तं, पंचविधं पणिवंदामि ॥४॥

उप्पायपुव्वमग्गा, यणीयविरियत्थि णत्थि य प्पवादं ।
णाणासच्चपवादं, आदा कम्मप्पवादं च ॥५॥

पच्चक्खाणं विज्जाणुवायं, कल्लाणणामवरपुव्वं ।
पाणावायं किरियाविसाल, मथ लोयबिंदुसारसुदं ॥६॥

दसचउदसअट्ठट्ठारस, बारस तहेय दोसु पुव्वेसु ।
सोलसवीसंतीसं, दसमम्मि य पण्णरसबत्थू ॥७॥

एदेसिं पुव्वाणं, जावदियो वत्थुसंगहो भणियो ।
सेसाणं पुव्वाणं, दससदसवत्थू पणिवदामि ॥८॥

एक्केक्कम्मि य वत्थू,
वीसं वीस च पाहुडा भणिया ।
विसमसमा वि य वत्थू,
सव्वे पुण पाहुडेहिं समा ॥९॥

पुव्वाणं वत्थुसयं,
पंचाणवदी हवंति वत्थूओ ।
पाहुडतिण्णिसहस्सा, णव य
सदा चोद्दसाणं पि ॥१०॥

एवमए सुदपवरा,
भत्तीराएण संथुया तच्चा ।
सिग्घं मे सुदलाहं,
जिणवरवसहा पयच्छंतु ॥११॥

क्षपक श्लोक

अर्हद्वक्त्र प्रसूतं गणधर रचितं द्वादशांगं विशालं ।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनि गण वृषभैर्धारितं बुद्धि मद्भिः ॥
मोक्षाग्रद्वार भूतं वृत चरण फलं ज्ञेय भाव प्रदीपं ।
भक्त्या नित्यंप्रवंदेशुत मह मखिलं सर्व लोकैकसारं ॥१॥

जिनेंद्र वक्त्र प्रतिनिर्गतंवचो,
यातींद्र भूति प्रमुखैर्गणाधिपैः ।

श्रुतं ध्रतं त्वेश्च पुनः प्रकाशितं,
द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यं श्रृंत ॥२॥

कोटिशतं द्वादशं चैव कोट्यो,
लक्षाण्यशीतिस्त्रयधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्त्रसंख्य
मेतच्छ्रुतं पुंचपदं नमामि ॥३॥

अरहंत-भासि-यत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥४॥

इच्छामि, भंते ! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कवो, तस्सा लोचेदुं, अंगोवंगपइण्णये पाहुडयपरियम्मसुत्त-पढमाणिओगपु व्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ-धम्मकहायियं सुदं सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं जिमगुण सम्पत्ति होऊ मज्झं ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमच्चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(नव जाप्य करे)

अथ श्रीचारित्रभक्तिः

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य, विलसत्केयूरहारांगदान् ।
भास्वन्मौलिमणिप्रभा, प्रविसरोत्तुंगोत्तमाङ्गान्नतान् ॥
स्वेषां पादपयोरुहेषु, मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा ।
वंदे पंचतयं तमद्य, निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ॥१॥

ज्ञानाचार का स्वरूप

अर्थव्यंजनतद्द्वया, विकलता कालोपधाप्रश्रयाः ।
स्वाचार्याद्यनपण्हवो, बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ॥
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना, भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा ।
ज्ञानाचारमहं त्रिधा, प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥

दर्शनाचार का स्वरूप

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां ।
वात्सल्यं विचिकित्सना, दुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् ॥
शक्त्या शासनदीपनं, हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनम् ।
वंदे दर्शनगोचरं सुचरितं, मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥३॥

तप आचार (बाह्य तप) का स्वरूप

एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः, संतापनं तानवम् ।
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं, विष्वाणमर्द्धोदरम् ।।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः, स्वादो रसस्यानिशम् ।
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति, प्राप्त्यभ्युपायं तपः ।।४।।

अन्तरंग तपों का वर्णन

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः, सम्प्रत्यवस्थापनम् ।
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ ।।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया, विनय इत्येवं तपः षड्विधं ।
वंदेऽभ्यंतरमन्तरंगबलबद्वि, द्वेषिविध्वंसनम् ।।५।।

वीर्याचार का वर्णन

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः, श्रद्धानमर्हन्मते ।
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो ।
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वंदे सतामर्चितम् ।।६।।

चारित्राचार का वर्णन

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः ।
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः, पंचव्रतानीत्यपि ।।

चारित्रोपहितं त्रयोदश, तयं पूर्वं न दृष्टं परैः ।
आचारं परमेष्ठिनो जिनपते, वीरं नमामो वयम् ।।७।।

पञ्चाचार पालने वालों की वन्दना

आचारं सह पंचभेदमुदितं, तीर्थं परं मंगलं ।
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्रमहतो, वंदे समग्रान्यतीन् ।।
आत्माधीनसुखोदयामनुपमां, लक्ष्मीमविध्वंसिनीम् ।
इच्छन् केवलदर्शनावगमन, प्राज्यप्रकाशोज्वलाम् ।।८।।

चारित्र पालन में दोषों की आलोचना

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनो, ऽवर्तिष्यहं चान्यथा।
तस्मिन्नर्जितमस्यति, प्रतिनवं चैनोनिराकुर्वति ।।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं, सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु, मे स्वं निंदतो निंदितम् ।।९।।

चारित्र धारण करने का उपदेश

संसारव्यसनाहतिप्रचलिता, नित्योदयप्रार्थिनः ।
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः, शांतैनसः प्राणिनः ।।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं, सोपानमुच्चैस्तरा ।
मारोहन्तु चारित्रमुत्तममिदं, जैनेन्द्रमोजस्विनः ।।१०।।

इच्छामि भंते ! चारित्तभत्तिकाउस्सगो कओ, तस्स आलोचेउं सम्मणाण जोयस्स, सम्मत्ता-हिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्ज रफलस्स, खमाहारस्स, पंचमहव्वय-संपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स, सया णिच्चकालंअंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

॥ इति श्री चारित्र भक्ति नमः ॥

अथ श्री प्राकृत चारित्रभक्तिः

तिलोए सव्वजीवाणं, हियं धम्मोवदेसिणं ।
वड्ढमाणं महावीरं, वंदित्ता सव्ववेदिणं ॥१॥

घाइकम्मविघादत्थं, घाइकम्मविणासिणा ।
भासियं भव्वजीवाणं, चारित्तं पंचभेददो ॥२॥

सामाइयं तु चारित्तं, छेदोवट्ठावणं तधा ।
तं परिहारविसुद्धिं च, संजमं सुहुमं पुणो ॥३॥

जहक्खायं तु चारित्तं, तहक्खायं तु तं पुणो ।
किच्चाहं पंचाधाचारं, मंगलं मलसोहणं ॥४॥

अहिंसादीणि वुत्ताणि, महव्वयाणि पंच य ।
समिदीओ तदो पंच, पंच इंदियाणिग्गहो ॥५॥

छब्भेया वा सभूसिज्जा, अण्हाणत्तमचेलदा ।
लोयत्तं ठिदिभुत्तिं च, अदंवणमेव य ॥६॥

एगभत्तेण संजुत्ता रिसिमूलगुणा तधा ।
दसधम्मा तिगुत्तीओ, सीलाणि सयलाणि य ॥७॥

सव्वेविय परिसहा, उत्तुत्तरगुणा तधा ।
अण्णे वि भासिदा संता, तेसिं हाणिं मए क्दा ॥८॥

जदि रागेण दोसेण, मोहेणाणादरेण वा ।
वंदित्ता सव्वसिद्धाणं, संजदासा मुमुक्खुणा ॥९॥

संजदेण मए सम्मं, सव्वसंजमभाविणा ।
सव्वसंजमसिद्धीओ, लब्भदे मुत्तिजं सुहं ॥१०॥

इच्छामि, भंते ! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कदो तस्सालोचेउं सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, पंचमहव्वयसं-पण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झा-णसहाणस्स, समयाइवपवेसयस्स सम्मचरित्तस्स सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोधिलाहो, सुग-इगमणं, समाधिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होउ मज्झं ॥

अथार्हत्पूजारंभ क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत् श्री योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् । णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री योगिभक्तिः

(दुबई छन्द)

कैसे साधु वन का आश्रय लेते हैं ?

जातिजरोरुरोगमरणातुर, शोकसहस्रदीपिताः ।
दुःसहनरकपतनसन्त्रस्तधियः, प्रतिबुद्धचेतसः ।।
जीवितमंबुबिंदुचपलं, तडिदभ्रसमा विभूतयः ।
सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः, प्रशमाय वनान्तमाश्रिताः ।।१।।

(भद्रिका छन्द)

वन में जाकर साधु क्या करते हैं ?

व्रतसमितिगुप्तिसंयुताः,
शिवसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः ।
ध्यानाध्ययन वशंगताः,
विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ।।२।।

(दुबई छंद)

ग्रीष्म ऋतु में मुनिराज क्या करते हैं ?

दिनकरकिरणनिकरसंतप्त, शिलानिचयेषु निस्पृहाः।
मलपटलावलिप्ततनवः, शिथिलीकृतकर्मबंधनाः ।।
व्यपगतमदनदर्परतिदोष, कषायविरक्तमत्सराः।
गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभि, मुखस्थितयो दिगंबराः ।।३।।

(भद्रिका छंद)

मुनिराज भयंकर आतप की वेदना कैसे सहते हैं ?

सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमानपुण्यकायैः।
धृतसंतोषच्छत्रकैस्तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ।।४।।

वर्षा ऋतु में मुनिराज क्या करते हैं ?

शिखिगलकज्जलालिमलिनै, र्विबुधाधिपचापचित्रितैः।
भीमरवैर्विसृष्टचण्डाशनि, शीतलवायुवृष्टिभिः ।।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः।
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशंकमासते ।।५।।

जलधाराशरताडिता, न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहा ।।
संसारःदुखभीरवः, परीषहारातिघातिनः प्रवीराः ।।६।।

(दुबई छंद)

शीतकाल में वे मुनिराज क्या करते हैं ?

अविरतबहलतुहिनकण, वारिभिः रंघ्रिपपत्रपातनैः।
अनवरतमुक्तसीत्काररवैः, परुषैरथानिःलैशोषितगात्रयष्ट्यः।
इह श्रमणा धृतिकंबलावृताः, शिशिरनिशां।
तुषारविषमां, गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः ।।७।।

स्तुति फल की याचना

इति योगत्रयधारिणः, सकलतपः
शालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः ।
परमानंदसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं
दिशंतु नो भदन्ताः ।।८।।

गिह्मे गिरिसिहरत्था वरिसाकाले
रुक्खमूलरयणीसु ।
सिसिरे बाहिरसयणा
ते साहू वंदिमो णिच्चं ।।१।।

गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसंति दिगंबराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।२।।

इच्छामि भंते ! योगिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्जदीवदोस मुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमीसु, आदावणरुक्खमूलअब्भोवासठाण मोणविरासणेक्कपासकुक्कुडासण चउछपक्खखव णादियोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं सया मिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

॥ इति श्री योगिभक्ति नमः ॥

अथ प्राकृत योगिभक्तिः

थोस्सामि गुणधराणां, अणयाराणां गुणेहिं तच्छेहिं।
अंजलिमउलियहत्थो, अभिवंदंतो सविभवेण ॥१॥

सम्मं चेव य भावे, मिच्छाभावे तहेव बोधव्वा।
चइऊण मिच्छाभावं, सम्मम्मि उवट्ठिदे वंदे ॥२॥

दोदोसविप्पमुक्के, तिदंडविरदे तिसल्लपरिसुद्धे।
तिण्णियगारवरहिए, तिरयणसुद्धे णमंसामि ॥३॥

चउविहकसायमहणा, चउगइसंसारगमणभयभीए।
पंचासवपडिविरदे, पंचेंदियणिज्जिदे वंदे ॥४॥

छज्जीवदयावण्णे, छडायदणविवज्जिदे समिदभावे।
सत्तभयविप्पमुक्के, सत्ताण सिवंकरे वंदे ॥५॥

णट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठणट्ठसंसारे।
परमट्ठणिट्ठियट्ठे, अट्ठगुणड्ढीसरे वंदे ॥६॥

णवबंभचेरगुत्ते, णवणयसब्भावजाणगे वंदे।
दहविहधम्मट्ठाई, दससंजमसंजदे वंदे ॥७॥

एयारसंगसुद, सायरपारगे बारसंगसुदणिउणे।
बारसविहतवणिरदे, तेरसकिरियादरे वंदे ॥८॥

भूदेसु दयावण्णे, चउदसचउदससु गंधपरिसुद्धे।
चउदसपुव्वपगब्भे, चउदसमलविज्जिदे वंदे ॥९॥

वंदे चउत्थभत्तादि, जावछम्मासखवणपडिवण्णे।
वंदे आदावंते, सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे ॥१०॥

बहुविधपडिमट्ठाई, णिसिज्जवीरासणेक्कवासी य।
अणिट्ठीवकंडुवदीवे, चत्तदेहे य वंदामि ॥११॥

ठाणी मोणवदीए, अब्भोवासी य रुक्खमूली य।
धुवकेसमंसुलोमे, णिप्पडियम्मे य वंदामि ॥१२॥

जल्लमल्ललित्तगत्ते, वंदे कम्ममलकलुसरिसुद्धे।
दीहणहमंसुलोमे, तवसिरिभरिए णसंमासि ॥१३॥

णाणोदयाहिसित्ते, सीलगुणविहूसिए तवसुगंधे।
ववगदरायसुदड्ढे, सिवगदिपहरणायगे वंदे ॥१४॥

उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे य घोरतवे।
वंदामि तवमहंते, तवसंजमइड्ढिसंजुत्ते ॥१५॥

आमोसहिए खेलोसहिए जल्लोसहिए तवसिद्धे।
विप्पोसही य सव्वोसही य वंदामि तिविहेण ॥१६॥

अमयमहुखीरसप्पिसवीय, अक्खीणमहाणसे वंदे।
मणबलि वयणबलि कायबलिणो य वंदामि तिविहेण ॥१७॥

वरकुट्ठबीयबुद्धी, पदाणुसारी य भिण्णसोदारे।
उग्गहईहसमत्थे, सुत्तत्थविसारदे वंदे ।।१८।।

आभिणिबोहियसुदओहिणाणिसव्वणाणी य।
वंदे जगप्पदीवे, पच्चक्खपरोक्खणाणी य ।।१९।।

आयासतंतुजलसेढि, चारणे जंघचारणे वंदे।
विउवणइड्ढिपहाणे विज्जाहरपण्णसवणे य ।।२०।।

गदिचउरंगुलगमणे, तहेव फलफुल्लचारणे वंदे।
अणुवमतवमहंते, देवासुरवंदिदे वंदे ।।२१।।

जियभयजियउवसग्गे, जियइंदियपरिसहे जियकसाए।
जियरायदोसमोहे, जिहसुहदु क्खेणमंसामि ।।२२।।

एवं मएअभित्थुया, अणयारा रायदोसपरिसुद्धा।
संघस्स वरसमाहीं, मज्झ वि दुक्खक्खयं दिंतु ।।२३।।

क्षपक श्लोक

योगीश्वरान् जिनान् सर्वान्योगनिर्धूत कल्मषान्।
योगैस्त्रिभिरहं वन्दे योगस्कन्द प्रतिष्ठितान् ।।१।।

योगीश्वरान् जिनान्सर्वान् योगनिर्धूत कल्मषान्।
योगैस्त्रिभिरहं वंदे, योगस्कंध प्रतिष्ठितान् ।।२।।

प्रावृट्कालेसविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमंते रात्रिमध्ये, प्रतिविगतभयाकाष्ठवत्त्यक्तदेहाः ॥
ग्रीष्मेसूर्यांसुतप्ता, गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्थाः।
ते मे धर्म प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिः श्रेणिभूताः ॥३॥

गिम्हे गिरिसिहरत्था, वरिसायालेरुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, तेसाहू वंदिमो णिच्चं ॥४॥

गिरिकंदरदुर्गेषु, ये वसंति दिगंबराः।
पाणिपात्र पुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ॥५॥

इच्छामि, भंते ! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस कम्मभूमीसु, आदावणरुक्खमूल, अब्भोवासठाण-मोण वीरासणेक्कपासकुक्कुडासणचदुछपक्खख-वणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं, सया णिच्च-कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोधिलाहो, सुगइगमणं, समाधिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होउ मज्झ ॥

॥ इति श्री प्राकृत योगिभक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमदाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

श्री आचार्यभक्तिः

सिद्धगुणस्तुतिनिरता, नुद्धूतरुषाग्नि
जालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान्, मुक्तियुतः
सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥

मुनिमाहात्म्यविशेषान्जिन
शासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो
बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ॥२॥

गुणमणिविरचितवपुषः,
षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातृन्सततम् ।
रहितप्रमादचर्यान्दर्शनशुद्धान्,
गणस्य संतुष्टिकरान् ॥३॥

मोहच्छिदुग्रतपसः,
प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान् ।

प्रासुकनिलयाननघा, नाशा
विध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ॥४॥

धारितविलसन्मुन्डान्, वर्जित
बहुदंडपिंडमंडलनिकरान् ।
सकलपरीषहजयिनः,
क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥५॥

अचलान्व्यपेतनिद्रान्, स्थान
युतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान् ।
विधिनानाश्रितवासा, नलिप्त
देहान्विनिर्जितेन्द्रियकरिणः ॥६॥

अतुलानुकुटिकासा, न्विविक्त
चित्तानखंडितस्वाध्यायान् ।
दक्षिणभावसमग्रान्, व्यपगतम
दरागलोभशठमात्सर्यान् ॥७॥

भिन्नार्तरौद्रपक्षान्, संभावितधर्म
शुक्लनिर्मलहृदयान् ।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्, पुण्यान्गण्यो
यान्विलीन गारवचर्यान् ॥८॥

तरुमूलयोगयुक्ता, नव
काशातापयोगरागसनाथान् ।

बहुजनहितकरचर्या, नभयानन
घान्महानुभावविधानान् ॥९॥

ईदृशगुणसंपन्नान्युष्मान्भक्त्या
विशालया स्थिरयोगान् ।
विधिनानारतमग्रचान्मुकुली
कृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥१०॥

अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदय-
जन्मजरामरणबंधनमुक्तान् ।
शिवमचलमनघमक्षयमव्या
हतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥

इच्छामि भंते ! आइरियभत्तिकाउसग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण, सम्मदंसण, सम्मचारित्तजुत्ताणं, पंचविहाचाराणं, आयरियाणं, आयारादिसुद णाणोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं, सव्वसाहूणं, सया णिज्जकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

॥ इति श्री आचार्यभक्ति नमः ॥

अथ श्री प्राकृत आचार्यभक्तिः

देसकुलजाइसुद्धा, विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता ।
तुम्हं पायपयोरुहमिह, मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥१॥

सगपरसमयविदण्हू, आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता ।
सुसमत्था जिणवयणे, विणये सत्ताणुरूवेण ॥२॥

बालगुरुबुड्ढसेहे, गिलाणंथेरे य खमणसंजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे, दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥३॥

वदसमिदिगुत्तिजुत्ता, मुत्तिपहेट्ठावया पुणो अण्णे ।
अज्झावयगुणणिलये, साहुगुणेणावि संजुत्ता ॥४॥

उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा ।
कम्मिंधणदहणादो, अगणी वाऊ असंगादो ॥५॥

गयणमिव णिरुवलेवा, अक्खोवा सायरु व्व मुणिवसहा ॥
एरिसगुणणिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो ॥६॥

संसारकाणणे पुण, बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो, लद्धो तुम्हं पसाएण ॥७॥

अविसुद्धलेस्सरहिया, विसुद्धलेस्साहिं परिणदा सुध्धा॥
रुद्दट्ठे पुण चत्ता, धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥८॥

उग्गहईहावाया, धारणगुणसंपदेहिं संजुत्ता ।
सुत्तत्थभावणाए, भावियमाणेहिं वंदामि ॥९॥

तुम्हं गुणगणसंथुदि, अजाणमाणेण जो मया वुत्तो ।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥१०॥

इच्छामि, भंते ! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण, सम्मदंसण, सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं, आयरियाणं, आयारादिसुदणा णोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं, सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होउ मज्झ ॥

॥ इति श्री प्राकृत आचार्यभक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमच्चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

(यहाँ नव जाप्य करें)

अथ श्री चैत्यभक्तिः

श्रीगौतमादिपदमद्भुतपुण्यबंध-
मुद्योतिताखिलममोघमघप्रणाशम् ।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं
निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थ् ।।१।।

जयति भगवान् हेमाम्भोज, प्रचारविजृम्भिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्ण, प्रभापरिचुंबितौ ।
कलुष हृदया मानोद्भ्रान्ताः, परस्परवैरिणः ।
विगतकलुषाः पादौ यस्य, प्रपद्य विशश्वसुः ।।२।।

तदनु जयति श्रेयानधर्मः, प्रवृद्धमहोदयः ।
कुगतिविपथक्लेशाद्योसौ, विपाशयति प्रजाः ।।
परिणतनयस्यांगीभावा, द्विविक्तविकल्पितम् ।
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा, जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ।।३।।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः, प्रभंगतरंगिणी ।
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्य, स्वभावविभाविनी ।।

निरुपमसुखस्येदं द्वारं, विघट्य निरर्गलम् ।
विगतरजसं मोक्षं देया, न्निरत्ययमव्ययम् ।।४।।

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्य, स्तथा च साधुभ्यः ।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ।।५।।

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः, सदा हतरजोभ्यः ।
विरहितरहस्कृतेभ्यः, पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।६।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं, सकललोकहितहेतुं ।
शुभधामनि धातारं, वंदे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।७।।

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैक, ज्योतिरमितगमयोगि ।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वंदे ।।८।।

भवनविमानज्योतिर्व्यंतर, नरलोकविश्वचैत्यानि ।
त्रिजगदभिवंदितानां, त्रेधा वंदे जिनेन्द्राणाम् ।।९।।

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधि, पाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणां ।
वंदे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः ।।१०।।

इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता
जिनधर्मवचनचैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां,
दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टाम् ।।११।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय,
द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मंदिरेषु ।
मनुजामरपूजितानि वंदे
प्रतिबिंबानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥१२॥

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः,
प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता
वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वंदमानः ॥१३॥

विगतायुधविक्रियाविभूषाः
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्या प्रतिमाः
कल्मषशान्तयेऽभिवंदे ॥१४॥

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं
परया शान्ततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति
प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१५॥

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं
सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन ।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति
र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥१६॥

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसंपदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१७॥

श्रीमद्भवनवासस्था, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम् ॥१८॥

यावंति संति लोकेऽस्मि, न्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वंदे भूयांसि भूतये ॥१९॥

ये व्यंतरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, संतु नो दोषविच्छिदे ॥२०॥

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसंपदः।
गृहाः स्वयंभुवः संति, विमानेषु नमामि तान् ॥२१॥

वंदे सुरकिरीटाग्र, मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये ॥२२॥

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्रवनिरोधिनी ॥२३॥

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवन
भव्यजनतीर्थयात्रिकदुरितम्।
प्रक्षालनैककारणमति
लौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ॥२४॥

लोकालोकसुतत्त्वप्रत्य-
    ववोधनसमर्थदिव्यज्ञान ।
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीला
    मलविशालकूलद्वितयम् ।।२५।।

शुक्लध्यानस्तिमित, स्थित-
    राजद्राजहंसराजितमसकृत् ।
स्वाध्यायमंद्रघोषं, नानागुण
    समितिगुप्ति, सिकतासुभगम् ।।२६।।

क्षान्त्यावर्तसहस्र, सर्वदया
    विकचकुसुम, विलसल्लतिकम् ।
दुःसहपरीषहाख्यद्रुतत
    रंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२७।।

व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषा-
    दिदोषशैवलरहितम् ।
अत्यस्तमोहकर्दममति दूर
    निरस्तमरणमकरप्रकरम् ।।२८।।

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकित,
    निर्घोषविविधविहगध्वानम् ।
विविधतपोनिधिपुलिनं,
    सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणम् ।।२९।।

गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृति-
महाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलि
कलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥३०॥

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि
दुस्तरसमस्तदुरितं दूरम् ।
व्यवहरतु परमपावनमनन्य
जय्यस्वभावभावगंभीरम् ॥३१॥

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा, मुखं-
कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥३२॥

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदयात्,
निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः ।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥३३॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनम्,
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगंधोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतम्,
दिवाकरसहस्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम् ॥३४॥

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः,
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते ।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः,
शरद्विमलचंद्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३५॥

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीयचरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातुभगवज्जिनेन्द्र तव रूपमन्धीकृतम्,
जगत्सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः ॥३६॥

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल
सत्खातिका पुष्पवाटी ।
प्राकारो नाट्यशालाद्वितयमुपवनं,
वेदिकांतर्ध्वजाद्याः ॥
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृतवनं,
स्तूपहर्म्यावली च ।
प्राकारः स्फाटिकोन्तर्नृ सुरमुनिसभा,
पीठिकाग्रे स्वयंभूः ॥३७॥

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु,
नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके
सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम् ॥३८॥

अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम् ।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३९॥

जम्बूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाश्चं-
द्राभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभाः जिनाः ।
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः,
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनभ्यो नमः ॥४०॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे, शाल्मलौ जंबुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे, रतिकररुचके कुंडले मानुषांके॥
इश्वाकारेंऽजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके।
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे, भुवनमहितलेयानि चैत्यानितानि॥४१॥

देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः,
पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः।
घंटाध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥४२॥

द्वौकुन्देन्दु तुषार हार धवलो, द्वाविन्द नील प्रभो।
द्वौबन्धुकसमप्रभो जिव, वृषोद्वौच प्रियनोप्रभो॥४३॥

शेषा षोड़श जन्म मृत्युरहिता संतप्त हेमप्रभा।
ते सज्ञान दिवाकरा सुरसुत सिद्धिप्रयच्छस्तुनः ॥४४॥

वरकनक शंख विद्रुम मरकत घनसन्निभं विगतमोहं।
सप्त तिशतं जिनानां सर्वामरवंदितं वन्दे: ॥४५॥

कोट्योर्हत्प्रतिमा शतानि नवतिः पंचोंत्तरा विंशतिः।
पंचाशत्रियुता जनगत्सु गणिता लक्षा सहस्राणितु॥
सप्ता ग्रापिच विंशतिर्नवशतिद्र्व्यूनं शतार्धं मताः।
तनित्याः पुरुतुंग पूर्व मुखसत्वर्यंक बन्धाः स्तुवे॥४६॥

यावन्ति जिन चैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।
तावन्तिसततं भक्त्या त्रिपरीत्य नमाम्यहं॥४७॥

इच्छामि भंते ! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ। तस्सालोचेउं, अहलोय, तिरियलोय, उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि, जाणि जिणचेइयाणि, ताणि सव्वाणि, तिसुवि लोएसु, भवणवासिय, वाणविंतरजो इसियकप्पवासियत्ति, चउविहा देवा सपरिवारा, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिग्वेण दिव्वेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं भत्तिए सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

॥ इति श्री चैत्यभक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारम्भक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत्पंचगुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

श्री पंचगुरुभक्तिः

श्रीमदमरेन्द्रमुकुटप्रघटित- मणिकिरणवारिधाराभिः ।
प्रक्षालितपदयुगला, न्प्रणमामि जिनेश्वरान्भक्त्या ।।१।।

अष्टगुणैः समुपेता, न्प्रणष्ट दुष्टाष्टकर्मरिपुसमितीन् ।
सिद्धान्सततमनन्ता, न्नमस्करोमीष्टतुष्टिसंसिद्ध्यै ।।२।।

साचारश्रुतजलधी, न्प्रतीर्य शुद्धोरुचरणनिरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुगकमलानि, दधे शिरसि मेऽहम् ।।३।।

मिथ्यावादिमदोग्रध्वा, न्तप्रध्वंसिवचनसंदर्भान् ।
उपदेशकान्प्रपद्ये, मम दुरितारिप्रणाशाय ।।४।।

सम्यग्दर्शनदीप, प्रकाशका मेयबोधसंभूताः ।
भूरिचरित्रपताकास्ते, साधुगणास्तु मां पान्तु ।।५।।

जिनसिद्धसूरिदेशक, साधुवरानमलगुणगणोपेतान् ।
पंचनमस्कारपदैस्त्रिसंध्यम भिनौमि मोक्षलाभाय ।।६।।

एषः पंचनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत् ॥७॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः, सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाणपरमश्रियम् ॥८॥

सर्वान्जिनेन्द्रचन्द्रा, न्सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे, रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ॥९॥

पान्तु श्रीपादपद्मानि, पंचानां परमेष्ठिनाम्।
लालितानि सुराधीश, चूडामणिमरीचिभिः ॥१०॥

प्रातिहार्येजिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगांगैरष्टभिः स्तुवे ॥११॥

इच्छामि भंते ! पंचमहागुरुभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं, अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उढ्ढलोयमज्झयम्मि पइट्ठि याणं, सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणंआय रियाणं, आयारा-दिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपा-लणरयाणं सव्वसाहूणं, सया णिच्च कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगईगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

॥ इति श्री पंचगुरुभक्ति नमः ॥

अथ श्री प्राकृत पंचमहागुरुभक्तिः

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया ।
पंचकल्लाणसोक्खावलीपत्तया ।।
दंसणं णाणज्झाणं अणंतं बलं ।
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ।।१।।

जेहिं झाणग्गिबाणेहिं अइदड्ढयं ।
जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं ।।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं ।
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ।।२।।

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया ।
बारसंगाइसुयजलहि अवगाहया ।।
मोक्खलच्छीमहंती महंते सया ।
सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया ।।३।।

घोर संसार भीमाडवीकाणणे ।
तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे ।।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया ।
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ।।४।।

उग्गतवचरणकरणेंहि खीणं गया ।
धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया ।।

णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया ।
साहवो ते महं मोक्खपथमग्गया ॥५॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरुवंदये ।
गुरुयसंसारघणवल्लि सो छिंदये ॥
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइ बहुमाणणं ।
कुणइ कम्मिंधणंप्पुंजपज्जालणं ॥६॥

अरूहा सिद्धायरिया
उवज्झाया साहू पंच परमेट्ठि ।
एदे पंच णमोयारा
भवे भवे मम सुहंदिंतु ॥७॥

इच्छामि, भंते! पंचमहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थम्मि, पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादिसुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरदाणं सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगदिगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होदु मज्झं ।

॥ इति श्री प्राकृत पंचमहागुरूभक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमन्निर्वाणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् । णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री निर्वाणभक्तिः

विबुधपतिखगपनरपति,
धनदोरगभूतयक्षपतिमहितम् ।
अतुलसुखविमलनिरुपम,
शिवमचलमनामयं हि संप्राप्तम् ।।१।।

कल्याणैः संस्तोष्ये,
पंचभिरनघं त्रिलोकपरमगुरुम् ।
भव्यजनतुष्टिजननै, र्दुरवापैः
सन्मतिं भक्त्या ।।२।।

आषाढसुसितषष्ठ्यां,
हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि ।
आयातः स्वर्गसुखं,
भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः ।।३।।

सिद्धार्थनृपतितनयो,
भारतवास्ये विदेहकुंडपुरे ।

देव्यां प्रियकारिण्यां,
सुस्वप्नान्संप्रदर्श्य विभुः ॥४॥

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि, शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु, ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥५॥

हस्ताश्रिते शशांके, चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे।
पूर्वाण्हे रत्नघटै, र्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ॥६॥

भुक्त्वा कुमारकाले, त्रिंशद्वर्षाण्यंनंतगुणराशिः।
अमरोपनीतभोगा, न्सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः ॥७॥

नानाविधरूपचितां,
विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चंद्रप्रभाख्यशिबिकामारुह्य
पुराद्विनिःक्रान्तः ॥८॥

मार्गशिरकृष्णदशमी, हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे।
षष्ठेन त्वपराण्हे, भक्तेन जिनः प्रवव्राज ॥९॥

ऋजुकूलायास्तीरे, शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे।
अपराण्हे षष्ठेनास्थि, तस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥११॥

वैशाखसितदशम्यां, हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चंद्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढ, स्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥१२॥

अथ भगवान् संप्रापद्दिव्यं, वैभारपर्वतं रम्यम्।
चातुर्वर्ण्यसुसंघः, तत्राभूद्गौतमप्रभृति ॥१३॥

छत्राशोकौ घोषं, सिंहासनदुंदुभी कुसुमवृष्टिम्।
वरचामरभामंडल, दिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥१४॥

दशविधमनगाराणा, मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम्।
देशयमानो व्वहरंस्त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१५॥

पद्मवनदीर्घिकाकुल, विविधद्रु मखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने, व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥

कार्तिककृष्णस्यान्ते, स्वातावृक्षेनिहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचंदनकालागरुसुरभिगोशीर्षैः ॥१८॥

अग्नीन्द्राज्जिनदेहं, मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने ॥१९॥

इत्येवं भगवती वर्धमानचंद्रे,
यः स्तोत्रं पठति सुसंध्ययोर्द्वयोर्हि।
सोऽनंतं परमसुखं, नृदेवलोके
भुक्त्वांते शिवपदमक्षयं प्रयाति ॥२०॥

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां,
निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम्।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः,
संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ॥२१॥

कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ,
शैलेशिभावमुपपद्यवृषो महात्मा।
चंपापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्,
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबंधः ॥२२॥

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः,
पाखंडिभिश्च परमार्थगवेषशीलैः।
नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमिः,
संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥२३॥

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे,
पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्धमानजिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधेतपाप्मा ॥२४॥

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला,
ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं,
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः ॥२५॥

आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्तयोगः,
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्द्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः,
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ॥२६॥

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-,
न्यादाय मानसकरैरभितः किरंतः।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निषद्याः,
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ॥२७॥

शत्रुंजये नगवरे दमितारिपक्षाः,
पंडोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः।
तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्रनामा,
नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥२८॥

द्रोणीमति प्रबलकुंडलमेंढ्रके च,
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्याद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च
विंध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ॥२९॥

सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे।
दंडात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रतिथान्यभूवन् ॥३०॥

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकां मधुरतामुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥३१॥

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां,
प्रोक्ता मयात्र परिनिवृतिभूमिदेशाः।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शान्ताः
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥३२॥

कैलासाद्रौ मुनींद्रः पुरुरपदुरितो, मुक्तिमाप प्रणतः,
चंपायां वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो, नेमिरप्यूर्जयंते।
पावायां वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो, विंशतिस्तीर्थनाथाः,
सम्मेदाग्रेप्रजग्मुर्ददतु विनमतां, निर्वृतिं नो जिनेन्द्राः ॥३३॥

गौर्गजोश्वः कपिः कोकः, सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो, गंडो महिषसूकरौ ॥३४॥

सेधा वज्रमृगच्छागाः, पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शंखो, नागराजश्च केसरी ॥३५॥

शान्तिकुंथ्वरकौरव्या, यादवो नेमिसुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ, शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः ॥३६॥

इच्छामि भंते ! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सगो कओ, तस्सालोचेउं,-इमम्मि, अवसप्पिणीये

चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउदसीए रत्तीए सादीए, णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो, महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुविलोएसु, भवणवासियवाण-विंतरजोइसिय कप्प-वासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण दिव्वेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं, अच्चंति, पूजंति, वंदंति, ण- मंसंति, परिणिव्वाण महाकल्लाण पुज्जं करंति, । अहमवि इह संतो तत्थसंताइयं भत्तिए सया णिच्चकालं, अंच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।।

।। इति श्री निर्वाणभक्ति नमः ।।

अथ श्री प्राकृत निर्वाण भक्तिः

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो।
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥

वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेंसि ॥२॥

सत्तेव य बलभद्दा, जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
गजपंथे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥३॥

वरदत्तो य वरंगो, सायरदत्तो य तारवरणयरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥४॥

णेमिसामि पज्जुण्णो, संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
बाहत्तरकोडीओ उज्जन्ते सत्तसया सिद्धा ॥५॥

रामसुआ दोण्णि जणा, लाडणरिंदाण पंचकोडीओ।
पावागिरिवरसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥

पंडुसुआतिण्णि जणा, दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
सत्तुंजयगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥

रामहणूसुग्गीवो, गवयगवक्खो य णीलमहणीला।
णवणवदी कोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥८॥

णंगाणंगकुमारा, कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया।
सुवण्णवरगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥

दहमुहरायस्स सुआ, कोडी पंचद्धमुणिवरा सहिया।
रेवाउहयतडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥

रेवाणइए तीरे, पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूटे।
दो चक्की दहकप्पे, आहुट्ठयकोडि णिव्वुदे वंदे ॥११॥

वडवाणीवरणयरे, दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे।
इंदजियकुंभकण्णो, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥

पावागिरिवरसिहरे, सुवण्णभद्दाइ मुणिवरा चउरो।
चलणाणईतडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेंसि ॥१३॥

फलहोडीवरगामे, पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताइमुणिंदा, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१४॥

णायकुमार मुणिंदो, वालिमहावालि चेव अज्झेया।
अट्ठावयगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५॥

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणभाए मेंढगिरिसिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥

वंसत्थलवरणियडे, पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे।
कुलदेसभूसणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥

जसहररायस्स सुआ, पचसयाइं कलिंगदेसम्मि।
कोडिसिलाकोडिमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१८॥

पासस्स समवसरणे, सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१९॥

जे जिणु जित्थु तत्था, जे दु गया णिव्वुदिं परमं।
ते वन्दामिय णिच्चं, तियरणसुद्धो णमस्सामि ॥२०॥

सेसाणं तु रिसीणं, णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि।
तेहं वन्दे सव्वे, दुक्खक्खयकारणट्ठाए ॥२१॥

पासं तह अहिणंदण, णायद्दहि मंगलाउरे वन्दे।
अस्सारम्भे पट्टणे, मुणिसुव्वओ तहेव वन्दामि ॥२२॥

बाहुबलि तह वंदमि, पोदणपुरहत्थिणापुरे वंदे।
संति कुंथुव अरिहो, वाराणसीए सुपास पासं च ॥२३॥

महुराये अहिछित्ते, वीरं पासं तदेव वन्दामि।
जंबुमुणिंदो वन्दे, णिव्वुइपत्तोवि जंबुवणगहणे ॥२४॥

पंचकल्लाणठाणइ, जाणवि संजादमच्चलोयम्मि।
मणवयणकायसुद्धी, सव्वे सिरसा णमंसामि ॥२५॥

अग्गलदेवं वन्दमि, वरणयरे णिवणकुंडली वन्दे।
पासं सिवपुरि वन्दमि, लोहागिरिसंखदीवम्मि ॥२६॥

गोमटदेवं वन्दमि, पं-चसयं धणुहदेहउच्चं तं।
देवा कुणंति उट्ठी, केसरकुसुमाण तस्स उवरम्मि ॥२७॥

णिव्वाणठाण जाणिवि, अइसयठाणाणि अइसये सहिया।
संजाद मच्चलोए, सव्वे सिरसा णमंसामि ॥२८॥

जो जेण पढइ तियालं, णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए।
भुंजदि णरसुरसुक्खं, पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥२९॥

इच्छामि, भंते ! परिणिव्वाणभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं । इमम्मि अवसप्पिणीये चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाय, आउट्ठमासहीणे, वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए, णयरीए, कत्तियमासस्स किण्हचदुदसिए, रत्तीए सादीए, णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो, महदिमहावीरो, वड्ढमाणो

सिद्धिं गदो तिसु विलोएसु, भवणवासियवाणविन्तर-जोइसियकप्पवासिय त्ति चदुव्विहा देवा सपरिवारा, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अखखेण, दिव्वेण पुफ्फेण, दिव्वेण दिवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, सया णिच्चकालं, अंच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण महाकल्लाणपुज्जं करेंति, अहमवि इह सन्तो तत्थ संताइयं भत्तिए सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्तिं होउ मज्झं।

॥ इति श्री प्राकृत निर्वाण भक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमन्नंदीश्वरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् । णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री नंदीश्वरभक्तिः

त्रिदशपतिमुकुटतटगत, मणि
गणकरनिकरसलिलधाराधौता ।
क्रम-कमलयुगलजिनपति, रुचिर
प्रतिबिंबविलयविरहितनिलयान् ॥१॥

निलयानहमिह महसां, सहसा
प्रणिपतनपूर्वमवनौम्यवनौ ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या, निसर्ग
शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ॥२॥

भवनवासियों के विमानों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

भावनसुरभवनेषु,
द्वासप्ततिशतसहस्रसंख्याऽभ्यधिकाः ।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता,
भवनानां भूरितेजसां भुवनानाम् ॥३॥

व्यन्तर देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

त्रिभुवनभूतविभूनां,
संख्यातीतान्यसंख्यगुणयुक्तानि ।
त्रिभुवनजननयनमनः,
प्रियाणि भवनानि भौमविबुधनुतानि ॥४॥

ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

यावन्ति सन्ति कान्त,
ज्योतिर्लोकाधिदेवताभिनुतानि ।
कल्पेऽनेकविकल्पे,
कल्पातीतेऽहमिन्द्रकल्पानल्पे ॥५॥

विंशतिरथ त्रिसहिता,
समस्रगुणिताच सप्तनवति प्रोक्ता ।
चतुरधिकाशीतिरतः,
पंचकशून्येन विनिहतान्यनघानि ॥६॥

मनुष्य क्षेत्र के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

अष्टापंचाशदतश्चतुः,
शतानीह मानुषे च क्षेत्रे ।
लोकालोकविभागप्रलोकना,
लोकसंयुजां जयभाजाम् ॥७॥

तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

नवनवचतुःशतानि च, सप्त-
च नवतिः सहस्रगुणिताः षट्च ।
पंचाशत्पंचवियत्प्रहताः,
पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः ॥८॥

एतावंत्येव सतामकृत्रिमाण्यथ,
जिनेशिनां भवनानि ।
भुवनत्रितये त्रिभुवनसुर, समिति
समर्च्यमानसत्प्रतिमानि ॥९॥

मध्यलोक के ४५८ चैत्यालय

वक्षाररुचककुंडल,
रौप्य नगोत्तरकुलेषुकारनगेषु ।
कुरुषुच जिनभवनानि,
त्रिशत्तान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या ॥१०॥

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालय

नंदीश्वरसद्द्वीपे नंदीश्वर,
जलधिपरिवृते धृतशोभे ।
चंद्रकरनिकरसन्नि भरुन्द्र-
यशोविततदिङ् महीमंडलके ॥११॥

तत्रत्यांजनदधिमुखरतिकर,
पुरुनगवराख्यपर्वतमुख्याः ।
प्रतिदिशमेषामुपरि,
त्रयोदशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ॥१२॥

आषाढकार्तिकाख्ये,
फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः ।
आरभ्याष्टदिनेषु च
सौधर्मप्रमुखविबुधपतयो भक्त्या ॥१३॥

तेषु महामहमुचितं,
प्रचुराक्षतगंधपुष्पधूपैर्दिव्यैः ।
सर्वज्ञप्रतिमाना,
मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्वहितम् ॥१४॥

भेदेन वर्णना का,
सौधर्मः स्नपनकर्तृतामापन्नः ।
परिचारकभावमिताः,
शेषेन्द्रा रुन्द्रचंद्रनिर्मलयशसः ॥१५॥

मंगलपात्राणि पुन, स्तद्देव्यो
विभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्याः ।
अप्सरसो नर्तक्यः,
शेषसुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ॥१६॥

वाचस्पतिवाचामपि,
गोचरतां संव्यतीत्य यत्क्रममाणम् ।
बिबुधपतिविहितविभवं,
मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम् ॥१७॥

निष्ठापितजिनपूजाश्चूर्ण,
स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः ।
सुरपतयो नंदीश्वर,
जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ॥१८॥

पंचसु मंदरगिरिषु,
श्रीभद्रशालनंदनसौमनसम् ।
पांडुकवनमिति तेषु,
प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ॥१९॥

तान्यथ परीत्य तानि च,
नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि ।
स्वास्पदमीयुः सर्वे,
स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥२०॥

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की विभूति

सहतोरणसद्वेदीपरीत,
वनयागवृक्षमानस्तंभ- ।

ध्वजपंक्तिदशकगोपुर,
    च तुष्टयत्रितयशालमंडपवर्यैः ॥२१॥

अभिषेकप्रेक्षणिका,
    क्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहैः ।
शिल्पिविकल्पितकल्पन,
    संकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः ॥२२॥

वापीसत्पुष्करिणी,
    सुदीर्घि काद्यम्बुसंश्रितैः समुपेतैः ।
विकसितजलरुहकुसुमै,
    र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥

भृंगाराद्वककलशा,
    द्यु पकरणैरष्टशतकपरिसंख्यानैः ।
प्रत्येकं चित्रगुणैः,
    कुतझणझणनिनदविततघंटाजालैः ॥२४॥

प्रविभाजंते नित्यं,
    हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि ।
गंधकुटीगतमृगपति,
    विष्टररुचिराणि विविधविभवयुतानि ॥२५॥

नन्दीश्वर के चैत्यालयों में स्थित प्रतिमाओं का वर्णन

येषु जिनानां प्रतिमाः,
पंचशतशरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः ।
मणिकनकरजतविकृता,
दिनकरकोटिप्रभाधिकप्रभदेहाः ॥२६॥

तानि सदा वंदेऽहं,
भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि ।
यशसां महसां प्रतिदिश,
मति शयशोभाविभांजि पापविभंजि ॥२७॥

तीर्थङ्करों की स्तुति

सप्तत्यधिकशतप्रिय,
धर्मक्षेत्र गततीर्थकरवरवृषभान् ।
भूतभविष्यत्संप्रति
काल, वाभन्भववविहानये विनतोऽस्मि ॥२८॥

भगवान् वृषभदेव की स्तुति

अस्यामवसर्पिण्यां,
वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता ।
अष्टापदगिरिमस्तक,
गत, स्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ॥२९॥

भगवान वासुपूज्य की स्तुति

श्रीवासुपूज्यभगवान्,
शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानां ।
चंपायां दुरितहरः,
परमपदं प्रापदापदामन्तगतः ॥३०॥

श्री नेमिनाथ स्वामी की स्तुति

मुदितमतिबलमुरारि,
प्रपूजितो जिकषायरिपुरथ जातः ।
बृहदूर्जयन्तशिखरे,
शिखामणिस्त्रिभुवनस्यनेमिर्भगवान् ॥३१॥

श्री महावीर स्वामी की स्तुति

पावापुरवरसरसां,
मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसां ।
वीरो नीरदनादो,
भूरिगुणश्चारुशोभमास्पदमगमत् ॥३२॥

अवशेष बीस तीर्थङ्करो की स्तुति

सम्मदकरिवनपरिवृत,-
सम्मेद-गिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे ।
शेषा ये तीर्थकराः,
कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिंमवापन् ॥३३॥

अन्य सिद्ध स्थानों से मंगल प्रार्थना

शेषाणां केवलिना,
  मशेष मतवेदिगणभृतां साधूनाम् ।
गिरितलविवरदरीसरि,
दुरूवनतरु-विटपिजलधिदहनशिखासु ॥३४॥

मोक्षगतिहेतुभूत,
  स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्रभक्तिनुतानि ।
मंगलभूतान्येता,
  न्यंगी कृतधर्मकर्मणामस्माकम् ॥३५॥

जिनतपयस्तत्प्रतिमा,
  स्त दालयास्तन्निषद्यका स्थानानि ।
ते ताश्च ते च तानि च,
  भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम् ॥३६॥

तीनों समय नन्दीश्वर भक्ति करने का फल

संध्यासु तिसृषु नित्यं,
  पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तमयशसाम् ।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु
  लभते श्रुतधरेडितं पदममितम् ॥३७॥

अरहंतों के शरीर सम्बन्धी दश अतिशय

नित्यं निःस्वेदत्वं,
निर्मलता क्षीरगौररुधिरत्वं च ।
स्वाद्याकृतिसंहनने, सौरूप्यं
सौरभं च सौलक्ष्यम् ॥३८॥

अप्रतिमवीर्यता च,
प्रियहितवादित्वमन्यदमितगुणस्य ।
प्रथिता दशसंख्याता,
स्वतिशयधर्माः स्वयंभुवो देहस्य ॥३९॥

केवलज्ञान के दश अतिशय

गव्यूतिशतचतुष्टय,
सु भिक्षतागगनगमनमप्राणिवधः ।
भुक्त्युपसर्गाभाव,
श्चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता ॥४०॥

अच्छायत्वमपक्ष्म, स्पंदश्च
समप्रसिद्धनखकेशत्वम् ।
स्वतिशयगुणा भगवतो,
घातिक्षयजा भवंति तेपि दशैव ॥४१॥

देवकृत चौदह अतिशय

सार्वार्धमागधीया, भाषा
मैत्री च सर्वजनताविषया ।
सर्वर्तुफलस्तबक, प्रवाल
कुसुमोपशोभिततरुपरिणामा ॥४२॥

आदर्शतलप्रतिमा, रत्नमयी
जायते मही च मनोज्ञा ।
विहरणमन्वेत्यनिलः,
परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य ॥४३॥

मरुतोऽपि सुरभिगंध,
व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम् ।
व्युपशमितधूलिकंटक, तृण
कीटकशर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥

तदनु स्तनित्कुमारा,
विद्युन्मालाविलासहासविभूषाः ।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं,
गंधोदकवृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेः ॥४५॥

वरपद्मरागकेसर, मतुल
सुख स्पर्शहेममयदलनिचयम् ।
पादन्यासे पद्मं, सप्त
पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति ॥४६॥

फलभारनम्रशालि,
    व्रीह्या दिसमस्तसस्यधृतरोमांचा ।
परिहृषितेव च भूमि,
    स्त्रि भुवननाथस्य वैभवं पश्यंती ॥४७॥

शरदुदयविमलसलिलं, सर इव
    गगनं विराजते विगतमलम् ।
जहति च दिशस्तिमिरिकां,
    विगतरजप्रभृतिजिह्मताभावं सद्यः ॥४८॥

एतैतेति त्वरितं,
    ज्योतिर्व्यंतरदिवौकसाममृतभुजः ।
कुलिशभृदाज्ञापनया,
    कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याव्हानम् ॥४९॥

स्फुरदसहस्ररुचिरं,
    विमलमहारत्नकिरणनिकरपरीतम् ।
प्रहसितसहस्रकिरण,
    द्युति मंडलमग्रगामि धर्मसुचक्रम् ॥५०॥

इत्यष्टमंगलं च,
    स्वादर्शप्रभृति भक्तिरागपरीतैः ।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै,
    रेतेऽपि निरुपमातिविशेषाः ॥५१॥

आठ प्रातिहार्यों का वर्णन

अशोक वृक्ष

वैडूर्यरुचिरविटप, प्रवाल
मृदु पल्लवोपशोभितशाखः ।
श्रीमानशोकवृक्षो, वरमरकत
पत्रगहनबहलच्छायः ॥५२॥

मंदारकुंदकुवलय,
नीलोत्पल कमलमालतीबकुलाद्यैः ।
समदभ्रमरपरीतै,
र्व्यामिश्रा पतति कुसुमवृष्टिर्नभसः ॥५३॥

चामर

कटककटिसूत्रकुंडल, केयूर
प्रभृतिभूषितांगौ स्वंगौ ।
यक्षौ कमलदलाक्षौ,
परिनिक्षिपतः सलीलचामरयुगलम् ॥५४॥

भामण्डल

आकस्मिकमिव युगप, द्दिवस
करसहस्रमपगतव्यवधानम् ।
भामंडलमविभावित,
रात्रिंदिवभेदमतितरामाभाति ॥५५॥

दुन्दुभिवाद्य

प्रबलपवनाभिघात,
प्रक्षुभित समुद्रघोषमन्द्रध्वानम् ।
दंध्वन्यते सुवीणा, वंशादि
सुवाद्यदुंदुभिस्तालसमम् ॥५६॥

तीन छत्र

त्रिभुवनपतितालांछन,
मिं दुत्रयतुल्यमतुलमुक्ताजालम् ।
छत्रत्रयं च सुबृहद्वैडूर्य,
विक्लृप्तदंडमधिकमनोज्ञम् ॥५७॥

दिव्यध्वनि

ध्वनिरपि योजनमेकं,
प्रजायते श्रोत्रहृदयहारिगभीरः ।
ससलिलजलधरपटल, ध्वनितमिव
प्रविततान्तराशावलयम् ॥५८॥

सिंहासन

स्फुरितांशुरत्नदीधिति,
परिविच्छु रितामरेन्द्रचापच्छायम् ।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः,
स्फटिकशिलाघटितसिंहविष्टरमतुलम् ॥५९॥

यस्येह चतुस्त्रिंशत्प्रवरगुणा
प्रातिहार्यलक्ष्म्यश्चाष्टौ ।
तस्मै नमो भगवते,
त्रिभुवनपरमेश्वरार्हते गुणमहते ॥६०॥

इच्छामि भंते ! णंदीसरभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं-णंदीसरदीवम्मि, चउदिसिविदिसासु अंजणदहिमुहरदिकरपुरुण ग वरेसु जाणि जिणचेइयाणि, ताणि सव्वाणि, तसिुवि लोएसु, भवणवासिय, वाणविंतर, जोइसिय, कप्पवासियत्ति, चउविहा देवा सपरिवारा, दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि अक्खेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि दिवेहि, दिव्वेहि धूवेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि, ण्हाणेहि आसाढकत्तियफागुणमासाणं, अट्ठमिमाइं, काऊण जाव पुणिमंति, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, णमंदीसरचेदियमहाकल्लाणं करंति अहमवि इह संतो तत्थसंताइयं भतिए सया णिच्चकालं अंचेमिं, पूजेमिं, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिंणगुणसंपति होऊ मज्झं ।

॥ इति श्री नंदीश्वरभक्ति नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत्शान्तिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् । णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमोआयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री शान्तिभक्तिः

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्पादद्वयं ते प्रजाः ।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसारघोरार्णवः ॥
अत्यंतस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो ।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिलच्छायानुरागं रविः॥१॥

प्रणाम करने का ऐहिक फल

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो ।
विद्याभेषजमंत्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा ॥
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां नृणाम् ।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसाशाम्यन्त्यहो विस्मयः ॥२॥

प्रणाम करने का फल

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युतेः ।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्पीडाः प्रयान्ति क्षयं ॥
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता ।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥३॥

मुक्ति का कारण जिन स्तुति

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यंन्तरौद्रात्मकान्।
नानाजन्मशतांतरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।।
को वा प्रस्खलतीहकेन विधिना कालोग्रदावानलान्।
न स्याच्चेत्तव पादपद्म युगलस्तुत्यापगावारणम् ।।४।।

स्तुति से असाध्य रोगों का नाश

लोकालोकनिरंतरप्रविततज्ञानैकमूर्ते विभो ।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रयः ।।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः ।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुंजरा ।।५।।

स्तुति से अनंत सुख

दिव्यस्त्रीनयनाभिरामविपुलश्रीमेरुचूडामणे।
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहर प्राणीष्टभामंडल ।।
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ।।६।।

भगवान के चरण-कमल प्रसाद से पापों का नाश

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयं- ।
स्तावद्धारयतीह पंकजवनं निद्रातिभारश्रमम् ।।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्नस्यात्प्रसादोदय- ।
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ।।७।।

स्तुति फल याचना

शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र शान्तमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात् ।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषुबहवःशान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।।
कारुण्यान्मम भक्तिकस्य च विभोदृष्टिं प्रसन्नां कुरु ।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ।।८।।

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम् ।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रम् ।।९।।

पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च ।
शान्तिकरंगणशान्तिमभीप्सुः षोड्शतीर्थकरंप्रणमामि ।।१०।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिः । दुंन्दुभिरासनयोजनघोषौ ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ।।११।।

तं जगदर्जितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ।।१२।।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपातपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः
तीर्थंकराः सततशान्तिकरा भवंतु ।।१३।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां
    यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः
    करोतु शान्तिं भगवान्जिनेन्द्र ॥१४॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यक् वर्षतु मघवा व्याधवो यान्तु नाशम् ।

दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥१५॥

शान्तिः शिरोधृतजिनेश्वर शासनानां ।
    शान्तिर्निरन्तरतपोऽभवमा वितानाम् ॥ शान्तिः
कषायजयजृंभितवैभवानां । शान्तिः
    स्वभावमहिमानमुपागतानाम् ॥१६॥

जीवतु संयमसुधारसपानतृप्ताः ।
    नंदंतु शुद्धसहसोदयसुप्रसन्नाः ॥
सिध्यंतु सिद्धिसुखसंगकृतामियोगाः ॥
    तीव्र तपंतु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञाः ॥१७॥

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः
    संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः ।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण
    रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे ॥१८॥

शान्तिः शं तनुतां समस्तजगतः, संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्रीः परिवर्धतां नवधुरा धुर्यो धारित्रीपतिः ॥
सद्विद्यारसमुद्गिरंतु कवयो नामाप्यघस्यास्तु मा।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥१९॥

श्रीमत्पंचम सार्वभौम पदवीं प्रदयुम्नरूपश्रीयं।
प्राप्त षोडश तीर्थकृत्वमखिलं, त्रैलोक्य पूजास्पदं ॥
यस्तापत्रय शांतितः स्वयमितः शांतिं प्रशांतात्मनां।
शांतिं पच्छति तं नमामि परमं शांतिं जिनं शांतये ॥२०॥

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः॥२१॥

इच्छामि भंते ! शान्तिभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउंपंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं, अट्ठमहा पाडिहेर सहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं, बत्तीसदेविंद मणि मय मंउड-मत्थयमहियाणं बलदेव वासुदेव चक्क हर रिसि मुणि जदि-अणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं, उसहाइवीर पच्छिममंगल महा-पुरिसाणं सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुमइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

॥ इति श्री शान्तिभक्तिः नमः ॥

अथार्हत्पूजारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीमत्समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

(नव जाप्य करें)

अथ श्री समाधिभक्तिः

स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणम्, श्रुतचक्षुषा ।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां, केवलज्ञानचक्षुषा ॥१॥

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः ।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे ।
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग ॥२॥

जैनमार्गरुचिरन्यमार्गनिर्वेगता, जिनगुणस्तुतौमतिः ।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः, संभवन्तुममजन्मजन्मनि॥३॥

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धान्तवार्धिसद्घोषे ।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसनसमन्वितं मरणम् ॥४॥

जन्मजन्म कृतं पापं जन्मकोटिसमार्जितम् ॥
जन्ममृत्युजरामूलं हन्यते जिनवंदनात् ॥५॥

आबाल्याज्जिनदेवदेव भवतः, श्रीपादयोः सेवया ।
सेवासक्तविनेयकल्पलतया, कालोऽद्य यावद्गतः ॥
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना, प्राणप्रयाणक्षणे ।
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने, कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम ॥६॥

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वयेलीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्या, वन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥७॥

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥८॥

पंच अरिंजयणामे, पंच य मदियासरे जिणे वन्दे ।
पंच जसोयरणामे, पंच य सीमंदरे वंदे ॥९॥

रयणत्तयं च वन्दे, चउवीसजिणं च सव्वदा वंदे ।
पंचगुरूणां वंदे, चारणचरणं सदा वंदे ॥१०॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे ॥११॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥१२॥

आकृष्टिं सुरसंपदा विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यतां ।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वेषमात्मैनसाम् ॥
स्तंभं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम् ।
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता ॥१३॥

अनंतानंतसंसार-संततिच्छेदकारणम् ।
जिनराजपदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम ॥१४॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥१५॥

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६॥

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१७॥

याचेऽहं याचेऽहं जिन तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम् ।
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव ॥१८॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥१९॥

इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं । रयणत्तयपरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीये सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

॥ इति श्री समाधिभक्ति नमः ॥

चतुर्दिग्वन्दना

प्राग्दिग्विदिगन्तरतः,
केवलि जिन सिद्ध साधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा
योगीगणशास्तानहं वन्दे ॥१॥

दक्षिण दिग्विदिगन्तरतः
केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा
योगीगणशास्तानहं वन्दे ॥२॥

पश्चिमदिग्विदिगन्तरतः
केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा
योगीगणशास्तानहं वन्दे ॥३॥

उत्तरदिग्विदिगन्तरतः
केवलिजिनसिद्धसाधुगरदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा
योगीगणशास्तानहं वन्दे ॥४॥

सर्वदोष-प्रायश्चित्तविधिः

ये ये पञ्चमहाव्रतेषु समितिस्थानेषु गुप्तित्रये।
ये षड्जीवनिकायकेषु बहुधा पञ्चास्तिकायेषु च ॥

दोषा ये च पदार्थकेषु नवसु प्रोद्यत्प्रमादस्य मे।
तान्हन्तुं प्रयजे जिनेश! विधिना त्वत्पादपद्माहृदम् ॥

ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा त्रयस्त्रिंशद
त्यासादनात्या-गायानुष्ठितषधोद्योतनाय नमः ॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं अहिंसामहाव्रतस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२॥

ॐ ह्रीं अर्हं सत्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं अचौर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥४॥

ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मचर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥५॥

ॐ ह्रीं अर्हं अपरिग्रहमहाव्रतस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं ईर्यासमितेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥७॥

ॐ ह्रीं अर्हं भाषासमितेरत्यासदनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥८॥

ॐ ह्रीं अर्हं एषणासमितेरत्यासादनात्या-
गानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥९॥

ॐ ह्रीं अर्हं आदाननिक्षेपणसमितेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रौषधोद्योतनाय नमः ॥१०॥

ॐ ह्रीं अर्हं उत्सर्गसमितेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रौषधोद्योतनाय नमः ॥११॥

ॐ ह्रीं अर्हं मनोगुप्तेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१२॥

ॐ ह्रीं अर्हं वचोगुप्तेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१३॥

ॐ ह्रीं अर्हं कायगुप्तेरत्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१४॥

ॐ ह्रीं अर्हं जीवास्तिकायस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१५॥

ॐ ह्रीं अर्हं पुद्गलास्तिकायस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१६॥

ॐ ह्रीं अर्हं धर्मास्तिकायस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥१७॥

ॐ ह्रीं अर्हं अधर्मास्तिकायस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोधोषद्योतनाय नमः ॥१९॥

ॐ ह्रीं अर्हं पृथ्वीकायिकस्यात्यासादनात्या-
गानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२०॥

ॐ ह्री अर्हं अप्कायिकस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२१॥

ॐ ह्रीं अर्हं तेज:कायस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२२॥

ॐ ह्रीं अर्हं वायुकायिकस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२३॥

ॐ ह्रीं अर्हं वनस्पतिकायिकस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२४॥

ॐ ह्रीं अर्हं त्रसकायिकस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२५॥

ॐ ह्रीं अर्हं जीवपदार्थस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२६॥

ॐ ह्री अर्हं अजीवपदार्थस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२७॥

ॐ ह्रीं अर्हं आस्रवपदार्थस्यात्यासादनात्या-
गायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२८॥

ॐ ह्रीं अर्हं बन्धपदार्थस्यात्यासादनात्यागाय अनुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥२९॥

ॐ ह्रीं अर्हं संवरपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३०॥

ॐ ह्रीं अर्हं निर्जरापदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३१॥

ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३२॥

ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३३॥

ॐ ह्रीं अर्हं पापपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः ॥३४॥

ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनाय नमः ॥३५॥

ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्ज्ञानाय नमः ॥३६॥

ॐ ह्रीं अर्हं सम्यक्चारित्राय नमः ॥३७॥

॥ इति सर्वदोषप्रायश्चितविधिः ॥

तृतीय खंड

अथ श्रावक-प्रतिक्रमणम्

जीवे प्रमाद-जनिताः प्रचुराः प्रदोषा
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मात्तदर्थममलं गृहि बोधनार्थं
वक्ष्ये विचित्र-भव-कर्म-विशोधनार्थम् ॥१॥

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना लोभिना
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ॥
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना।
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि ॥३॥

रागबंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥४॥

हा दुट्ठ-कयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥५॥

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदाऽवराह-सोहणयं।
णिंदण-गरहण-जुत्तो मण-वय-कायेण पडिक्कमणं ॥६॥

आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया - वणप्फदिकाइया एइंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया पुढविकाइया तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य।
बंभाऽरंभ-परिग्गह-अणुमणुमुद्दिट्ठ-देसविरदे य।।

एयासु जधाकहिद-पडिमासु पमादाइकया इचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं, होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मेभवद्ध, मे भवदु।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरिय कमेण आलोयण-सिद्धभक्ति-काउस्सग्गं करोमि।

सामायिक दण्डक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि

लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं, करेमि भन्ते ! सामायियं सव्व-सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भन्ते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

कायोत्सर्ग करें

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ॥१॥

लोयस्सुज्जोय-यरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिगो ॥२॥

उसह-मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥३॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथुं च जिण वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदाम्यरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला-पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहिं णिम्मल-यरा आइच्चेहिं अहिय-पया-संता।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानाऽन्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते ॥१॥

तव-सिद्धे णय-सिद्धे संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंस्सामि ॥२॥

इच्छामि भंते ! सिद्धे भक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण - सम्म - दंसण -सम्म - चरित्तजुत्ताणं, अट्ठ-विह कम्म विप्प-मुक्काणं, अट्ठ-गुणसंपण्णाणं, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदा णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

इच्छामि भंते ! देवसियं (राइय) आलोचेउं तत्थ-

दर्शन प्रतिमा

पंचुम्बर सहियाइं, सत्तवि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविशुद्ध मई, सो दंसण सावओ भणिओ ॥१॥

व्रत प्रतिमा

पंच य अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि, जाण विदियम्मि ठाणम्मि।

सामायिक प्रतिमा

जिणवयण धम्मचेइय, परमेट्ठि जिणयालयाण णिच्चंपि
जं वंदणं तिआलं, कीरइ सामाइयं तं खु ।।३।।

प्रोषधोपवास प्रतिमा

उत्तम मज्झ जहण्णं, तिविहं पोसहविहाण मुद्दिट्ठं ।
सगसत्तीएमासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वं ।।४।।

सचित्तत्याग प्रतिमा

जं वज्जिजदि हरिदं, तय पत्त पवाल कंदफल वीयं ।
अप्पासुगं च सलिलं, सचित्तणिव्वत्तिमं ठाणं ।।५।।

दिवामैथुनत्याग या रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा

मण वयण काय कद, कारिदाणुमोदेहिंमेहुणंणवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि, गुणम्मि जो सावओछट्ठो ।।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

पुव्वुत्तणव विहाणं पि, मेहुणं सव्वदा विवज्जन्तो ।
इत्थिकहादि णिवित्ती, सत्तमगुण बंभचारी सो ।।७।।

आरम्भत्याग प्रतिमा

जं किं पि गिहारंभं, बहुथोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभणिवितमदी, सो अट्ठम सावओ भणिओ ॥८॥

परिग्रहत्याग प्रतिमा

मोत्तूण वत्थमित्तं, परिग्गहं जो विवज्जदेसेसं।
तत्थवि मुच्छणं करेदि, वियाण सो सावओ णवमो ॥९॥

अनुमतित्याग प्रतिमा

पुट्ठो वाऽपुट्ठो वा, णियगेहिं परेहिं सग्गिह कज्जे।
अणुमणणं जो ण कुणदि, वियाण सो सावओ दसमो ॥१०॥

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा

णवकोडीसु विशुद्धं, भिक्खायरणेण भुंजदे भुंजं।
जायणरहियं जोग्गं, एयारस सावओ सो दु ॥११॥

एयारसम्मि ठाणे, उक्किट्ठो सावओ हवई दुविहो।
वत्थेय धरो पढमो, कोवीण परिग्गहो विदिओ ॥१२॥

तव वय णियमावासय, लोचं कारेदि पिच्छगिण्हेदि।
अणुवेहा धम्मझाणं, करपत्ते एय-ठाणम्मि ॥१३॥

एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स भंते ! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं, समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त रायभत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदोय॥१॥

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सर्गं करेमि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥३॥

णमोकार मंत्र का तीन बार उच्चारण करना चाहिये।

णमोजिणाणं णमोजिणाणं णमोजिणाणं णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमोत्थुदे

णमोत्थुदे णमोत्थुदे अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाणं ! सल्लघत्ताणं ! णिब्भय ! णिराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिसल्ल ! माणमाय-मोसमूरण, तवप्पहावण, गुणरयण, सीलसायर, अणंत, अप्पमेय्, महदि महावीर वड्ढमाण, बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे।

मम मंगलं अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जयणाणिणो, चउदसपुव्वगामिणो, सुदसमिदिसमिद्धाय, तवोय, वारह विहो तवसी, गुणाय, गुणवंतोय, महरिसी तित्थं तित्थंकराय, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणदा ए, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ, चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तिओचेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदि मंतो य, सुसमय परसमय विदु, खंति खवगा य, खंतिवंतो य खीणमोहा य, खीणवंतो य, बोहिय बुद्धाय, बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खाय चेईयाणि।

उड्ढ - मह - तिरियलोए, सिद्धायदणाणि णमंस्सामि, सिद्धणिसीहियाओ, अट्ठावय पव्वये,

सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि इसिपब्भारतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु आइरिय उवज्झायाणं पव्वतित्थेर कुलयराणं चउवण्णोय समण-संघोय, दससु भरहेरावएसु पंचसु महाविदेहेसु जो लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धोसिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तियरण सुद्धो।

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप

पडिक्कमामि भंते ! दंसण पडिमाए, संकाए, कंखाए, विदिगिंच्छाए, परपासंडपसंसणाए, पसंथुए, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

अहिंसाणुव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे:-वहेण वा, बंधेण वा, छेएण

वा, अइभारारोहणेण वा, अण्णपाणणिरोहणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१॥

सत्याणुव्रतका प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिये थूलयडे असच्चविरदिवदे:- मिच्छोपदेसेण वा, रहो अब्भक्खाणेण वा, कूडलेह करणेण वा, णायापहारेण वा सायारमंतभेएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-२॥

अचौर्याणुव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जा-इक्कमणेण वा, हीणाहियमाणुम्माणेव वा, पडिरूवय ववहारेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, कायेण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा,

समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-३॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभविरदिवदेः- परविवाहकरणेण वा, इत्तरियागमणेण वा, परिग्गहिदा परिग्गहिदागमणेण वा, अणंगकीडणेण वा, कामतिव्वाभिणिवेसेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-४॥

परिग्रह परिमाणाणु व्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदेः- खेत्तवत्थूणं परिमाणा इक्कमणेण वा, धणधाणाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, हिराण्णसुवण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, दासीदासाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, कुप्पभांड परिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-५॥

दिग्व्रत गुणव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे गुणव्वदेः-उड्ढवइक्कमणेण वा, अहोवइक्कमणेण वा, तिरियवइक्कमणेण वा, खेत्तउड्ढिएण वा, सदि अंतराधाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-६-१॥

देशव्रत गुणव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएविदिए गुणव्वदेः- आणयणेणवा, विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गलखेवेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-७-२॥

अनर्थदंड त्याग गुणव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएतिदिए गुणव्वदेः- कंदप्पेण वा, कुकुवेएण वा, मोक्खरिएण वा, असमक्खियाहिकरणेण वा, भोगोपभोगा

णत्थकेण वा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णि दो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-८-३॥

भोग परिमाण शिक्षाव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे सिक्खावदे:- फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदियभोगपरि-माणाइक्कमणेण वा, घाणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, चक्खिंदियभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा, सवणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-९-१॥

उपभोग परिमाण शिक्षाव्रत काप्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए विदिएसिक्खावदे:- फांसिंदिय परिभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा, रसणिंदिय परिभोगपरिमाणा इक्कमणेण वा, घाणिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्क

मणेण वा, चक्खिंदिय-परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, सवणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसियो (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१०-२॥

अतिथि संविभाग शिक्षाव्रतका प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएतिदिए सिक्खावदे:- सचित्तणिक्खेवेण वा, सचित्ता पिहाणेण वा, परउवएसेण वा, कालाइक्कमणेण वा, मच्छरिएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-११-३॥

सल्लेखना शिक्षाव्रत का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे सिक्खावदे:-जीविदासंसणेण वा, मरणासंसणेण वा, मित्ताणुराएण वा, सुहाणुबंधेण वा, णिदाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा,काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा

समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१२-४॥

सामायिक प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! सामाइय पडिमाएः- मणदुप्पणिधाणेण वा, वायदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदि अणुव्वट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

प्रोषदोपवास प्रतिमाका प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! पोसह पडिमाएः- अप्पडिवेक्खियापमज्जियोसग्गेण वा, अप्पडिवे क्खियापमज्जियादाणेण वा, अप्पडिवेक्खियाप मज्जियासंथारो-वक्कमणेण वा, आवस्सयाणदरेण वा, सदिअणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

सचित्तत्याग प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! सचित्तविरदिपडिमाएः- पुढविकाइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णाभिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, मणसा वचसा काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

रात्रि भुक्ति विरत या दिवा मैथुन त्याग प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! राइभत्तपडिमाएः- णवविहबंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।६।।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! बंभपडिमाएः-

इत्थिकहायत्तणेण वा, इत्थिमणोहरांगनिरिक्खणेण वा, पुव्वरयाणुस्सरणेण वा, कामकोवणरसासेवणेण वा, शरीरमंडणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥७॥

आरंभ त्याग प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! आरंभविरदिप डिमाए:- कसायवसंगएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) आरम्भो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

परिग्रह त्याग प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! परिग्गहविरदिप डिमाए:- वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

अनुमति त्याग प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा, कारिदं वा, कीरंतां वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

उद्दिष्ठ त्याग प्रतिमा का प्रतिक्रमण

गद्य-पडिक्कमामि भंते ! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोसबहुलं अहोरदियं आहारयं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतं वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

निर्ग्रन्थ पद की वांछा

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं, अवितहं अविसंति-पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं

पत्तियामि, त रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाणमंतंकरेंति, पडि-वियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवधि-णियडि-माण-माया-मोसमूरण-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

प्रतिक्रमण का उपसंहार

इच्छामि भंते ! वीरभत्ति काउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, एयारसण्हं-पडिमाणं विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिदेण वा, णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा,

छिंकिदेण वा, जंभाइदेण वा, सुहुमेहिं-अंग-चलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं, अ-समाहिं-पत्तेहिं, आयारेहिं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदोय ॥१॥

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसियो (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण निष्ठितकरण वीरभक्ति कायोत्सर्गं करेमि।

(इति विज्ञाप्य-णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्। थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्)

वीर स्तवन

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय निजेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥

वीरः सर्व-सुराऽसुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः-
वीरेणाभिहतः स्वकर्म-निचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात् तीर्थ-मिदं-प्रवृत्त-मतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर! भद्रंत्वयि॥२॥

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्यं
ध्यान स्थिताः संयम योग-युक्ताः।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके
संसार-वादुर्गं विषमं तरन्ति॥३॥

चारित्र स्तवन

व्रत-समुदय मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम नियम पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त प्रवालो,
गुण-कुसुम सुगन्धिः सत्-तपश्चित्र-पत्रः ॥४॥

शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाययौघः,
शुभजन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरित-रविज-तापं प्रापयन्नन्तभावं,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ॥५॥

चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ॥६॥

धर्म का महात्म्य

धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्ये शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय ॥७॥

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

आलोचने

इच्छामि भन्ते ! पडिक्कमणाइचार मालोचेउं तत्थ देसासिआ, असणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ, काउसग्गासिआ पणमासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए छसु आवासएसु परिहीणदाए जो मए अच्चासणा, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्समिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य।
बंभाऽऽरंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ-देस विरदोय ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं । अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु ।।

अथ देवसियो (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण चउवीस तित्थयर भक्ति कायोत्सर्गं करेमि ।

(इति विज्ञाप्य-णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्)

चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे ।
सव्वेसिंगुण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

ये लोकेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरा;
ज्ञेयार्णवान्तर्गता;
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-
मथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः।

ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-
र्गीत-प्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्
भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवर-मजितं
सर्व-लोक-प्रदीपम्,
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं मुनि-गण-वृषभं
नन्दनं देव-देवम् ।

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वर कलम-निभं
पद्म-पुष्पाभि-गन्धम्,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकल शशि-निभं
चंद्रनामान-मीडे ॥३॥

विख्यातं पुष्पदन्तं भव-भय-मथनं
शीतलं लोक-नाथम्,
श्रेयांसं शील-कोशं प्रवर-नर-गुरुं
वासुपूज्यं सुपूज्यम्।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमल-मृषि-पतिं
सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्मं सद्धर्म-केतुं शम-दम निलयं
स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥४॥

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमण पतिमरं
त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लिं विख्यात-गोत्रं खचर गण नुतं
सुव्रतं सौख्य-राशिम्।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरि-कुल-तिलकं
नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेन्द्र वन्द्यं शरणमहमितो
वर्धमानं च भक्त्या ॥५॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाऽतिसय विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणिमय-मउड-मत्थयमहिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइअणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइवीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सगइ गमणं, समाहि मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्तराइ भत्तेय ।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदोय ॥

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइकदादिचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं । अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाएसव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरिय कमेण आलोयण श्री

सिद्धभत्ति पडिक्कमणभत्ति णिट्ठिदकरण वीर भत्ति चउवीस-तित्थयर भत्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष परिहारार्थं सकल दोष निराकरणार्थं सर्वमलातिचार विशुद्ध्यर्थ मम आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमोकार ९ गुणित्वा)

अथेष्ट-प्राथना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥२॥

अक्खर पयत्थ-हीणं मत्ता हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

इच्छामि भंते ! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव परमप्प ज्झाण लक्खणं-समाहि-भत्तीए सया णिच्चकालं अच्चेमि, पेजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

॥ इति श्रावक प्रतिक्रमण ॥

दैवसिक-रात्रिक मुनि प्रतिक्रमणम्

प्रतिज्ञा सूत्र

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषाः,
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम् ॥१॥

उद्देश्य सूत्र

पापिष्ठेन दुरात्मा जड़धिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

संकल्प सूत्र

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ॥३॥

राग परित्याग सूत्र

राग बंधपदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥४॥

पश्चात्ताप सूत्र

हा ! दुट्ठकयं हा ! दुट्ठचिंतियं भासियं च हा ।
दुट्ठं अन्तोअन्तो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ।।५।।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहण जुत्तो मणवयणकाएण पडिक्कमणं ।।६।।

एइंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया-एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ।।

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमादकदादो, अइचारादोणिवत्तोहं ।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच षडावश्यकक्रिया-अष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्द-वार्जव शौच सत्य संयम तपस्त्यागा

किंचन्यब्रह्मचर्याणि, दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशी-तिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु साक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं समारूढं ते मे भवन्तु।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक-(रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां, कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्तवसमेतं आलोचनासिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इति प्रतिज्ञाप्य)

णमो अरहंताणमित्यादि सामायिकदंडकं पठित्वाकायोत्सर्गं कुर्यात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशतिस्तवं पठंतु)

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धेसिरसा णमंसामि।

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं

उड्ढलोय-मज्झयम्मि पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीताणा गदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणंणिच्च कालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

आलोचना

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो परिविहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि, तत्थ-पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा, असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिआ, वीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

बेइन्दिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमिसंख-खुल्लयवराडय-अक्ख-

रिठ्ठवाल-संबुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरन्तो वा समणुमण्णिदो वा, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

तेइन्दिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थु-देहियविंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरन्तो वा, समणुमण्णिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसयमक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर गोमच्छि-याइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरन्तो वा, समणुमण्णिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उव्वादिमा, अवि चउरासीदिजोणिपमुह सदसस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरन्तो वा, समणुमण्णिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

प्रतिक्रमणपीठिकादण्डक

इच्छामि भन्ते ! देवसियम्मि (राईयम्मि) आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि तत्थ पढ़मं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादौ वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राई भोयणादो वेरमणं, ईरियासमिदीए, भासासमिदीए, एसणासमिदीए, आदाननिक्खेवण-समिदीए, उच्चारपस्सवण-खेल-सिंहाणवियडिपइट्ठावणियासमिदीए, मणगुत्तीए, वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए। णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदि गुणसयसहस्सेसु, वारसण्हं संजमाणं, वारसण्हं तवाणं, वारसण्हं अंगाणं, चोदसण्हं पुव्वाणं, दंसणं मुंडाण दसण्हं समणधम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं, णव्वण्ह बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इन्दियाणं, पञ्चण्हंमहव्वदाणं, पंचण्हं समिदीणं

पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए परदावणियाए, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा, एदेसिं अच्चासणदाए, तिण्हं दण्डाएं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थसङ्क्लिेसपरिणामाणं, मिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्ताणं, मिच्छत्तपाउग्गं, असंयमपाउग्गं, कसायपाउग्गं, जोगपाउग्गं, अपाउग्गसेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए-इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अदिक्कम्मो, वदिक्कम्मो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भन्ते! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसम्पत्ति होउ मज्झं ।।२।।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसवणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

(इति प्रतिक्रमणपीठिकादंडक)

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिय (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीप्रतिक्रमण्-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं ।

(णमो अरहंताणं इत्यादि दडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । अनन्तरं थोस्सामीत्यादि पठेत्)

(निषिद्धिकादंडकाः)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

णमो जिणाणं ३, णमोणिस्सहीए ३, णमोत्थुदे ३ अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघत्ताण ! णिब्भय ! णिराय ! णिद्दोस !

णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिस्सल्ल ! माण-माय-मोस-मूरण ! तवप्पहावण ! गुणरयणसीलसायर !

अणंत ! अप्पमेय ! महदिमहावीरवड्ढमाण बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थुए णमोत्थुए णमोत्थुए।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जयणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसम्धिा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो, संजदा य, विणीओ, विणदा य, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ चेव, गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव, मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव, समिदिमंतो य, सुसमयपरसमयविदू, खंतिक्खवगा य, खंतिवंतो य, खीणमोहा य, खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य, बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य, चेंइयाणि।

उड्ढमहतिरियलोए, सिद्धायदणाणि णमस्सामि, सिद्धणिसिहियाओ, अट्ठावयपव्वए, सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालिय सहाए, जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ, जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलगयाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, कम्मचक्कमुक्काणं, णीरयाणं, णिम्मलाणं, गुरुआइरिय-उवज्झायाणं, पव्वत्तित्थेर-कुलयराणं, चाउवण्णो य समणसंघो य, भरहेरावदससु, एसु पंचसु

महाविदेहेसु, जे लोए संति साहवो संजदा, तवसी एदे, मम मंगलं, पवित्तं, एदेहं मंगलं करेमि, भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊणं सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो ॥१॥

(इति निषिद्धिकादंडकः)

पडिक्कमामि भंते ! देवसियस्स (राइयस्स) अइचारस्स, अणाचारस्स, मणदुच्चरियस्स, वचिदुच्चरियस्स, कायदुच्चरियस्स, णाणाइचारस्स, दंसणाइचारसस्स, तवाइचारस्स, वीरियाइचारस्स, चारित्ताइचारस्स, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं आवासयाणं, छण्हं जीवणिकायाणं, विराहणाए, पील कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समगुणमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥१॥

पडिक्कमामि भंते ! अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे गमणे, चंकमणे, उव्वत्तणे, आउट्टणे, पसारणे, आमासे, परिमासे, कुइदे, कक्कराइदे, चलिदे, णिसण्णे, सयणे, उव्वट्टणे, परियट्टणे, एइंदियाणं, वेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाणं, जीवाणं, संघट्टणाए संघादणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, एत्थ मे जो कोई देवसिओ,

(राईओ) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए, विराहणाए, उड्ढमुहं चरंतेण वा, अहोमुहं चरंतेण वा, तिरिमुहं चरंतेण वा, दिसिमुहं तरंतेण वा, विदिसिमुहं चरंतेण वा, पाणचंकमणदाए, वीयचंकमणदाए, हरियचंकमणदाए, उत्तिंग-पणय-दय-मट्टिय-मक्कडय-तन्तु-संत्ताण चंकमणदाए, पुढविकाइय-संघट्टणाए, आउकाइय संघट्टणाए, तेउकाइयसंघट्टणाए, वाउकाइयसंघट्टणाए, वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए, तसकाइय-संघट्टणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए इत्थ मे जो कोई इरिहायवहियाए, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

पडिक्कमामि भंते ! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण वियडिपइट्ठावणियाए, पइट्ठावंतेण जो कोई पाणा वा, भूदा वा, जीवा वा, सत्ता वा, संघट्ठिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईयो) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पडिक्कमामि भंते ! अणेसणाए, पाणभोयणाए, पणयभोयणाए, वीयभोयणाए, हरियभोयणाए, आहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुराकम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, दयसंसिट्ठयडेण वा, रससंसिट्ठयडेण वा, परिसादणियाए, पइट्ठावणियाए, उद्देसियाए, णिद्देसियाए कीदयडे, मिस्से, जादे, ठविदे, रइदे, अणसिट्ठे, बलिपाहुडदे, पाहुडदे, घट्टिदे, मुच्छिदे, अइमत्तभोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

पडिक्कमामि भंते ! सुमणिंदियाए, विराहणाए, इत्थिविप्परियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणिविप्परियासियाए, वचिविप्परियासियाए, कायविप्प-रियासियाए, भोयणविप्परियासियाए, उच्चवयाए, सुमणदंसणविप्परियासियाए, पुव्वरए, पुव्वखेलिए, णाणाचिंतासु, विसोतियासु इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।६।।

पडिक्कमामि भंते ! इत्थीकहाए, अत्थकहाए, भत्तकहाए, रायकहाए, चोरकहाए, वेरकहाए, परपासंडकहाए, देसकहाए, भासकहाए, अकहाए,

विकहाए, णिठुल्लकहाए, परपेसुण्णकहाए, कंदप्पियाए, कुक्कुच्चिहाए, डंबरियाए मोक्खरियाए, अप्पसंसणदाए, परपरिवादणाए, परदुगंछणदाए, परपीडाकराए, सावज्जाणुमोयणियाए, इत्थ मे जो कोई देवसीओ (राईओ) (अइचारो) अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।७।।

पडिक्कमामि भंते ! अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इहलोय सण्णाए, परलोयसण्णाए, आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, कोहसल्लाए, माणसल्लाए, मायासल्लाए, लोहसल्लाए, पेम्मसल्लाए, पिवासल्लाए, णियाणसल्लाए, मिच्छादंसणसल्लाए, कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोहकसाए किण्हलेस्स परिणामे, णीललेस्सपरिणामे, काउलेस्सपरिणामे, आरम्भपरिणामे, परिग्गहपरिणामे, पडिसयाहिलास परिणामे, मिच्छादंस-णपरिणामे, असंजमपरिणामे, पावजोगपरिणामे, कायसुहाहिलासपरिणामे, सद्देसु, रूवेसु, गन्धेसु, रसेसु, फासेसु, काइयाहिकरणियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।८।।

पडिक्कमामि भंते ! एक्के भावे अणाचारे, दोसु राय दोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, वारसविहेसु भिक्खु-पडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु, भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु, सोलस विहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु अट्ठारसविहेसु, असंपराएसु, उणवीसाय णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु, एक्कवीसाए, सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु, एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीठाणेसु, एक्कत्तिसाए कम्मविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेत्तीसाए अच्चासादणाए, संखेवेण जीवाण अच्चासणदोए, अजीवाण अच्चासादणाए, णाणस्स अच्चासादणाए, दंसणस्य अछ्चासादणाए, चरित्तस्य अच्चासादणाए, तवस्य अच्चासादणाए, वीरियस्य अच्चासादणाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं

गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

निर्ग्रन्थ पद को मैं स्वेच्छा से ग्रहण करता हूँ

इच्छामि भंते ! इमं निग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंत्तिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं, अवित्तहं अवि संति पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णात्थि, ण भूदं ण भविस्सदी, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, पडिवियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहिणियडिमाणमायमोसमिच्छणाण मिच्छादंसण मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण

सम्मदंसण सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई देवसियो (राईयो) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१०।।

सार्वकालिक दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! सव्वस्स सव्वकालियाए, इरियासमिदीए, भासासमिदीए, एसणासमिदीए, आदाणनिक्खेवणसमिदिए, उच्चारपस्सवणखेल सिंहाणयवियडिपइट्ठावणिसमिदीए, मणगुत्तीए, वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए, पाणादिवादादो-वेरमणाए मुसावादादो वेरमणाए, अदिण्णदाणादो वेरमणाए, मेहुणादो वेरमणाए, परिग्गहादो वेरमणाए, राइभोयणादो वेरमणाए, सव्वविराहणाए, सव्वधम्मअइक्कमणदाए, सव्वमिच्छाचरियाए, इत्थ मे जो कोई देवसियो (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।११।।

वीर-भक्ति कायोत्सर्ग की आलोचना

इच्छामि भंते ! पाडिक्कमादिचार मालोचेउं जो मे देवसिओ (राईओ) अइचारो, अणाचारो, अभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ,

दुस्समणीओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं, जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, विराहणाए, अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिएण वा, णिस्सासिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिम्मिसिएण, खासिएण वा, छिक्किएण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, ऐदेहिं सव्वेहिं आयरेहिं असमाहिपत्तोहिं जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचावासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावझं होहु मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं रात्रिक दैवसिक प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भावपूजावन्दना स्तवसमेतं श्री निष्ठितकरणवीरभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्

(इति प्रतिज्ञाप्य)

दिवसे १०८ रात्रौ च ५४ उछवासेषु णमो अरहंताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्, पश्चात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्

वीर-भक्ति

(शार्दूलविक्रीडित छन्दः)

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥

वीरः सर्वसुरासुरेंद्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो
वीरश्री-द्युति-कांति-कीर्ति-धृतयोहेवीर! भद्रंत्वयि॥२॥

ये वीरमादौ प्रणमंति नित्यं ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवंति लोके संसारदुर्गं विषमं तरंति॥३॥

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कंधबंधो
यमनियमतपोभिर्वर्धितः शीलशाखः ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रबालो
गुणकुसुमसुगंधिः सत्तपश्चित्त पत्रः ।।४।।

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्घः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नंतभावं
स भवविभहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ।।५।।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ।।६।।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ।।७।।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ।।८।।

अंचलिका

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु

जमणियम-संजम-सीलमूलुत्तरगुणेसु सव्वमईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्जलोगअज्झव-सायठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिंदियकसायगा-रवकिरियासु मणवयणकायकर णदुप्पणिहाणाणि परिचिंतियाणि किण्हणीलकाउलेस्साओ विकहा पलि-कुंचिएण उम्मगहस्सरदिअरदिसोयभयदुगं छवेयणविज्जंभजंभाइयाणि अट्टरुद्दसंकिलेस परिणा माणिपरिणामदाणि अणिहुदकरचरणमणवयकाय करणेण अक्खित्त-बहुलपरायणेण अपडिपुण्णेण वासरक्खरावयपरिसंधाय-पडिवत्तिएण, अच्छाकरिदं मिच्छा मेलिदं आमेलिदं वा मेलिदं वा अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छिदं आवासएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु मण्णि दो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

ए दे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

अथ सर्वातिचारविशध्यर्थं देवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इति प्रतिज्ञाप्य)

णमो अरहंताणं इत्यादि (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्)
थोस्सामीत्यादि (चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्) ।

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वेसिं गुणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।१।।

ये लोकेष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवांतर्गताः ।
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चंद्रार्कतेजोधिकाः ।।
ये साध्विंद्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिताः ।
तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपम् ।
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवम् ।।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकलमनिभं पद्मपुष्पाभिगंधम् ।
क्षांतं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चंद्रनामानमीडे ।।३।।

विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं ।
श्रेयांसं शीलकोषं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यं ।।

मुक्तं दांतेंद्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीद्रं।
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शांतिं शरण्यम् ।।४।।

कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रवणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं।
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।।
देवेंद्राच्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवांतम्।
पार्श्वं नागेंद्रवंद्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

अंचलिका

इच्छामि भन्ते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण संपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेस संजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहिदाणंबल देववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिम मंगल महापुरिसाणं सयणिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां श्रीसिद्धभक्ति-प्रतिक्रमणभक्ति-निष्ठितकरणवीरभक्ति-चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं मम आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इति विज्ञाप्य)

णमो अरहंताण इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्
थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत् ।

(पूर्वोक्तां समाधिभक्तिं पठेत्)

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यंतां मम भवभवे यावदेतेपवर्गः ॥१॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥२॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमहु णाणदेव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं दिन्तु ॥३॥

आलोचना

इच्छामि भंते ! समाहिभक्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेऊं, रयणत्तयपरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीए। सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

। इति दैवसिक-रात्रिक-प्रतिक्रमणम् समाप्तम् ।

पाक्षिकादि-प्रतिक्रमणम्

(शिष्यसधर्माणः पाक्षिकादिप्रतिक्रमे लघ्वीभिः
सिद्ध-श्रुताचार्यभक्तिभिराचार्य वन्देरन्)

अथ नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनासिद्ध भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(जाप्य ९)

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्रसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

अथ नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिनिष्ठापना श्रुत भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं ।

(नव जाप्य करें)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतित्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।
अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ।।२।।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिनिष्ठापनाचार्य भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(जाप्य ९)

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥१॥

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वन्दे ॥२॥

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥३॥

ये नित्यं व्रतमन्त्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः ।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः ॥

शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोधिकाः ।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः ॥४॥

गुरवः पांतु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥५॥

(ततः इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं, ''समता सर्व भूतेषु'' इत्यादि पठित्वा गणी शिष्यसधर्मगणयुक्तः, ''सिद्धानुद्धूतकर्म'' इत्यादिकां गुर्वी सिद्धभक्तिं सांचलिकां, ''येनेंद्रान'' इत्यादिकां च चारित्रभक्ति बृहदालोचनासहितां अर्हद्भट्टारकस्याग्रे कुर्यात् । सैषा सूरेः शिष्यसधर्मणां च साधारणी क्रिया ।)

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम् ॥२॥

अथ सर्वातिचारविशुद्धर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणायां पूर्वा चार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दना स्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(णमो अरहंताणं इत्यादिदंडकं पठित्वा कायोत्सर्ग कृत्वा थोस्सामि इत्यादिकं विधाय सिद्धानुद्धूतकर्म इत्यादिसिद्धभक्तिं अंचलिका पठेत् ।)

सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वन्दे सिद्धिप्रसिद्धयै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः ॥

सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः
प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात् ।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद
इह यथा हेमभावोपलब्धिः ॥१॥

नाभावः सिद्धिरिष्टा न
निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्नः युक्तेः ।
अस्त्यात्माऽनादिबद्धः
स्वकृतजफलभुक्तत्क्षयान्मोक्षभागी ॥

ज्ञाता दृष्टा स्वदेहप्रमितिरुप
समाहारविस्तारधर्मा।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा
स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ।।२।।

स त्वन्तर्बाह्यहेतु, प्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या।
सम्पद्धेतिप्रघात, क्षतदुरिततयाव्यंजिताचिंत्यसारैः ।।
कैवल्यज्ञानदृष्टि, प्रवरसुख महावीर्यसम्यक्त्वलब्धिः।
ज्योतिर्वातायनादि, स्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ।।३।।

जानन्पश्यन्समस्तं, सममनुपरतं सम्प्रतृप्यन्वितन्वन्।
धुन्वन्ध्वांतं नितांतं, निचितमनुपमं प्रीणयन्नीशभावम्।।
कुर्वन्सर्वप्रजाना, मपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा।
आत्मन्येवात्मनासौ, क्षणमुप जनयन्सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः ।।४।।

छिंदन् शेषानशेषा, न्निगलवलकलींस्तैरनंतस्वभावैः।
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा, गुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।।
अन्यैश्चान्यव्यपोह, प्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावैः।
रूर्ध्वंव्रज्यास्वभावा, त्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये।।५।।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च, भवति परो येन तेनाल्पहीनः।
प्रागात्मोपात्तदेह, प्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः ।।
क्षुतृष्णाश्वासकास, ज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह।
व्यापत्याद्युग्रदुःख, प्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

आत्मोपादानसिद्धं, स्वयमतिशयवृद्धीतबाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं, विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरुपममितं शाश्वतं सर्वकालम्॥
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्॥७॥

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशा, द्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्न, हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात्॥
आतङ्कार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।
दीपानर्थक्यवद्वा, व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते॥८॥

तादृक्सम्पत्समेता, विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि-।
चर्यासिद्धाः समन्ता, त्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः॥
भूता भव्या भवंतः, सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः।
तान्सर्वान्नौम्यनंता, न्निजिगमिषुरं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्॥९॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण, सम्मदंसण, सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्त सिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि,

णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ती, होउ मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं आलोचनाचारित्रभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(इच्युच्चार्यं ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकमधीत्य ''येनेन्द्रान्'' इत्यादि चारित्रभक्तिं सालोचनां पठेत्-

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलस, त्केयूरहारांगदान्।
भास्वन्मौलिकमणिप्रभाप्रविसरो, तुंगोत्तमाङ्गान्नतान्॥
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनय, श्चक्रुः प्रकामं सदा।
वन्दे पंचतयं तमद्य निगद, न्नाचारमभ्यर्च्चितम्॥१॥

अर्थव्यंजनतद्‌द्वयाविकलता, कालोपधाप्रश्रयाः।
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमति, श्चेत्यष्टधा व्याहृतम्॥
श्रीमज्ज्ञातिकुलेंदुना भगवता, तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा।
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपता, म्युद्धूतये कर्मणाम्॥२॥

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधि, व्यावृत्तिसन्नद्धतां।
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं, धर्मोपबृंहक्रियाम्॥
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्, भ्रष्टस्य संस्थापनम्।
वन्दे दर्शनगोचरं सुचरितं, मूर्ध्ना नमन्नादरात्॥३॥

एकांते शयनोपवेशनकृतिः, सन्तापनं तानवम्।
संख्यावृत्तिनिबंधनामनशनं, विष्वाणमर्द्धोंदरम्॥
त्यागं चेन्द्रियदंतिनो मदयतः, स्वादो रसस्यानिशम्।
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति, प्राप्त्यभ्युपायं तपः॥४॥

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः, सम्प्रत्यवस्थापनं।
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ॥
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं।
वन्देऽभ्यन्तरमन्तरंगबलव, द्विद्वेषिविध्वंसनम्॥५॥

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः, श्रद्धानमर्हन्मते।
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यते॥
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो।
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वंदे सतामर्चितम्॥६॥

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः।
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः, पंचव्रतानीत्यपि॥
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं, पूर्वं न दृष्टं परैः।
आचारं परमेष्ठिनो जिनपते, वींरं नमामो वयम्॥७॥

आचारं सहपञ्चभेदमुदितं, तीर्थं परं मङ्गलं।
निर्ग्रंथानपि सच्चरित्रमहतो, वंदे समग्रान्यतीन्॥
आत्माधीनसुखोदयामनुपमां, लक्ष्मीमविध्वंसिनीम्।
इच्छन्केवलदर्शनावगमन, प्राज्यप्रकाशोज्वलाम्॥८॥

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनो, ऽवर्तिष्यहं चान्यथा।
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं, चैनो निराकुर्वति।।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा, मृद्धिंनयत्यद्भुतं।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे, स्वंनिंदतो निंदितम्।।९।।

संसारव्यसनाहतिप्रचलिता, नित्योदयप्रार्थिनः।
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः, शांतैनसः प्राणिनः।।
मोक्षस्यैवकृतं विशालमतुलं, सोपानमुच्चैस्तराम्।
आरोहन्तु चरित्रमुत्तममिदं, जैनेन्द्रमोजस्विनः।।१०।।

अंचलिका

इच्छामि भन्ते ! चारित्त भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्जर फलस्य, खमाहारस्स, पञ्चमहव्वय संपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पञ्चसमिदिजुत्तस्स, णाणज्जाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

बृहद् आलोचना

इच्छामि भंते ! अट्ठमियम्मि आलोचेउं,अट्ठण्हं

दिवसाणं, अट्ठण्हं राईणं, अब्भंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥१॥

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राईणं, अब्भंतराओ, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥२॥

इच्छामि भंते ! चाउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तरसयदिवसाणं, वीसुत्तरसयराईणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥३॥

इच्छामि भंते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं, तिण्हं छावट्ठिसयराईणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, च्चिरित्तायारो चेदि ॥४॥

तत्थ णाणायारो, अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-

तदूभये चेदि णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं, वा, पदहीणं वा, विंजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुईसुवा अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्वारेसु वा, अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, काले वा परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छा मेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो, णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठि य, उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा चेदि । दंसणायारो, अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्णदिट्ठीपसंसणदाए, परपाखण्डपसंसणदाए, अणायदणसेयणदाए, अवच्छल्लदाए, अप्पहा-वणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

तवायारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो, चेदि । तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं, वित्तिपरिसंखा, रसपरिच्चाओ, सरीरपरिच्चाओ, विवित्तसयणासणं चेदि । तत्थ अब्भंतरो पायच्छितं, विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो

चेदि। अब्भंतरं-बाहिरं-बारसविहं- तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण, जहुत्तमाणेण, बलेण, वीरियेण, परिक्कमेण णिगूहियं, तवोकम्मं, ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं। से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासांखेज्जा, कुक्खि, किमि, शंख, खुल्लय-वराडया-अक्ख-रिट्ठय-गंडवाल-संबुक्क-सिप्पिपुलविकाइया तेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा,

कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुन्थु-द्देहिय-विंधिंय-गोभिंद-गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-य, पयंग-कीड-भमर-महुय-गोमक्खियाइया, तेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिदिंया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि- चउरासीदि-जोणिपमुह सदसहस्सेसु, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

आहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा,

पदोसण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केणवि कारणेण जादेण वा, सव्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

आहावरे तव्वे महव्वदे अदिण्णदाणादो वेरमणं, से गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मडंवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसमे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिण्हं वा, कट्ठं वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं अदिण्णं गिण्हियं, गेण्हावियं, गेण्हिज्जंतं समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

आहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तेरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु, मणुणामणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णामणुणेसु रसेसु, मणुणामणुण्णेसु फासेसु, चक्खिंदियपरिणामे, सोदिंदियपरिणामे, घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिं-दियपरिणामे, फासिंदियपरिणामे, णोइंदियपरिणामे, अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण, णवविहं बंभचरियं, ण रक्खियं, ण रक्खावियं, ण रक्खिज्जंतो

वि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

आहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, सो वि परिग्गहो दुविहो, अब्भंतरो बाहिरो चेदि । तत्थ अब्भंतरो, परिग्गहो, णाणावरणीयं, दंसणावरणीयं, वेयणीयं, मोहणीयं, आउग्गं, णामं, गोदं, अंतरायं चेदि अट्ठविहो । तत्थ बाहिरो परिग्गहो, उवयरणभंड-फलह-पीढ-कमंडलु-संथार-सेज्जउवसेज्ज-भत्त-पाणादिभेएण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं, बद्धावियं, बज्झंतं वि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

आहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं, से असणं, पाणं, खाइयं, रसाइयं चेदि । चउव्विहो आहारो, से तित्तो वा, कडुओ वा, कसाइलो वा, अमिलो वा, महुरो वां, लवणो वा, अलवणो वा, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्सिमिणिओ, रत्तीए भुत्तो, भुंजावियो, भुंज्जियंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥६॥

पंचसमिदीओ, ईरियासमिदी, भासासमिदी, एसणासमिदी, आदाणणिक्खेवणसमिदी, उच्चारपस्सवणखेल-सिंहाणयवियडि-पइट्ठावण-समिदी चेदि।

तत्थ इरियासमिदी पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम-चउदिसि, विदिसासु, विहरमाणेण, जुगंतरदिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठवा डवडवचरियाए, पमाददोसेण, पाणभूद जीव सत्ताणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥७॥

तत्थ भासासमिदी-कक्कसा, कडुया, परुसा, णिट्ठुरा, परकोहिणी, मज्झंकिसा, अइमाणिणी, अणयंकरा, छेयंकरा, भूयाण-वहंकरा, चेदि वि दसविहा। भासा, भासिया, भासाविया, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

तत्थ एसणासमिदी आहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुराकम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, कीडयडेण वा, साइया, रसाइया, सइंगाला, सधूमिया, अइगिद्धीए, अग्गिव, छण्हं जीवणिकायाणं, विराहणं, काऊण, अपरिसुद्धं, भिक्खं, अण्णं, पाणं, आहारियं, आहारावियं, आहारिज्जंतं पि, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

तत्थ आदाण-णिक्खेवण-समिदी चक्कलं वा, फलहं वा, पोथयं वा, पीढ़ंवा, कमंडलं वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं, उवयरणं, अप्पडिलेहिऊण

गेण्हंतेण वा, ठवंतेण वा, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडिपइट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा, वियाले वा, अचक्खुविसए, अवत्थंडिले, अब्भोवयासे, सणिद्धे, सवीए, सहरिए, एवमाइयासु, अप्पासुगट्ठाणेसु, पइट्ठावंतेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

तिण्णि गुत्तीओ, मणगुत्तीओ, वचिगुत्तीओ, कायगुत्तीओ, चेदि। तत्थ मणगुत्ती अठ्ठे झाणे, रुद्दे झाणे, इहलोयसण्णाए, परलोए सण्णाये, आहार सण्णाये, भव सण्णाये, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, एवमाइयासु जा मणगुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१२॥

तत्थ वचिगुत्ती, इत्थिकहाए, अत्थकहाए, भत्तकहाए, रायकहाए, चोरकहाए, वेरकहाए, परपासंडकहाए, एवमाइयासु, जा वचिगुत्तो, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं पि,

समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१३॥

तत्थ कायगुत्ती चित्तकम्मेसु वा, पोत्तकम्मेसु वा, कट्ठकम्मेसु वा, लेप्पकम्मेसु वा, लय कम्मेसुवा, एवमाइयासु जा कायगुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१४॥

दोसु अट्ठ-रूद्द संकिलेस परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ संकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाण, मिच्छादंसण, मिच्छा चरित्तेषु, चउसु उवसग्गेषु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चयेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु (णवसु बंभचेरगुत्तीसु) दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुण्डेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदि-गुणसयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, (अठ्ठमयम्मि) (पक्खियम्मि) (चउमासियम्मि) (संवच्छरियम्मि) अइक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं, समाहिमरणं,

वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुमइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति, होउ मज्झं।

(केवलमाचार्यो "णमो अरहंताण' इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादि भणित्वा 'तवसिद्धे' इत्यादिगाथां साञ्चलिकां पठित्वा, पुनः प्रागुक्तविधिं कृत्वा "प्रावृट्काले सविद्युत्" इत्यादिकां योगिभक्तिं सांचलिकां पठित्वा "इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो" इत्यादि दण्डकपञ्चकमधीत्य तथा "वदसमिदिंदिय" इत्यादिकं "छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं" इत्यन्तं त्रिःपठित्वा स्वदोषान् देवेस्याग्रे आलोचयेत् । दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं च गृहीत्वा "पंचमहाव्रत" इत्यादि पाठं त्रिर्भणित्वा योग्यशिष्यादेः प्रायश्चित्तं निवेद्य देवाय गुरुभक्तिं दद्यात्। ततः पुनः आचार्ययुक्ताः शिष्यसधर्माण सूरेरग्रे इममेव पाठं पठित्वा प्रतिक्रान्तिस्तुर्ति कुर्युः । तद्यथा)

अथ नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(नव जाप्य करें)

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्तिकाउस्सगो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण, सम्मदंसण, सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमज्झयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्र-सिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति, होउ मज्झं।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थमालोचनायोगि भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(नव जाप्य)

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः ।।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगताः स्थानकूटांतरस्थाः ।
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः।।१।।

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु ।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ।।२।।

गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगंबराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

इच्छामि भंते ! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णारसक म्मभूमिसु, आदावण-रुक्खमूल, अब्भोवास-ठाण-मोण वीरासणेक्कपासकुक्कु-डासणचउछपक्खखवणा दिजोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं सया-णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

(आलोचना)

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ, चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढवीकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो

वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

बेइंदिया जीवा असंखेज्सासंखेज्जा कुक्खि, किमि, संख-खुल्लय-क्राडय-अक्ख-रिट्ठय-गंडवाल-संवुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थु-देहियविंछिय गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलिया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसयमक्खिय-पयंगकीडभमर-महुयरगोमक्खिया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया, जराइया-रसाइया संसेदिमा, सम्मुच्छिमा,

उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि- चउरासीदि-जोणिपमुहसद सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

वदसदिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं ॥३॥

प्रायश्चितशोधनरसपरित्यागाः क्रियते ।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यक- क्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौ-असत्यसंयमतपस्त्यागा किञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दक्षलाक्षणिको धर्मः, अष्टादश शीलसहस्त्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलसम्पूर्ण अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्व पूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

अथ नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्हम्-

(९ जाप्य)

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ।।१।।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिए सदा वंदे ।।२।।

गुरुभत्तिसंजमेण य, तरन्ति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति ।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनि रता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः ।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः, साधुक्रियासाधवः ।।

शीलप्रावरणा गुणप्रहरणा, श्चन्द्रार्कतेजोऽधिका ।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ।।४।।

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ।।५।।

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णदाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं

मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणादो वेरमणं, तिसु गुत्तीसु, णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारसशीलसहस्सेसु, चउरासीदि-गुणसय-सहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, वारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं चरित्ताणं, चउदसण्णअहं पुव्वाणं, एयारसण्हं पडिमाणं, दसविहमुंडाणं, दसविहसमणधम्माणं, दसविहधम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परिदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, रायेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासण दाए, तिण्हं दंण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं

अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामाणं, दोण्हं अट्टरुद्द संकिलेसपरिणामाणं, मिच्छणाण-मिच्छदंसणं-मिच्छचरित्ताणां, मिच्छत्तपाउग्गं, असंजमपाउग्गं, कसायपाउग्गं, जोगपाउग्गं, अप्पपाउग्गसेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए इत्थ मे जो कोई (पक्खियम्मि) (चउमासियम्मि) (संवच्छरियम्मि) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो अण्णाचारो आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं, समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरयमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतलणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवठ्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिपञ्चेंद्रियरोधलोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तम क्षमामार्दवार्जव-सत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि दक्षला-क्षणिको धर्मः, अष्टादशशील

सहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं, सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व-साधुसाक्षिकं, सम्यक्त्व- पूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढंते मे भवतु ॥३॥

प्रतिक्रमणभक्तिः

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं (पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक) प्रतिक्रणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वंदनास्तवसमेतं श्री प्रतिक्रमणभक्ति - कायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं ससूरयः विदध्युः)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारिलोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा। सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धेसरणं

पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तां धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारसकम्मभूमिसु, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसगाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते ! सामायियं सव्वंसावज्जजोगं, पच्चक्खामि, जावज्जीवं, तिविहेण, मणसा, वचसा, काएण, ण करेमि, ण कारेमि, अण्णं कीरंतं पिणसमणु मणामि, तस्स भंते ! अइचारं पडिकमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव-कालं, पावकम्मं, दुच्चरियं, वोस्सरामि।

सप्तविंशत्युच्छ्वासेषु ९ जाप्य

(यथोक्तपरिकर्मान्तरं आचार्यः ''थोस्मामि'' इत्यादि डंण्डकं गणधरवलयं च पठित्वा प्रतिक्रमणदण्डकान् पठेत्। शिष्य

सधर्माणस्तु तावत्कालं कायोत्सर्गेण तिष्ठंतः प्रतिक्रमण-दण्डकान् शृणयुः)

थोस्समि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणो।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥

लोयसुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चोवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

उसहमजियं च वन्दे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपाशं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥३॥

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयलसेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वन्दामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चोवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

कित्तिय वन्दिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहि णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहि यं पयासंता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

गणधरवलय

जिनान् जितारातिगणान् गरिष्ठान्
देशावधीन् सर्वपरावधींश्च ।
सत्कोष्ठबीजादिपदानुसारीन्
स्तुवे गणेशानपि तदगुणाप्त्यै ॥१॥

संभिन्नश्रोत्रान्वितसन्मुनींद्रान्
प्रत्येकसम्बोधितबुद्धधर्मान् ।
स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥२॥

द्विधा मनःपर्ययचित्प्रयुक्तान्
द्विपंचसप्तद्वयपूर्वसक्तान् ।
अष्टाङ्गनैमित्तिकशास्त्रदक्षान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥३॥

विकुर्वणाख्यर्द्धिमहाप्रभावान्
विद्याधरांश्चारणर्द्धिप्राप्तान् ।
प्रज्ञाश्रितान्नित्यखगामिनश्च
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥४॥

आशीर्विषान् दृष्टिविषान्मुनीन्द्रा-
नुग्रातिदीप्तोत्तमतप्ततत्पान् ।

महातिघोरप्रतपः प्रसक्तान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥५॥

वंद्यान् सुरैर्घोरगुणांश्च लोके
पूज्यान् बुधैर्घोरपराक्रमांश्च ।
घोरादिसंसद्गुणब्रह्मयुक्तान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥६॥

आमर्द्धिखेलर्द्धि प्रजल्लविट्प्र
सर्वर्द्धिप्राप्तांश्च व्यथादिहंतृन् ।
मनोवचः कायबलोपयुक्तान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥७॥

सत्क्षीरसर्पिर्मधुरामृतर्द्धीन्
यतीन वराक्षीणमहानसांश्च ।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्प्रपूज्यान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥८॥

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्
श्रीवर्द्धमानर्स्थिविबुद्धिदक्षान् ।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरानृषींद्रान्
स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥९॥

नृसुरखचरसेव्या विश्वश्रेष्ठर्द्धिभूषा ।
विविधगुणसमुद्रा मारमातङ्गसिंहाः

भवजलनिधिपोता वन्दिता मे दिशन्तु
मुनिगणसकलान् श्रीसिद्धिदाः सदृषींद्रान् ॥१०॥

नित्यं यो गणभृन्मंत्र विशुद्ध सन् जपत्यमुम ।
आश्रवस्तस्य पुण्यानां निर्जरा पाप कर्मणाम् ॥
नश्याद्रुपद्रवकशिचद् व्याधिभूत विषादिभिः ।
सद्सत् वीक्षणे स्वप्ने समाधिश्च भवेन्मृतो ॥

प्रतिक्रमणदण्डकं

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं णमो संभिण्णसोदारणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो

उग्गतवाणं, णमो दित्त तवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं णमो घोरगुणाणं, णमो घोरपरक्कमाणं, णमो घोरगुणबंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहिपत्ताणं, णमो सव्व, सहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदिमहावीर-वड्ढमाणबुद्धरिसीणो चेदि।

जस्संतियं धम्मपहं णियंच्छे
तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसावि
णिच्चं सक्कारए तं सिरपंचमेण ॥१॥

सुदं मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण भयवदो महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोगदरिसिणा सदेवासुरमाणुस्स लोयस्स आगदिगदिचवणोववादं बन्धं मोक्खं इड्ढि ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणोमाणसिंयं भूतं कयं पडिसेवियं अदिकम्मं अरुहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे

सव्वभावेसव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण समणाणं पंचमहव्वदाणि राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउगपदाणि सउत्तरपदाणि सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि। तं जहा-

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, तिदिए महव्वदे अदिण्णदाणादो वेरमणं चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, छठ्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं चेदि।

तत्थ पढमे महव्वदे सव्वं भन्ते ! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइन्दिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढविकाइए वा, आउकाइए वा, तेउकाइए वा, वाउकाइए वा, वणप्फदिकाइए वा, तसकाइए वा, अण्डाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, संसेदिमे वा, सम्मुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, बादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जत्ते वा, अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज

अण्णेहिं पाणे अदिवांदिज्जंतो वि ण समणुमणिज्ज तस्स भन्ते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विंचणं भन्ते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं पाणे अदिवादिदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं पि इमस्स, णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स, चउरासीदिगुण-सयसहस्सविहूसियस्स, णवबंभचेरगुत्तस्स, णियदिल-क्खणस्स, परिचायफलस्स, उवसमपहाणस्स, खंतिमग्गदेसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धिमग्ग-पज्जवसाहणस्स, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, अण्णाणेण वा, अदंसणेण वा, अविरिएण वा, असंयमेण वा, असमणेण वा, अणहिगमणेण वा, अभिमंसिदाएण वा, अवोहिदाएण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण विकारणेण वा, जादेण वा, आलसदाए, कम्मभारिगदाए, बालिसदाय, कम्मगुरुगदाए, कम्मदुच्चरिदाए, कम्मपुरुक्कडदाए,

तिगारवगुरुगदाए, अबहुसुददाए, अविदिदपरमट्ठदाए, तं सव्वं, पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि । आगमेसिंच, अपच्चक्खियं, पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, निराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुठ्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुठ्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि, सम्मदंसणं अब्भुठ्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि, सुचरियं अब्भुठ्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि, सुतवं अब्भुठ्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि, करणिज्जं अब्भुठ्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि, किरियं अब्भुठ्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि, अभयदाणं अब्भुठ्ठेमि, मोसं वोस्सरामि, सच्चं अब्भुठ्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि, दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुठ्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि, बंभचरियं अब्भुद्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि, अपरिग्गहं अब्भुद्ठेमि, राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुठ्ठेमि, अट्टरूद्दज्झाणं वोस्सरामि, धम्मसुक्कज्झाणं अबुट्ठेमि, किण्हणिलकाउलेस्सं वोस्सरामि, तेउपम्मसुक्कलेस्सं अबुट्ठेमि, आरम्भं वोस्सराामि, अणारम्भं अब्भुद्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि, संजमं अब्भुठ्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि, णिग्गंथं अब्भुठ्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि,

अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि, लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि, अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि, खिदिसयणं अब्भुट्ठेसि, दंतवणं वोस्सरामि, अदंतवणं अब्भुठेठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि, ठिदिभोयणमेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि, पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि, खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि, मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि, अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि, संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि, दुवालसविहतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि, सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि, णिस्सल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि, विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि, आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि, जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि, खंति उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्झामि, अमुत्तिं परिवज्झामि, सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्झामि, सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिपज्जामि, णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि, भावियं ण भावेमि,

इमं णिग्गंथं पव्वयणं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंत्ति मग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमंग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं, जत्थ ठिया जीवा, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाणयंति, सव्व दुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदो उत्तर अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, सीलेण वा, गुणेण वा, तवेण वा, णियमेण वा, वदेण वा, विहारेण वा, आलएण वा, अज्जवेण वा, लाहवेण वा, अण्णेण वा, वीरिएण वा, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मूरण-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चाउम्मासिय-संवच्छरिय-इरियावहि केसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, उवट्ठावणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे,

महाजसे, महापुरिसाणुचिन्ने, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं, सुव्वदं, दढव्वदं होदुं, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु । प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारुढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, ण मो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आहावरे विदिए महव्वदे सव्वं भंते ! मुसावादं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेणं वा, अणादरेण वा, केणवि कारणेण जादेण वा, णेव सयं मोसं भासिज्जंतं पि ण समणुमणिज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि

पुविंचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं मोसं भासियं, अण्णेहिं मोसं भासावियं, अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं पि ।

समणुमण्णिदं इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारससीलसहस्सपरि-मंडियस्स, चउरासीदिगुणसय-सहस्सविहूसियस्स, णवसुबंभचेर-गुत्तस्स, णियदिलक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसमपहाणस्स, खंतिमग्गदेसयस्स, मुत्तिंमग्ग पयासयस्स, सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स .... सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचरित्तं च, रोचेमि जं जिणवरेहिं-पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय इरियावहि केसलोचाइचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वातिचारस्स, उत्तमट्ठस्स, सम्मचरित्तं च रोचेमि, बिदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, उवट्ठाणमंडले महत्थे महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमट्ठम्मि इदं मे महव्वदं, सुव्वदं दढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ।।३।।

द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्य क्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरियांण,
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आधावरे तदिये महव्वदे सव्वं भंते ! अदत्तादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण, मणसा वचिया काएण, से देसे वा, गामे वा, णगरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मडंवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसणे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं वा, कठ्ठं वा, वियडिं वा, मणिं वा, खेत्ते वा, खले वा, जले वा, थले वा, पहे वा, उप्पहे वा, रण्णे वा, अरण्णे वा, णठ्ठं वा, पडिदं वा, अपडिदं वा, सुणिहिदं वा, दुण्णिहिदं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुयं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, मज्झत्थं वा, बहित्थं वा, अवि दंतंतरसोहणमित्तं पि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्जं णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्जं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि ण समणुमणिज्झ, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं बोस्सरामि

पुव्विंचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं अदत्तं गेण्हिदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जत्तं पि समणुमण्णिदो, तं पि,

इसस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिठ्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमाबलस्स, अठ्ठारससीलसहस्स, परिमंडियस्स, चउरासीदिगुणसयसहस्स, विहूसियस्स, ण-वसुबंभ चेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स, परिचागफलस्स, उवसमपहाणस्स, खंतिमग्गदेयस्स, मुत्तिमग्ग पयास, यस्स, सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स .... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसियराइय-(पक्खिय चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहिकेस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वाइचारस्स, उत्तमठ्ठस्स सम्मचरित्तं रोचेमि । तदिए महव्वदे अदत्तादाणादो वेरमणं, उवठ्ठावणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणुचिण्णे, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमठ्ठाम्हि, इदं मे महव्वदं, सुव्वदं, दढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ॥३॥

तृतीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं

दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आधावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते ! अबंभं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, कठ्ठकम्मेसु वा, चित्तकम्मेसु वा, पोत्तकम्मेसु वा, लेप्पकम्मेसु वा, लयकम्मेसु वा, सिल्लाकम्मेसु वा, गिहकम्मेसु वा, भित्तिकम्मेसु वा, भेदकम्मेसु वा, भंडकम्मेसु वा, धादुकम्मेसु वा, दंतकम्मेसु वा, हत्थसंघट्टणदाए, पादसंघट्टणदाए, पुग्गलसंघट्टणदाए, मणुणामणुणेसु, सद्देसु, मणुणामणुणेसु रूवेसु, मणुणामणुणेसु गंधेसु, मणुणामणुणेसु रसेसु, मणु णामणुणेसु फासेसु, सोइंदियपरिणामे, चक्खिंदियपरिणामे, घाणिंदिय परिणामे, जिब्भिंदियपरिणामे, फासिंदियिपरिणामे, णोइंदियपरिणामे, अगुत्तेण, अगुत्तिंदिएण, णेव सयं अबंभं सेविज्ज, णो अण्णेहिं अबंभं सेवाविज्ज, णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि, समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोमस्सरामि पुव्विंचणं भंते ! जंपि मए रागस्स वा,

दोसस्स वा, वसंगदेण सयं अबंभं सेवियं, अण्णेहिं अबंभं सेवावियं, अमण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि समणुमण्णिदं तं पि

इमस्स णिग्गंथत्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स, अहिंसा लक्खणस्स, सच्चाहिठ्ठियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अठ्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स, चउरासीदिगुणसय-सहस्स, विहूसियस्स, णवसुबंभचेरगुत्तस्स, णियदिलक्खणस्स, परिचागफलस्स, उवसमपहाणस्स, खंतिमग्गदेसयस्स, मुत्तिमग्ग पयासयस्स, सिद्धिमग्ग-पज्जवसाहणस्स...... सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय राइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय-इरियावहि-केस लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादिचारस्स, उतच्मठ्ठस्स, सम्मचरित्तं च रोचेमि। चउत्थे महव्वदे अबंभादो वेरमणं, उवठ्ठावणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणु भावे, महाजसे, महापुरिसाणुचिण्णे, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमठ्ठम्हि। इदं मे, महव्वदं, सुव्वदं,

दिढव्वदं होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु ॥३॥

चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आधावरे पंचमे महव्वदे सव्वं भंते ! दुविहं परिग्गहं पच्चक्खामि तिविहेण मणसा वचिया काएग । सो परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि । तत्थ अब्भंतरं परिग्गहं

मिच्छत्तवेयराया तहेव हस्सादियाय छद्दोसा ।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा ॥१॥

तत्थ बाहिरं परिग्गहं, से हिरण्णं वा, सुव्वणं वा, धणं वा, खेत्तं वा, खलं वा, वत्थुं वा, पवत्थुं वा, कोसं वा, कुठारं वा, पुरं वा, अंतउरं वा, बलं वा, वाहणं वा, सयडं वा, जाणं वा, जपाणं वा, जुगं वा, गद्दियं वा, रहं वा, सदणं वा, सिवियं वा, दासीदासगोमहिसिगवे डयं, मणिमोत्तियसंखसिप्पिपवालयं, मणिभाजणं वा, सुवण्णभाजणं वा, रजतभाजणं वा, कंसभाजणं वा,

लोहभाजणं वा, तंबभाजणं वा, अंडजं वा, बोंडजं वा, रोमजं वा, वक्कजं वा, वम्मजं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, अमुत्थं वा, वहित्थं वा, अवि वालग्गकोडिमित्तंपि णेव सयं असमणपाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्ज, णो अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिहग्गहं गेण्डाविज्ज, णो अण्णेहिं असमणपउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जंतं, पि, समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि,

पुव्विंचण भंते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं असमणपाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जं, अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिग्गहं गेण्हावियं, अण्णेहिं असमणपउग्गं परिग्गहं गेण्हिज्जंतं पि समणु मण्णिदं, तं पि इमस्स, णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स, अहिंसालक्खधस्स, सच्चहिट्ठियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स, चउरासीदिगुणसय-सहस्स, विहूसियस्स, णवसुबंभचेरगुत्तस्स, णियदिलक्खणस्स, परिचाग फलस्स, उवसमपहाणस्स, खंतिमग्गदेसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स

.... सम्मणाण, सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-(चउमासिय)-(संवच्छरिय)इरिया वहि-केसलोचाइचारस्स, संथाराइचारस्स, पंथाइचारस्स, सव्वाइचारस्स, उत्तमट्ठस्स, सम्मचरित्तं च रोचेमि। पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजस्से, महापुरिसाणुचिण्णे, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं, सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावी ते मे भवतु ॥३॥

पंचमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो, अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो, आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आधावरे छट्ठे अणुव्वदे सव भंते ! राईभोयणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण, मणसा, वचिया काएण, से असणं वा, पाणं वा, खादियं वा, सादियं वा, कडुयं वा, कसायं वा, आमिलं वा, महुरं वा, लवणं वा,

अलवणं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, तं सव्वं चउव्विहं आहारं, णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंज्जाविज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि, पुव्विंचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण चउव्विहो आहारो, सयं रत्तिं भुत्तो, अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविदो, अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतो वि समणु मण्णिदो, तं पि इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स, चउरासीदिगुण सयसहस्स, विहुसियस्स, णवसुबंभचेरगुत्तस्स, णियदिलक्खणस्स, परिचागफलस्स, उवसम पहाणस्स, खंतिमग्गदेसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धमग्गपज्जव-साहणस्स ..... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय-इरियावहिके सलोचा इचारस्स, संस्थारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वाइचारस, उत्तमट्ठस्स, सम्मचरित्तं च रोचेमि, छट्ठे

अणुव्वदे राईभोयणादो वेरमणं, उवट्ठावणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणुचिण्णे, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमठ्ठम्हि, इदं मे अणुव्वदं, सुव्वदं, दिढव्वदं, होदु णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु ॥३॥

षष्ठं अण ुव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं, णमो स्दिधाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

चूलिका

चूलियन्तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणु ण्णादा एक्केक्कह्मि महव्वदे ॥१॥

अहिंसा महाव्रत की भावनाएँ

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया-कायसंयदो।
एसणासमिदिसंजुत्तो पढमं वदमस्सिदो ॥२॥

सत्य महाव्रत की भावनाएँ

अकोहणो अलोहो य भयहस्सविवज्जिदो।
अणु वीचिभासकुसलो विदियं वदमस्सिदो ।।३।।

अचौर्य महाव्रत की भावनाएँ

अदेहणं भावणं चावि उग्गहं य परिग्गहे।
संतुष्ठो भत्तपाणेसु तिदियं वदमस्सिदो ।।४।।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावनाएँ

इत्थिकहा इत्थिसंसग्गहासखेडपलोयणे।
णियमम्मि ठ्ठिदो णियत्तो य चउत्थं वदमस्सिदो ।।५।।

अपरिग्रह महाव्रत की भावनाएँ

सचित्ताचित्तदव्वेसु बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो पंचमं वदमस्सिदो ।।६।।

उत्तम व्रत का स्वामि

धिदिमन्तो खमाजुत्तो झाणजोगपरिठ्ठिदो।
परीसहाणउरं देंत्तो उत्तमं वदमस्सिदो ।।७।।

ध्यान की सार्थकता

जो सारो सव्वसारेसु सो सारो एस गोयम !
सारं झाणंति णामेण सव्वं बुद्धेहिं देसिदं ॥८॥

इच्चेदाणि पंचमहव्वदाणि, राईभोयणादो वेरमणं-छट्ठाणि सभावणाणि, समाउग्गपदाणि, सउत्तरदपाणि, सम्मं, धम्मं, अणुपालइत्ता, समणा, भयवंता, णिग्गंथाहोऊण सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति परिविज्जाणंति। तं जहा-

पाणादिवादं चहि मोसंग च, अदत्तमेहुणपरिग्गहं च।
वदाणि सम्मं अणुपालइत्ता, णिव्वाण मग्गं विरदा उवेंति॥१॥

निःशल्यता का उपदेश

जाणि काणि विसल्लाणि, गरहिदाणि जिणसासणे।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता, णिसल्लो विहरदे सया मुणी॥२॥

माया त्याग का उपदेश

उप्पण्णाणुप्पण्णा, माया अणुपुव्वं णिहंतव्वा।
आलोयण पडिकमणं णिंदणगरहणदाए॥३॥

द्रव्य भाव प्रतिक्रमण

अब्भुठ्ठिदेकरणदाए, अब्भुट्ठिदेदुक्कड़णिराकरणदाए।
भवं भावपडिक्कमणं, सेसा पुण दव्वदो भणिदा।।४।।

प्रतिक्रमण विधि सब तीर्थंकरों के द्वारा कथित है

एसो पडिकमणविही, पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजमतवट्ठिदाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं।।५।।

क्षमा एवं फल की याचना

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं भवे एत्थ।
तं खमउ णाणदेवय ! देउ समाहिं च बोहिं च।।६।।

पंच परमेष्ठियों को नमस्कार

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तदेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं लोयम्मि य सव्वसाहूणं।।७।।

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स मूलपदाणंउत्तरपदाणमच्चासणदाए । तं जहा-

पदादि की अवहेलना सम्बंधि प्रतिक्रमण

णमोक्कारपदे, अरहंतपदे, सिद्धपदे, आयरियदे,

उवज्झाय पदे, साहुपदे, मंगलपदे, लोगोत्तमपदे, सरणपदे, सामाइयपदे, चउवीसतित्थयरपदे, वंदणपदे, पडिक्कमणपदे, पच्चक्खाणपदे, काउसग्गपदे, असीहियपदे, निसीहियपदे, अंगंगेसु, पुव्वंगेसु, पइण्णएसु, पाहुडेसु, पाहुडपाहुडेसु, कदकम्मेसु वा, भूदकम्मेसु वा, णाणस्स अइक्कमणदाए, दंसणस्स अधिक्कमणदाए, चरित्तस्स अइक्कमदाए, तवस्स अइक्कमणदाए, वीरियस्स अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा, पदहीणं वा, सरहीणं वा, वंजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गन्थहीणं वा, थएसु वा, थुईसुवा, अट्टक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्वारेसु वा, जे भावा पण्णत्ता, अरहंतेहिं, भयवंतेहिं, तित्थयरेहिं, आदियरेहिं, तिलोगणाहेहिं, तिलोगबुद्धेहिं, तिलोगदरसीहिं, ते सद्दहामि, ते पत्तियामि, ते रोचेमि, ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स, ते पत्तयन्तस्स, ते रोचयन्तस्स, ते फासयंतस्स, जो मए देवसिओ, राईओ, पक्खिओ, संवच्छरिओ, अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, अकाले, सज्झाओ, कओ, काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहापडिच्छदं, आवसएसु पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अह पडिवदाए, विदिए, तदिए, चउत्थीए, पंचमीए, छट्ठीए, सत्तमीए, अट्ठमीए, णवमीए, दसमीए, एयारसीए, बारसीए, तेरसीए, चउद्दसीए, पुण्णमासीए, पण्णरसदिवसाणं, पण्णरसराईणं, चउण्हं, मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तरसयदिवसाणं, बीसुत्तरसयराईणं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं, तिण्हं छावट्ठिसयराईणं, पंचवरिसादो, परदो, अब्भिंतरदो वा, दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थ संकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं दणअडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गुत्तीणं, तिण्हं सल्लाणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं कसायाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं इन्दियाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, छण्हं आवासयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, अट्ठण्हं मयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, दसविहमुण्डाणं, दसविहसमण धम्माणं, दसविह धम्मज्झाणाणं, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं किरियाणं, चउदसण्हं पुव्वाण्हं, पण्णारसण्हं

पमायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, पणवीसाए किरियासु, पणवीसाए भावणासु, बावीसाए परीसहेसु, उट्ठारस सीलसहस्सेसु, चउरासी दिगुणसयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अदिक्कम्मो, वदिक्कम्मो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते ! अइचारं, पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि, ताव कायं, पावकम्मं, दुच्चरियं वोस्सरामि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

श्रावके के १२ व्रतों के अंतर्गत पांच अणुव्रतों का वर्णन है

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण, भयवदा, महदि, महावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हणाणेण, सव्वलोयदरसिणा, सावयाणं, सावियाणं, खुड्डयाणं, खुड्डीयाणं, कारणेण, पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि, बारसविहं, गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि, तत्थ इमाणि, पंचाणुव्वदाणि, पढमे अणुव्वदे, थूलयडे, पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए

अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे, थूलयडे अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे, थूलयडे सदारसंतोसपरदारागमणवेरमणं, कस्स य, पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकदपरिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तीन गुणव्रतोंका वर्णन

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविधअणत्थदण्डादो वेरमणं, तदिये गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

चार शिक्षाव्रतों का वर्णन

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहोवासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि चेदि।

से अभिमदजीवाजीव-उवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवर-णिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले,

धम्माणुरायरत्तो, पिमा णुरायरत्तो, अठिमज्जा णुरायरत्तो, मुच्छिदट्ठे, विहिदट्ठे, गिहिदट्ठे, पालिदट्ठे, सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथपवयणे, अणुत्तरे, सेअट्ठे, सेवणुट्ठे।

सम्यक्त्व के आठ अंगो के नाम

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य। उवगूहणट्ठिदिकरणं वच्छल्लपहावणा य ते अट्ठ ॥१॥

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि, बारसविहं गिहत्थधम्म-मणुपालइत्ता

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्तेय बंभारंभपरिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठ-देशविरदो य ॥१॥

श्रावक धर्म

महुमंसमज्जजूआ वेसादिविवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वयजुत्तो सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो ॥२॥

श्रावक व्रत निर्दोष पालनेका फल

जो एदाइं वदाइं, धरेइ, सावया सवियाओ वा,

खुड्डयखुड्डियाओ वा, दहअट्ठपंचभवणवासियवाण विंतरजोइसिय, सोहम्मीसाण-देवीओवदिक्कमित्तउ वरिमअण्णदरमहड्ढियासु देवेंसु उववज्जंति।

तं जहा-सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबंभबं भुत्तरलां-तवकापिट्ठसुक्कमहासुक्क सतारसहस्सार आणतपाणतआरण अच्चुतकप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबरसत्थधरा कडयंगदबद्धनउडकयसोहा।
भासुरवरबोधिधरा देवा य महड्ढिया होंति॥१॥

समाधिमरण का फल

उक्कस्सेण दोतिण्णिभवगहणाणि, जहण्णे सत्तट्ठभवगहणाणि, तदो सुमणुसुत्तादो, सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं, तदो साइहत्था, पच्छा णिग्गंथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोकारं करेमि, पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

वद-समि-दिंदिय रोधो लोचोवासाय मचेल मण्हाणं।
खिदिसयण मदंतवणं ठिदि-ड्भोयण-मेयं भत्तं च॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।

एत्थ पमाद-कदादों अइचारादो णियत्तोहं ॥२॥ छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

(अनंतरं साधवः "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकं पठित्वा सूरिणा सहिताः "वदसमिदिदिंरोधो" इत्यादिकं चाधीत्व वीरस्तुतिं कुर्युः)

वीरभक्तिः

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचा-र्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्हम्-

इत्युच्चार्य, ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं यथोक्तानुच्छ्वासान् ३०० कृत्वा ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकं पठित्वा ''चंद्रप्रभं चंद्रमरी-चिगौरं'' इत्यादि स्वयंभुवं ''यः सर्वाणि चराचराणि'' इत्यादि वीरभक्तिं साचलिकां पठित्वा ''वदसमिदिंदियरोधो'' इत्यादिकं पठेयुः । तद्यथा-

चंद्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कांतम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥१॥

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च, ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता, वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुतकर्मतऽजाः ।
अनंतधामाक्षरविश्वचक्षुः, समस्तदुःखक्षयशासनश्च ॥४॥

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां, विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याक्केशवाङ्न्यायमयूखमालः, पूयात्पवित्रोभगवान्मनोमे॥५॥

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः ॥१॥

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधा संश्रिता।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो।
वीरश्री-द्युति-कांति-कीर्ति-धृतयो, हेवीर! भद्रंत्वयि॥२॥

येवीरमादौ प्रणमंति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवंति लोके, संसारवार्दि विषमं तरंति॥३॥

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगन्धिः सत्तपश्चित्र-पत्रः ॥४॥

शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाय-यौद्घः,
शुभजन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरित-रविज-तापं प्रापयन्नंतभावं,
स भवविभवहान्यैनोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥५॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय ॥६॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म ! मां पालय ॥७॥

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु, यम-नियम संजमशील मूलुत्तरगुणेसु, सव्वमईचारं, सावज्जजोगं पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोग-अज्झवसाणठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णाणिंदिय-कसाय-गारव-किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहाणि, परिचिंतियाणि, किण्हणील-काउ-लेस्साओ, विकहापलिकुंचिएण- उम्मगह-स्सरदि-अरदि-सोय-भयदुगंछ-वेयण-विज्जंभ-जंभाई-आणि, अट्टरुद्द-संकिलेसपरिणामाणि, परिणामिदाणि, अणिहुदकरच-रण-मण-वयण-का-

यकरणेण, अक्खित्त-बहुल-यरायणेण, अपडिपुण्णेण वा, सक्खरावय, परिसंघायपडिवत्तिएण, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहापडिच्छदं आवसएसु परिहीणदाए कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइयारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ **सर्वातिचारविशुद्धयर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक), प्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण-सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्द-नास्तवसमेतं शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्हम्।**

इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य "थोस्सामि" इत्यादि दंडकमधीत्य शांतिकीर्तनां "विधाय रक्षां" इत्यादिकां चतुर्विंशतिकीर्तनां च "चउवीसं तित्थयरे" इत्यादिकां सांचलिकां "वदसमिदिंदियरोधो" इत्यादिकं च ससूरयः संयताः पठेयुः। तद्यथा-

शांतिचतुर्विंशति स्तुतिः

(शांति स्तुतिः)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शांति, र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशांतिम् ।।१।।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण, जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ।।२।।

राजश्रिया राजसु राजसिंहो, रराज यो राजसुभोगतंत्रः ।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो, देवासुरोदारसभे रराज ।।३।।

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं,
मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलिदेवचक्रं,
ध्यानोन्मुखे ध्वंसिकृतान्तचक्रम् ।।४।।

स्वदोषशान्त्याविहितात्मशान्तिः,
शांतेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशांत्यै,
शांतिर्जिनो मे भगवाञ्छरण्यः ।।५।।

(चतुर्विंशतिस्तुतिः)

चउवीसं तित्थयरे, उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वेसिं गुणगणहरे, सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।१।।

ये लोकेऽष्टसहस्र-लक्षण-धरा, ज्ञेयार्ण-वान्तर्गता।
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
ये साध्विंन्द्र-सुराप्सरो-गणश, तैर्गीत-प्रणुत्यार्चिताः।
तान्देवान् वृषभादिवीरचरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम्॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं, सर्वलोकप्रदीपं।
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं, मुनिगणवृषभं, नंदनं देवदेवम्।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं, पद्मपुष्पाभिगन्धं।
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं, चन्द्रनामानमीडे॥३॥

विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं, शीतलं लोकनाथं।
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यं।
मुक्तं दांतेद्रियाश्वं विमलमृषिपतिं, सिंहसैन्यं मुनींद्रं।
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं, स्तौमि शांतिं शरण्यम्॥४॥

कुंथुं सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं।
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं, सुव्रतं सौख्यराशिम्।
देवेंद्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं, नेमिचन्द्रं भवान्तं।
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो, वर्धमानं च भक्त्या॥५॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महा-कल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडि-हेरसहिदाणं,

चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणि-मय-मउढ-मत्थयमहिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसिमुणि-जइ-अणगारो वगूढाणं, थुइ-सय-सहस्सणिलयाणं, उसहाइवीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो अवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

सर्वातिचारविशुध्दच्यर्थं चारित्रालोचनाचार्य-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

अत्रापि "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं विधाय अनंतरं साधवः "थोस्सामि" इत्यादि दंण्डकं पठेत्ः

बृहदाचार्यभक्तिः

(चारित्रालोचनासहिता)

सिद्धगुणस्तुतिनिरता, नुद्धतरुषाग्निजालबहुलविशेषान्।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णा, न्मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान्॥१॥

मुनिमाहात्म्यविशेषान्, जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान्॥२॥

गुणमणिविरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातृन्सततम्।
रहितप्रमादचर्या, न्दर्शन्शुद्धान् गणस्य संतुष्टिकरान्॥३॥

मोहच्छिदुग्रतपसः, प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान्।
प्रासुकनिलयाननघा, नाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान्॥४॥

धारितविलसन्मुडा, न्वर्जितबहुदण्डपिंडमंडलनिकरान्।
सकलपरीषहजयिनः, क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान्॥५॥

अचलान् व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान्।
विधिनानाश्रितवासा, नलिप्तदेहान्विनिर्जितेंद्रियकरिणः॥६॥

अतुलानुत्कुटिकासा, न्विविक्तचित्तानखंडितस्वाध्यायान्।
दक्षिणभावसमग्रान्, व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान्॥७॥

भिन्नार्तरौद्रपक्षान्, संभावितधर्मशुक्लनिर्मलहृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्, पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान्॥८॥

तरुमूलयोगयुक्ता, नवकाशातापयोगरागसनाथान्।
बहुजनहितकरचर्या, नभयाननधान्महानुभावविधानान्॥९॥

ईदृशगुणसंपन्ना, न्युष्मान् भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारतामग्रयान्, मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा॥१०॥

अभिनौमि सकलकलुष, प्रभवोदयजन्मजरामरणबंधनमुक्तान्।
शिवमचलमनघमक्षय, मव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम्॥११॥

लघुचारित्रालोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो, परिहाविदो पंचमहव्वदाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणफ्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि-किमी-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख रिट्ठ-वाल-संबुक्क-

सिप्पि-पुलविकाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसम-सयमक्खिपयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया-पोदाइया-जराइया-रसाइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अविचउरासीदिजोणिप मुहसदसहस्सेसु, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामि भन्ते ! आइरियभत्ति काउसग्गो कओ

तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त जुत्ताणं पंचविहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादिसुद-णाणोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालण-रयाणं, सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

मध्याचार्यभक्तिः

(बृहदालोचनासहिता)

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादि दंडकमधीत्य "देसकुल जाइसुद्धा" इत्यादिकां मध्याचार्यनुतिं "इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि"

"आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं" इत्यादि बृहदालोचनां च ससूरयः साधवः पठेयुः ।)

देसकुलजाइसुद्धा, विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह, मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥१॥

सगपरसमयविदण्हुं, आगमहेदूहिं चाविजाणित्ता।
सुसमत्था जिणवयणे, विणये सत्ताणुरूवेण ॥२॥

बालगुरुबुड्ढसेहे, गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता।
वट्टावयगा अण्णे, दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥३॥

वयसमिदिगुत्तिजुत्ता, मुत्तिपहे ट्ठाविया पुणो अण्णे।
अज्झावयगुणणिलये, साहुगुणेणावि संजुत्ता ॥४॥

उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छ जलसरिसा।
कम्मिंधणदहणा दो, अणगी वाऊ असंगादो ॥५॥

गयणमिवणिरुवलेवा, अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुणणिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो ॥६॥

संसारकाणणे पुण, बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं।
णिव्वाणस्स हु मग्गो, लद्धो तुम्हं पसाएण ॥७॥

अविशुद्धलेस्सरहिया, विशुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुद्दट्टे पुण चत्ता, धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥८॥

उग्गहईहावाया, धारणगुणसंपदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थभावणाए, भावियमाणेहिं वंदामि ॥९॥

तुम्हं गुणगणसंथुदि, अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥१०॥

बृहदालोचना

(इच्छामि भन्ते ! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्णं दिवसाणं पण्णरसण्हं राईणं अब्भंतरदो पंचबिहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चारित्तायारो चेदि।)

(इच्छामि भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं अठ्ठण्हं पक्खाण्हं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।)

(इच्छामि भंते ! संवच्छरिय आलोचेउं, वारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्णिछावट्टिसयदिवसाणं तिण्णिछावट्ठिसयराईणं अब्भंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।)

तत्थ णाणायारो अट्ठविहो काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव अणिण्हवणे, वंजण अत्थ तदुभये चेदि, तत्थ णाणायारो अठ्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, वंजणहीणं वा, पदहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुएसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले सज्झाओ कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो काले वा, परिहाविदो, अत्थाकारिदं वा, मिच्छामेलिदं वा, आमेलिदं वा, वामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहापडिच्छदं आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

दंसणायारो अठ्ठविहो-णिस्संकिय णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछा अमूढदिठ्ठीय। उवगूहण ठिदिकरणं, वच्छलं पहावणा चेदि ॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो, परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्णदिठ्ठिपसंसणदाए, परपाखंड पसंसणदाए, अणायदणसेवणाए, अवच्छल्लदाए, अप्पहावणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तवायारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो, बाहिरो छव्विहो चेदि। तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं,

वित्तिपरिसंखा, रसपरिच्चाओ, सरीरपरिच्चाओ, विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं, विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं, बाहिरं, बारसविहं तवोकम्मं, ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण, जहुत्तमाणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण, णिगूहियं तवोकम्मं, ण कयं, णिसण्णेण पढिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तिओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, वीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि-किम्मि-संखखुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ-गंडवाल-संवुक्क-सिप्पिपुलविकाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघातो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु मण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद, गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिदिंया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-पयंग-कीडभमर-गोमच्छिया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिदिंया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया-पोदाइया-जराइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अवि चउरासी-दिजोणी-पमुहसद-सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा,

समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो अवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो, अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

क्षुल्लकाचार्यभक्तिः-

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं विधाय "प्राज्ञः प्राप्यसमस्तशास्त्रहृदयः" इत्यादिकां श्रुतजलधीत्यादि मोक्षमार्गोपदेशका" इत्येवमन्तकां ससूरयः संयता; पठेयुः)

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः, प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान्, प्रागेव दृष्टोत्तरः॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिंदया।
ब्रूयाद्धर्मकथां, गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिटाक्षरः ॥१॥

श्रुतमविकलं, शुद्धा वृत्तिः, परप्रतिबोधने
परिणतिरुरुद्योगो, मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।

बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता, मृदुक्कास्पृहा,
यतिपतिगुणा, यस्मिन्नन्ये च, सोऽस्तु गुरुः सताम् ।।२।।

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतवि भावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ।।३।।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिए सदा वंदे ।।४।।

गुरुभत्तिसंजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति ।।५।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः,
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः, साधुक्रिया साधवः।
शीलप्रावरणाः गुणप्रहरणा, श्चंद्रार्कतेजोधिकाः,
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ।।६।।

आलोचना

इच्छामि भंते । आइरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, पंचविहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयणगुण-पालणरयाणं, सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि,

दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचो आवासयमचेलण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमादकदादो, अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं कृत्वा "शास्त्राभ्यासो जिनपति" इत्यादिष्टप्रार्थनां ससूरयः साधवः पठेयुः)

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्वसमेतं श्री सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठितक-रणवीर-शांतिचतु-र्विंशतितीर्थंकर-चारित्रालोचनाचार्य बृहदालोचना-चार्य क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वा-दिदोषविशुद्धयर्थं मम आत्मपवि त्रिकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

समाधिभक्तिः

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेंद्र! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥२॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमहु णाणदेव! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ॥३॥

आलोचना

इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खण-समाहिभत्तीए सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, सम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति, होउ मज्झं।

ततः (समाधिभक्तेरनन्तरं) सिद्धश्रुताचार्यभक्तिभिः (पूर्वोक्ताभिः) आचार्यसाधवो वन्देरन।

॥इति ॥

श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्राचार्यविरचित

रत्नकरण्ड-श्रावकाचारः

(अथ प्रथमोऽध्यायः)

मंगलाचरण

नमः श्री वर्द्धमानाय, निर्द्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

धर्मोपदेश प्रतिज्ञा

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्मनिबर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

धर्म का लक्षण

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय प्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥

सम्यग्दर्शन का लक्षण

श्रद्धानं परमार्थाना, माप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

सच्चे आप्त (देव) का लक्षण

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

वीतरागी आप्त (देव) का लक्षण

क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक भयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥६॥

आप्त (देव) के विभिन्न नाम

परमेष्ठी परंज्योति, र्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः, सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

वीतराग देव के द्वारा बिना इच्छा के उपदेश देना

अनात्मार्थं विना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शा, न्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

सत्यार्थ शास्त्र या आगम का लक्षण

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्य, मदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृत्सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥

सत्यार्थ गुरू का लक्षण

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्त, स्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥१०॥

सम्यग्दर्शन के आठ अंग (सम्यक्त्वस्याष्टाङ्गानि)

निःशंकित अंग (गुण) का लक्षण

इदमेवेदृशमेव, तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोव, त्सन्मार्गेऽसंशया रुचि ॥११॥

निःकाँक्षित अंग का लक्षण

कर्मपरवशे सान्ते, दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ।।१२।।

निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीति, र्मता निर्विचिकित्सिता ।।१३।।

अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

कापथे पथि दुःखानां, कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्ति, रमूढ़ा-दृष्टिरुच्यते ।।१४।।

उपगूहन अंग का लक्षण

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य, बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति, तद्वदन्त्युपगूहनम् ।।१५।।

स्थितीकरण गुण का लक्षण

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः, स्थितिकरणमुच्यते ।।१६।।

वात्सल्य गुण का लक्षण

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव, सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलप्यते ।।१७।।

प्रभावना गुण का लक्षण

अज्ञानतिमिर-व्याप्ति, मपाकृत्य यथायथम्,
जिनशासनमाहात्म्य,- प्रकाशः स्यात्प्रभावना ।।१८।।

आठ गुणों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम

तावदञ्जन-चौरोङ्गे, ततोऽनन्तमती स्मृता ।
उद्दायन-स्तृतीयेऽपि, तुरीये रेवती मता ।।१९।।

ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो, वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च, शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ।।२०।।

अंग सहित सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं, दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनाम् ।।२१।।

लोकमूढ़ता

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च, लोकमूढं निगद्यते ।।२२।।

गुरुमूढ़ता

वरोपलिप्सयाशावान्, रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते ।।२३।।

सग्रन्थारम्भहिंसानां, संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो, ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ।।२४।।

आठ मद

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मयाः ।।२५।।

मद करने के दोष

स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ।।२६।।

धार्मिक पुरूषों का तिरस्कार उचित नहीं

यदि पापनिरोधोऽन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम् ।।२७।।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यदर्शनसम्पन्न, मपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म, गूढाङ्गारान्तरौजसम् ।।२८।।

धर्म-अधर्म के फल

श्वापि देवोऽपि देवःश्वा, जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्म्माच्छरीरिणाम् ।।२९।।

कौन वन्दनीय नहीं

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ।।३०।।

मोक्षमार्ग मे सम्यग्दर्शन की मुख्यता

दर्शनं ज्ञानचारित्रा, त्साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं, तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

मोक्ष मार्ग में सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता का कारण

विद्यावृत्तस्य संभूति, स्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

सम्यकदर्शन की उत्कृष्टता के अन्य कारण

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व, समं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ पैदा नहीं होता?

सम्यग्दर्शनशुद्धा, नारकतिर्यङ्-नपुसंक-स्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायु, र्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

सम्यग्दृष्टि जीव मानवशिरोमणि होता है

ओजस्तेजोविद्या, - वीर्ययशोवृद्धि विजय विभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था, मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

सम्यग्दृष्टि को इन्द्रपद की प्राप्ति होती है

अष्टगुणपुष्टितुष्टा, दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि, चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे॥३७॥

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती पद पाते हैं

नवनिधिसप्तद्वय, रत्नाधीशः सर्व-भूमि-पतयश्चक्रम्।
वर्तयितुं प्रभवन्ति, स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः॥३८॥

सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर होते हैं

अमरासुरनरपतिभि, र्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजा।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था, वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्या॥३९॥

सम्यग्दर्शन से मोक्ष-प्राप्ति

शिवमजरमरुजमक्षय, मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या, विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः॥४०॥

सम्यक्त्व की महिमा का उपसंहार

देवेन्द्र चक्रमहिमानममेयमानम्,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्र शिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥४१॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्याय

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

अन्यूनमनतिरिक्तं, याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निःसन्देहं वेद, यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

प्रथमानुयोग का स्वरूप

प्रथमानुयोगमर्था, ख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं, बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

करणानुयोग का स्वरूप

लोकालोकविभक्तेः, र्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथामति, रवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

चरणानुयोग का स्वरूप

गृहमेध्यनगाराणां, चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम् ।
चरणानुयोगसमयं, सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

द्रव्यानुयोग का स्वरूप

जीवाजीवसुतत्त्वे, पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च ।
द्रव्यानुयोगदीपः, श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

॥ इति द्वितियोऽद्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सम्यक् चारित्र क्यों धारण करना चाहिए?

मोहतिमिरापहणे, दर्शनलाभादवाप्त-संज्ञानः ।
रागद्वेष निवृत्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

राग-द्वेष की निवृत्ति से चारित्र-उत्पत्ति

रागद्वेषनिवृत्ते, हिंसादि निर्वतना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः, कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

सम्यक् चारित्र का स्वरूप

हिंसानृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

चारित्र के प्रकार

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससङ्गानाम् ॥५०॥

विकल (गृहस्थ) चारित्र का भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठ, त्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं, त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

अणुव्रत का स्वरूप

प्राणातिपातवितथ, व्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः ।
स्थूलेभ्यो पापेभ्यः, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अहिंसाणुव्रत का स्वरूप

संकल्पात्कृतकारित, मननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः, स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडन, मतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च, स्थूलवधाद् व्यपरतेः पञ्च ॥५४॥

सत्याणुव्रत का स्वरूप

स्थूलमलीकं न वदति, न परान् वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदन्ति सन्तः, स्थूलमृषावाद वैरमणम् ॥५५॥

सत्याणुव्रत के अतिचार

परिवादरहोभ्याख्या, पैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

अचौर्याणुव्रत का स्वरूप

निहितं वा पतितं वा, सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम् ।
न हरति यन्न च दत्ते, तदकृषचौर्यादुपारमणम् ॥५७॥

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोग चौरा, र्थादान विलोप सदृश सन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं, पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत का स्वरूप

न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः, स्वदारसन्तोष नामापि ॥५९॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

अन्यविवाहाकरणा, नङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः।
इत्वरिकागमनं चा, स्मरस्य पञ्च व्यतीचारा ॥६०॥

परिग्रह परिमाणाणुव्रत का स्वरूप

धनधान्यादिग्रन्थं, परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता ।
परिमित-परिग्रहः स्या, दिच्छा परिमाणनामापि ॥६१॥

परिग्रह परिमाण अणुव्रत का अतिचार

अतिवाहनातिसंग्रह, विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपाः पञ्च कथ्यन्ते ॥६२॥

पञ्चाणुव्रत धारण करने का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

पाँच अणुव्रत धारियों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम

मातङ्गो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः ।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः, पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

हिंसादि पाँच अव्रतों में लिप्त व्यक्तियों के नाम

धनश्रीसत्यघोषौ च, तापसारक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रु, नवनीतो यथाक्रमम् ।।६५।।

गृहस्थ (श्रावक) के आठ मूलगुण

मद्य-मांस-मधु-त्यागैः, सहाणुव्रत-पञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु, र्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ।।६६।।

गुणव्रतों का स्वरूप

दिग्व्रतमनर्थदण्ड, व्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अनुबृंहणाद् गुणाना, माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ।।६७।।

दिग्व्रत का स्वरूप

दिग्वलयं परिगणितं, कृत्वाऽतोऽहं बहिर्न यास्यामि ।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत, मामृत्यणु पापविनिवृत्त्यै ।।६८।।

दिग्व्रत की मर्यादा

मकराकरसरिदटवी, गिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां, प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ।।६९।।

दिग्व्रतस्य धारण करने का फल

अवधेर्बहिरणुपाप, प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।
पञ्चमहाव्रतपरिणति, मणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ।।७०।।

उपचार की दृष्टि से महाव्रत

प्रत्याख्यानतनुत्वा, न्मन्दतराश्चरणमोहपरिणाणाः ।
सत्वेन दुःखधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ।।७१।।

महाव्रत का स्वरूप

पञ्चानां पापानां, हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदै, स्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ।।७२।।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्, व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरते, रत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ।।७३।।

अनर्थदण्डव्रत का स्वरूप

अभ्यन्तरं दिगवधे, रपार्तिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।
विरमणमनर्थदण्ड, व्रतं च विदुर्व्रतधराग्रण्यः ।।७४।।

अनर्थदण्ड के भेद

पापोपदेश हिंसा, दानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्या, मनर्थदण्डानदण्डधराः ।।७५।।

पापोपदेश अनर्थदण्ड का स्वरूप

तिर्यक्क्लेषवणिज्या, हिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गप्रसवः, स्मर्तव्यः पाप-उपदेशः ।।७६।।

हिंसादान अनर्थदण्ड का स्वरूप

परशुकृपाणखनित्र, ज्वलनायुधश्रृङ्गश्रृङ्खलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं, हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ।।७७।।

अपध्यान अनर्थदण्ड का स्वरूप

वधबन्धच्छेदादे, र्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं, शासति जिनशासने विशदाः ।।७८।।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का स्वरूप

आरम्भसङ्गसाहस, मिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः ।
चेतः कलुषयतां श्रुति, रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ।।७९।।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का स्वरूप

क्षितिसलिलदहनपवना, रम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम् ।
सरणं सारणमपि च, प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ।।८०।।

अनर्थदण्डव्रत का अतिचार

कन्दर्पं कौत्कुच्यं, मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च ।
असमीक्ष्य चाधिकरणं, व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ।।८१।।

भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत का स्वरूप

अक्षार्थानां परिसं, ख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ, रागरतीनां तनूकृतये ।।८२।।

भोगोपभोग के लक्षण

भुक्त्वा परिहातव्यो, भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः ।
उपभोगोऽशनवसन, प्रभृतिपाञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

मधु-मांस-मद्यनिषेध

त्रसहतिपरिहरणार्थं, क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं, जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अल्पफल-बहुविघात-निषेध

अल्पफलबहुविधाता, न्मूलकमार्द्राणि श्रृङ्गवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं, कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

अनिष्ट एवं अनुपसेव्य वस्तुओं के त्याग और व्रत का स्वरूप

यदनिष्टं तद्व्रतये, द्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृताविरति, र्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

नियम और यम के लक्षण

नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारे ।
नियमः परिमितिकालो, यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

भोगेपभोगपरिमाण व्रत के नियम की विधि

भोजनवाहनशयन, स्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसनभूषण, मन्मथसङ्गीतगीतेषु ॥८८॥

नियम का लक्षण

अद्य दिवा रजनीं वा, पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इतिकालपरिच्छित्या, प्रत्त्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

भोगोपभोग परिमाणव्रत के अतिचार

विषयविषतोऽनुपेक्षा, नुस्मृतिरति लौल्यमतितृषानुभवो।
भोगोपभोगपरमा, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

शिक्षाव्रत के प्रकार

देशावकाशिकं वा, सामयिकं प्रौषधोपवासो वा ।
वैय्यावृत्यं शिक्षा, व्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

देशावकाशिक-शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं स्या, त्कालपरिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां, प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

देशावकाशिक व्रत की क्षेत्रमर्यादा

गृहहारिग्रामाणां, क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य, स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

देशावकाशिकव्रत की कालमर्यादा

संवत्सरमृतुरयनं, मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य, प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

महाव्रतों का साधन

सीमान्तानां परतः, स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात् ।
देशावकाशिकेन च, महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

देशावकाशिकव्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं, रूपाभिव्यक्तिपुद्‌गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य, व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥९६ ॥

सामायिक शिक्षाव्रत का वर्णन

आसमयमुक्तिमुक्तं, पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः, सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

सामायिक समय शब्द का अर्थ

मूर्धरुहमुठिवासो, बन्धं पर्यङ्कबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा, समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

सामायिक करने का स्थान

एकान्ते सामयिकं, निर्व्याक्षेपेवनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

सामायिक की वृद्धि करने की रीति

व्यापारवैमनस्या, द्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ।
सामयिकं बध्नीया, दुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

प्रतिदिन सामयिक करे

सामयिकं प्रतिदिवसं, यथावदप्यनलसेन चेतव्यम् ।
व्रतपञ्चकपरिपूरण, कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

सामयिक व्रतधारी की स्थिति

सामयिके सारम्भाः, परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव, गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

सामायिक में परीषह सहन करना

शीतोष्णदंशमशक, परिषहमुपसर्गमपि च मौनधराः ।
सामयिकं प्रतिपन्ना, अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

सामायिक में विचारों की उत्कृष्टता

अशरणमशुमनित्यं, दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीता, त्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार

वाक्कायमानसानां, दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमा, व्यज्यन्ते पञ्चभावेन ॥१०५॥

प्रौषधोपवास शिक्षाव्रत के लक्षण

पर्वण्यष्टम्यां च, ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्याणां, प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

उपवास के दिन कौन से कार्य न करे?

पञ्चानां पापाना, मलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्याना, मुपवासे परितिं कुर्यात् ॥१०७॥

उपवास करने वाले का कार्य

धर्मामृतं सतृष्णः, श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञानध्यानपरो वा, भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

प्रोषधोपवास का लक्षण

चतुराहारविसर्जन, मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो, यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणा, न्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवास, व्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

वैयावृत्त्य (अतिथिसंविभाग) शिक्षाव्रत का लक्षण

दानं वैयावृत्त्यं, धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारो, पक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

वैयावृत्य का अन्य स्वरूप

व्यापत्तिव्यपनोदः, पदयोः संवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्यं यावा, नुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

दान का लक्षण

नवपुण्यैः प्रतिपत्ति, सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणा, मार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं, कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरमलं धावते वारि॥११४॥

नवधा भक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणते, र्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं, स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥११५॥

अल्पदान से महाफल की प्राप्ति

क्षितिगतमिव वटबीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं, बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्॥११६॥

वैयावृत्य की दृष्टि से दान के चार भेद

आहारौवधयोर, प्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्यं ब्रुवते, चतुरात्मत्वेन चतुरस्रा ॥११७॥

दान देने वालों में प्रसिद्ध नाम

श्रीषेणवृषभसेने, कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्यस्यैते, चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अर्हन्त पूजा का विधान

देवाधिदेवचरणे, परिचरणं सर्वदुःख निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥११९॥

पूजा का माहात्म्य

अर्हच्चरणसपर्या,- महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः, कुसुमेनैकेन राजगृहे॥१२०॥

वैयावृत्य के अतिचार

हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते॥१२१॥

सल्लेखना का लक्षण

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन, माहुः सल्लेखनामार्याः॥१२२॥

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम्॥१२३॥

सल्लेखना की विधि

स्नेहं वैरं सङ्ग, परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च, क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥१२४॥

आलोच्य सर्वमेनः, कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत, मामरणस्थासि निश्शेषम्॥१२५॥

शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च, मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥१२६॥

सल्लेखनाधारी के आहार-त्याग का क्रम

आहारं परिहाप्य, क्रमश स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥१२७॥

खरपानहापनामपि, कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमना, स्तनुं त्यज्येत्सर्वयत्नेन॥१२८॥

सल्लेखना के अतिचार

जीवितमरणाशंसे, भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः, पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥१२९॥

सल्लेखना का फल

निःश्रेयसमभ्युदयं, निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा, सर्वैर्दुःखैरनालीढः॥१३०॥

मोक्ष का लक्षण

जन्मजरामयमरणै, शौकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं, निःश्रेयसमिष्यते नित्यम्॥१३१॥

मुक्त जीव का वर्णन

विद्यादर्शनशक्ति, स्वास्थ्य प्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः।
निरतिशया निरवधयो, निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥१३२॥

मुक्त जीव के गुणों में विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्षा।
उत्पातोऽपि यदि स्या, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः॥१३३॥

मुक्त जीव की शोभा

निःश्रेयसमधिपन्ना, स्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छवि, चामीकरभासुरात्मानः॥१३४॥

सल्लेखनाधारी का अभ्युदय रूप फल

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः, बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुत, मभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥१३५॥

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं (पदों) का वर्णन

श्रावकपदानि देवै,रेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह, संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः॥१३६॥

दार्शनिक श्रावक या दर्शन प्रतिमाधारी का लक्षण

सम्यग्दर्शनशुद्धः, संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो, दार्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः॥१३७॥

व्रत प्रतिमाधारी के लक्षण

निरतिक्रमणमणुव्रत, पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो, योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

सामयिक प्रतिमाधारी का लक्षण

चतुरावर्तत्रितय, श्चतुः प्रणामस्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्य, स्त्रियोगशुद्धिस्त्रिसंन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

प्रौषध प्रतिमाधारी का लक्षण

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी, प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

सचित्त त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

मूलफलशाकशाखा, करीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानि योऽत्ति सोऽयं, सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

रात्रि-भोजन-त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

अन्नं पानं खाद्यं, लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः, सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी का लक्षण

मलबीजं मलयोनिं, गलन्मलं पूतगन्धिबीभत्सम्।
पश्यन्नङ्गमनङ्गा, द्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

आरम्भत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

सेवाकृषिवाणिज्य, प्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतो, र्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

परिग्रह-त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अनुमतित्यागी प्रतिमाधारी का लक्षण

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

श्रेष्ठ ज्ञाता का स्वरूप

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

रत्नत्रय धर्म के सेवन का फल

येन स्वयं वीतकलङ्कविद्या दृष्टिः क्रियारत्नकरण्डभावम् ।
नीतस्यमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषुविष्टपेषु ॥१४९॥

श्रावक की इष्ट प्रार्थना

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीतात्
जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

॥ इति श्री समन्तभद्र आचार्य विरचित
रत्नकरंडश्रावकाचारः ॥

सिद्धान्तचक्रवर्ति श्री नेमिचन्द्राचार्यकृत

द्रव्यसंग्रह

ग्रंथकर्ता का मंगलाचरण

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ।।१।।

जीवद्रव्य के नौ अधिकार

जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।।२।।

जीवत्वाधिकार (जीव स्वरूप) का स्पष्टीकरण

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउ, आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणायदो दु चेदणा जस्स ।।३।।

उपयोग अधिकार का वर्णन

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही, दंसणमध केवलं णेयं ।।४।।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणी।
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभेयं च ।।५।।

जीव के लक्षण

अट्ठचदुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

अमूर्तित्वाधिकार का विवरण

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहार मुत्ति बंधादो ॥७॥

कतृत्वाधिकार का विवरण

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

भोक्तत्वाधिकार का विवरण

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

स्वेदह परिमाणत्व अधिकार का वर्णन

अणुगुरूदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

संसारित्व अधिकार का वर्णन

पुढविजलतेउवाउ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंवक्खा, तस जीवा होंति संखादी ॥११॥

चौदह जीव समास (जीवों के संक्षिप्त भेद)

समणा अमणा णेया, पंचिंदिया णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ।।१२।।

द्वितीय और तृतीय प्रकार के १४ जीव समास

मग्गणगुणठाणेहिं य, चउदसहिं हवंति तह अशुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ।।१३।।

सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमतत्व अधिकार का वर्णन

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ।।१४।।

अजीव द्रव्यें वा उनके मूर्ति का मूर्तिक पना

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रुवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ।।१५।।

पुद्गलद्रव्य की बिभाव व्यंजन पर्यायें

सद्दो बंधो सुहमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ।।१६।।

धर्म द्रव्य का लक्षण

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गल जीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ।।१७।।

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ।।१८।।

आकाश द्रव्य का लक्षण

अवगासदाण जोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्णं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ।।१९।।

लोकाकाश और अलोकाकाशका स्वरूप

धम्मा धम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ।।२०।।

कालद्रव्य का लक्षण

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादिलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ।।२१।।

कालद्रव्य के प्रदेश

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।२२।।

द्रव्य और अस्तिकाय के भेद

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं काल विजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ।।२३।।

अस्तिकाय का लक्षण तथा अस्तिकायनाम का कारण

संति जदो तेणेदे, अत्थीत्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य॥२४॥

द्रव्यों के प्रदेश व काल के अस्तिकायत्व का निषेध

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ॥२५॥

पुद्गल के परमाणु के अस्तिकाय पना

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसोउवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हु॥२६॥

प्रदेश के लक्षण औरव शक्ति

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं॥२७॥

सात पदार्थों के कहने की सकारण प्रतिज्ञा

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीव विसेसा, तेवि समासेण पभणामो॥२८॥

भावास्रव और द्रव्यास्रव का लक्षण

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेयो।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि॥२९॥

भावास्रव के बत्तीस या बहत्तर भेद

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ।।३०।।

द्रव्यास्रव का लक्षण और भेद

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ।।३१।।

भावबन्ध एवं द्रव्यबन्ध का लक्षण

बज्झदि कम्मं जेणदु, चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ।।३२।।

बन्ध के भेद और उनके कारण

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।।३३।।

भावसंवर और द्रव्यसंवर का लक्षण

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ।।३४।।

भवसंवर के भेद

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपिहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेयं, णायव्वा भावसंवरविसेसा ।।३५।।

निर्जरा का लक्षण और भेद

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

मोक्ष का स्वरूप और उनके भेद

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओस भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥

पुण्य और पाप पदार्थ का वर्णन

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाऊणामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग का लक्षण

सम्मद्दंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा, णिच्छयदो, तत्तियमइयो णिओ अप्पा ॥३९॥

आत्मा ही को निश्चय मोक्षमार्ग कहने का कारण

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइयो, होदि हु मोक्खवक्स कारणं आदा ॥४०॥

व्यवहार सम्यक्दर्शन का स्वरूप

जीवदीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

संसयविमोहविब्भम विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मं, णाणं, सायारमणेयभेयं च ।।४२।।

दर्शनोपयोग का लक्षण

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समये ।।४३।।

दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम

दंसण पुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलि णाहे जुगवं तु ते दो वि ।।४४।।

व्यवहार सम्यक् चारित्र का स्वरूप और भेद

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदि गुत्ति रूवं ववहारणयादु जिणभणियं ।।४५।।

निश्चय सम्यक् चारित्र का लक्षण

बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणा सट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ।।४६।।

ध्यानाभ्यास करने की हेतूपूर्वक प्रेरणा

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ।।४७।।

ध्यान में लीन होने का उपाय

मा मुज्झह, मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइचित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए॥४८॥

ध्यान करने योग्य मंत्र

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुग मेगं च जबह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं चगुरूवएसेण॥४९॥

अरिहन्त परमेष्ठी (सच्चेदेव) का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमइयो
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥५०॥

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोया लोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरुसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥५१॥

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्त वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरियो मुणी झेओ॥५२॥

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स॥५३॥

साधु परमेष्ठी (दिगम्बर जैन मुनि का लक्षण)

दंसणणाण समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयति णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ।।५४।।

ध्याता, ध्येय और ध्यान (निश्चयध्यान) का स्पष्टीकरण

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं झाणं ।।५५।।

परमध्यान का लक्षण

मा चिट्ठह माजंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ।।५६।।

ध्यान का कारण या उपाय

तवसुदवदवं चेदा, झाणरह धुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ ।।५७।।

ग्रंथकार का लघुता प्रकाशन

दव्वसंगहमिणं मुणिणाह, दोससंचयचुदा सुद पुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ।।५८।।

।। इति द्रव्यसंग्रह ।।

पं. दौलतरामजी कृत

छहढाला

मंगलाचरण

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकै ।।

प्रथम ढाल

ग्रन्थकार का उद्देश्य

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहे दुख तैं भयवन्त ।
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ।।१।।

गुरुशिक्षा

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण ।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।।२।।

निगोद का दुःख

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनंत निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार ।।३।।

एक श्वास में अठ-दस-बार, जन्म्यौ, मर्यो, भर्यो दुःख भार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ।।४।।

त्रस पर्याय का वर्णन

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपीलि-अलि आदि शरीर, धर धर मर्‍यो सही बहु पीर।।५।।

असज्ञी-संज्ञी का वर्णन

कबहूँ पंचेंद्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।६।।

तिर्यंच गति मे निर्बलता का दुःख

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास।।७।।

तिर्यंच गति मे दुःख और नरकगति का कारण

बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‍यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्‍यो।।८।।

नरक गति के दुःखों का वर्णन

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बीछू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।९।।

नरकों में सर्दी गर्मी का दुःख

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारें तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

नरकों में अन्य नार की और असुर कुमारों द्वारा दुःख

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु नीरतें प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११॥

नरकों में मुख का दुख और मनुष्य गति की प्राप्ति

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहुसागर लों सहै, करम-जोगतैं नरगति लहे ॥१२॥

मनुष्यगति के एवं बाल, युवा, वृद्धावस्था के दुख

जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर ॥१३॥

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत रह्यौ।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥

देवगति में भवनत्तिक एवं वैमानिक देवों का दुःख

कभी अकाम निर्जरा करै, भुवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यौ, मरत विलाप करत दुख सह्यौ ॥१५॥

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तम्हैं तै चय थावर-तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे ॥१६॥

॥ इति प्रथम ढाल समाप्तः ॥

द्वितीय ढाल

ऐसे मिथ्यादृगज्ञानचरणवश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूं बखान ।।१।।

अगृहीत मिथ्यादर्शन और जीव का लक्षण

जीवादि प्रयोजन भूततत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्त्व।
चेतन को है उपयोगरूप, बिन मूरति चिनमूरति अनूप ।।२।।

जीव की विपरीत श्रद्धा

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान ।।३।।

मिथ्यात्वी की मान्यता

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ।।४।।

अजीव और आस्रव में विपरीत श्रद्धा

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ।।५।।

बंध और संवर में विपरीत श्रद्धा

शुभ-अशुभ बंद के फल मँझार, रति अरति करैं निजपद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आफको कष्टदान ।।६।।

निर्जरा, मोक्ष में विपरीत श्रद्धा तथा अग्रहीत मिथ्याज्ञान व चरित्र

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।७।।

इनजुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्त्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।८।।

गृहीत मिथ्यादर्शन व कुगुरु का स्वरूप

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषें चिर-दर्शन मोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।९।।

कुगुरु एवं कुदेव का स्वरूप

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल उपलनाव।
जे राग-द्वेष मलकरिमलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन्ह।।१०।।

कुधर्म का स्वरूप

ते हैं कुदेव, तिनकीजु सेव शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

कुधर्म एवं गृहीत मिथ्याज्ञान का स्वरूप

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।१२।।

गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त ।
रागी कुमतिन कृत श्रुताभ्यास, सो है कुबोध बहुदेन त्रास ।।१३।।

गृहीत मिथ्याचरित्र

जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध विध देहदाह ।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ।।१४।।

मिथ्या चरित्र का त्याग और आत्महित

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पन्थ लाग ।
जगजाल-भ्रमणको देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ।।१५।।

।। द्वितीय ढाल समाप्तः ।।

तृतीय ढाल

सच्चा सुख और मोक्षमार्ग

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यौ चहिये ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ।।१।।

निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का स्वरूप

परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यक्ज्ञान कला है।
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥

व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो ॥३॥

बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा का स्वरूप

बहिरातम, अन्तरआतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनैं, बहिरातम तत्त्व मुधा है।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संघ बिन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥४॥

मध्यम, जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥५॥

निकल परमातमा तथा परमात्मा के ध्यान का उपदेश

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ॥६॥

अजीव, पुद्‌गल, धर्म और अधर्म द्रव्य का लक्षण

चेतनता-बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्‌गल पंच वरन-रस गन्ध-दो, फरस वसु जाके हैं।
जिय पुद्‌गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी ॥७॥

आकाश, काल, आस्रवका स्वरूप और भेद

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निसदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥

आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा का लक्षण

ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तपबल तैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥

मोक्ष और व्यवहार सम्यक्त्व का लक्षण

सकलकर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
यहू मान समकित को कारण, अष्ट-अंगजुत धारो।।१०।।

सम्यक्त्व के पच्चिस दोष

वसु मद टारि निवारि त्रिसठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहुं कहिये।
बिन जाने तैं दोष गुनन को, कैसें तजिये गहिये।।११।।

सम्यक्त्व के आठ अंग और दोष

जिनवच में शंका न धार, वृष भव सुख वांछा भाने।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावे, तत्त्व कुतत्व पिछाने।
निज-गुण अरु पर-औगुण ढांके, वा निज धर्म बढ़ावे।
कामादिक कर वृषतै चिगते, निजपर को सु दिढावे।।१२।।

आठ मदों का वर्णन

धर्मी सोंगो-बच्छ-प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावे।
इन गुनतें विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावैं।।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठाने।
मद न रूप कों, मद न ज्ञान कों धन बल को मद भाने।।१३।।

छह अनायतन तीन मूढता

तप को मद न मद जु प्रभुता को, करे न सो नि जाने।
मद धारे तो यही दोष वसु, समकित को मल ठाने।
कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहिं प्रशंस उचरे हैं।
जिन मुनि जिन श्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करे हैं ।।१४।।

अविरत सम्यग्द्रष्टि की इद्रों द्वारा पूजा

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक्दर्श सजे हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं।
गेही पे गृह में न रचैं ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर नारी को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ।।१५।।

सम्यक्त्व की महिमा और सर्व धर्म का मूल

प्रथम नरक बिन षट्-भू-ज्योतिष, वान भवन षंड नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी ।।
तीनलोक तिहुं कालमांहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ।।१६।।

सम्यग्दर्शन विना ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापना

मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवे ।।१७।।

।। तृतिय ढाल समाप्तः ।।

चतुर्थ ढाल

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यक्ज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत जो प्रगटावन भान ।।१।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मे अंतर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि दुहू, में भेद अबाधौ।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू प्रकाश दीपक तैं होई ।।२।।

सम्यग्ज्ञान के भेद

तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिनमांही।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं।
अवधिज्ञान मनपर्यय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण लिये, जाने जिय स्वच्छा ।।३।।

सकल प्रत्यक्ष और ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुण अनंत, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म जरा मृतु रोग निवारन ।।४।।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म निर्जरा मे अंतर

**कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिनमांहि, त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥५॥**

ज्ञान के दोष और मनुष्य पर्याय की दुर्लभता

**तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोहत्याग, आपो लख लीजे।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवानी।
इह विधि गये न मिलैं, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥६॥**

सम्यग्ज्ञान की महिमा

**धन समाज गज बाज, राज ते काज न आवे।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे।
तास ज्ञान को कारण, स्वपर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो॥७॥**

**जे पूरब शिव गये, जांहि, अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।
विषय चाह दवदाह, जगतजन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै॥८॥**

पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध

पुण्य पाप फलमांहि, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर थाई।
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लावो।
तोरि सकल जग दंद फन्द, निज आतम ध्यावो।।९।।

सम्यक् चारित्र के भेद अहिंसा और सत्य अणुव्रत के लक्षण

सम्यक्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ चारित लीजे।
एकदेश अरू सकल देश, तसु भेद कहीजे।
त्रसहिंसा को त्याग वृथा, थावर न संघारे।
पर वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारे।।१०।।

दिग्व्रत का लक्षण

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहे अदत्ता।
निजवनिता बिन, सकल नारिसौं रहे विरत्ता।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखे।
दश दिश गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखे।।११।।

देश व्रत का लक्षण

ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा।
काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश होय, अघ बनिज कृषी तैं।।१२।।

पाचों अनर्थ ढण्डों के लक्षण

कर प्रमाद जलभूमि, वृक्ष पावक न विराधे।
असिधनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधे।
राग द्वेष करतार, कथा कबहूं न सुनीजे।
औरहु अनरथदण्ड, हेतु अध तिन्हें न कीजे ॥१३॥

चार शिक्षा व्रतों का वर्णन

धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारे।
मुनिको भोजन देय, फेर निज करहिं अहारे ॥१४॥

अतिचार रहित व्रत पालनेका आदेश

बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावे।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नसावे।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहंतै चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शि जावे ॥१५॥

॥ चतुर्थढाल समाप्तः ॥

पंचम ढाल

भावनाओं का चिंतन

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगन तै वैरागी।
वैराग्य उपावन मांइ, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

इन चिन्तत समसुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने, तबही जिय शिवसुखठाने ॥२॥

अनित्य भावना

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि-मन्त्र-तन्त्र बहु होई, मरतें न बचावे कोई ॥४॥

संसार भावना

चहुँगति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामै सुख नाहिं लगारा ॥५॥

एकत्व भावना

शुभ अशुभ करमफल जेते, भोगैं जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्यत्व भावना

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न २ नहीं भेला।
तो प्रगट जुदे धनधामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥७॥

अशुचि भावना

पल रुधिर राधमलथैली, कीकस बसादितैं मैली।
नवद्वार बहैं घिनकारी, अस देह करैं किम यारी ॥८॥

आस्रव भावना

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आश्रव भाई।
आश्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्है निरवेरे ॥९॥

संवर भावना

जिन पुण्यपाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिवसुख दरसावे ॥११॥

लोक भावना

किनहू न करौ न धरे को, षट्द्रव्यमयी न हरे को।
सो लोकमांहि बिन समता, दुःख सहे जीव नित भ्रमता ॥१२॥

बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद पायो अनंत बिरियां पद।
पर सम्यकज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥

धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारे, तबहि सुख अचल निहारें ॥१४॥

मुनि धर्म को सुनने की प्रेरणा

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

॥पांचविढाल समाप्तः ॥

षष्ठम ढाल

प्रथम चार महाव्रतों का लक्षण

षटकाय जीव न हनन तैं, सब विधि दरबहिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तैं, हिंसा न भावित अवतरी।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहें।
अठदशसहस्र विध शील धर, चिदब्रह्म में नित रमि रहैं ॥१॥

परिग्रह त्याग महाव्रत और इर्या-भाषा समिति का लक्षण

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलें।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलें।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरें।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुख, चन्दतैं अमृत झरें ।।२।।

एषणा, आदान, निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति का लक्षण

छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर असन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु नहि तन, पोषतें तजि रसन को।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहें लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल, मूत्रश्लेषम् परिहारें ।।३।।

त्रीमुप्ति और पांचे-इन्द्रिय विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मनवच, काय आतम ध्यावतें।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावतें।
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने ।।४।।

मुनियों के छह आवश्यक और शेष सात गुण

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुतिरति करैं प्रतिक्रम, तजें तन अहमेव को।
जिनके न न्हौंन न दंत धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रायन में कछु शयन एकासन करन ।।५।।

शेष गुण और राग द्वेष का अभाव

इक बार दिन में लें आहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परीषह, सों लगे निज ध्यान में।
अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच निंदन थुतिकरन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन ॥६॥

तप, धर्म, विहार तथा स्वरूपाचरण चारित्र

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवें सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरें, चहैं नहिं भव सुख कदा।
यों है सकल संयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होथ प्रगटै आपनीनिधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥

जिन परमपैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया।
निजमांहिं निज के हेतु निज कर, आपको आपै गह्यो।
गुणगुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥

जहाँ ध्यानध्याताध्येय को न, विकल्प वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहां दृगज्ञानव्रत ये, तीनधा ऐकै लसा ॥९॥

स्वरुपाचरण चारित्र और निर्विकल्पदशा

परमाण नय निक्षेप को न, उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग ज्ञान सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।
मैं साध्य साधक मैं अबाक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चिद्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुण करण्ड च्युत पुनि कलनि तैं ।।१०।।

अरहंत अवस्था का वर्णन

यौंचिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।
तबही सुकलध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ।।११।।

सिद्ध परमेष्ठि का वर्णन

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन मांहि अष्टम भू बसें।
वसु कर्म विनसैं सुगुन वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसें।
संसार खार अपार पारा, वार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि चिद्रुप अविनाशी भये ।।१२।।

मोक्ष का वर्णन

निज मांहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया ।।१३।।

रत्नत्रय का उपदेश

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रतनत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयस जल जगमल हरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयस जल जगमल हरैं।
इमि जानि आलस, हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलौं झटिति निजहित करो ।।१४।।

अंतिम शिक्षा

यह राग दहेसदा, तातें समामृत सेइये।
चिरभजे विषय कषाय, अब तो त्याग निजपद बेइये ।।
कहा रज्यो पर पद में, न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब दौल होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ।।१५।।

ग्रन्थरचनाकाल

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख।
कर्यो तत्व उपदेश यह, लखि बुध जन की भाख ।।
लघु धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव कूल ।।१६।।

।। इति षष्टम ढाल समाप्तः ।।

मुनिश्री १०८ नियम सागरजी महाराज कृत

बाईस परीषह

देवशास्त्र गुरू को नमू, नमू जोड़ के हाथ।
द्वाविंशति परिषह लिखूं, लखूँ स्वात्म सुखनाथ।।
आप आप में नित बसूं, मिटे सकल परिताप।
निज आतम वैभव भजूं, सजूं आपको आप।।

अग्नि शिखा सम क्षुदा वेदना, मुनिजन वन में सहते हैं।
बेला तेला पक्ष मास का, अनशन कर तप तपते हैं।।
नरक पशुगत्ति क्षुदा वेदना, का नित चिंतन करते है।
इस विधि आतम चिंतनकर नित, क्षुदा परिषह सहते हैं।।१।।

ग्रीष्मकाल में तन तपने से, प्यास सताती यतियों को।
तपा तपा तन कर्म खिपाते, चहुंगति पीर मिटाने की।।
प्यास पीर को चीर चीरकर, शांति नीर को पीते हैं।
इस विधि मुनिजन प्यास परिषह, ग्रीष्म ऋतु में सहते हैं।।२।।

कप कप कप कपती रहती, शीत पवन से देह सदा।
तथापि आतम चिंतवन में वे, कहते मम यह काय जुदा।।
शीतकाल में सरिता तट पर, ऋषिगण ध्यान लगाते हैं।
कर्मेंधन को जला जलाकर, शीत परिषह सहते हैं।।३।।

तप्त धरातन अन्तरतल में, धग धग धग धग करती है।
उपर नीचे आगे पीछे, दिशि में तप तप तपता है॥
तप्तशिला पर बैठे साधुजन, तथापि तपरत रहते हैं।
निर्जन वन में अहो निरंतर, उष्ण परिषह सहते हैं॥४॥

दंश मक्षिका की परिषह को, मुनिजन वन में सहते हैं।
रात समय में खड़े खड़े वे, आतम चिंत्तवन करते हैं॥
डांस मक्खियां मुनि तन पर जब, काररखून को पीते हैं।
नही उड़ाकर उन जीवोंपर, समता रख नित सहते हैं॥५॥

नग्न तन पर कीड़े निश दिन, चढ़कर डसते रहते हैं।
दुष्ट लोग भी नग्न देखकर, खिलखिलकर हंसते रहते हैं॥
इन सबको वे नग्न मुनिश्वर, समता धर नित्त सहते हैं।
निर्विकार बन निरालम्ब मुनि, ज्ञान परिषह सहते हैं॥६॥

तन रति तजकर तपरत होकर, मुनि जब वन वन में रहते हैं।
क्रूर प्राणिजन सदा मुनि के, निकट उपस्थित रहते हैं।
तथापि आगम रूपी अमृत, पी मुनि ध्यान लगाते है।
अमृत पीकर निर्भय होकर, अरति परिषह सहते हैं॥७॥

काम वाण से उद्रेकित, यौवन वती वनिता आती है।
निर्जन बन में देख मुनि को, मधुर स्वरो में गाती है।
तथापि अविचल निर्विकार मुनि, वनिता, परिषह सहते हैं।
आत्म ब्रह्म में दृढतर रह मुनि, कर्म निर्जरा करते हैं॥८॥

कंकर पत्थर चुबकर पथ में, घाव बना पगतल में।
कमल पत्र सम कोमल पग से, खून बह रहा जो जंगल में।
तथापि मुनिजन मुक्ति रमा से, रति रख चलते रहते हैं।
मुमुक्षु बनकर मोक्षमार्ग में, चर्या परिषह सहते हैं ।।९।।

गिरि गुफा या कानन में जब, कठिनासन पर ऋषि रहते।
कई उपद्रव होने पर भी, आशन विचलित नहि करते।
अचलासन पर अपने मन को, स्थापित अपने में करते।
मुक्तिरमा पाने को मुनि, निषध्या परिषह को सहते ।।१०।।

ध्यान परिश्रम शम करने यति, दो घड़ी निशि में सोते हैं।
तथापि मन को वश रख निद्रा, एक करवट से लेते हैं।
तदा मुनि पर महा उपद्रव, वन पशु करते रहते हैं।
तथापि करवट अविचल रखकर, शय्या परिषह सहते हैं।।११।।

अज्ञानी जन गाली देकर, पागल कह कर हँसते हैं।
वचन तिरस्कार कह फिर, नंगा लुच्चा कहते रहते हैं।
दुष्टों से मुनि गाली सुनकर, के भी क्लेष नहीं करते।
समता सागर बन मुनि इस, आक्रोश परिषह को सहते ।।१२।।

सघन वनो में व शहरों में, जब मुनि विहार करते हैं।
दुष्ट जनों के बध बन्धन, ताड़न भी पथ सहते हैं।
प्राण हरण करने वाले उस, वध परिषह को सहते है।
समता रख मुनि मौन धार कर, कर्म निर्जरा करते है ।।१३।।

अहो कलेवर सूख गया है, रोग भयानक होने से।
तथापि मुनिवर अनशन करते, भय नहीं रखते कर्मों से।
ऐसे नुनिवर पुर में आ जब, अहो पारणा करते हैं।
औषधि जल तक नहीं याचना, करते परिषह सहते हैं।।१४।।

पक्ष मास का अनशन कर मुनि, गमन नगर में जब करते।
अन्नादिक का लाभ नहीं होने, पर तब वापिस आते।
उस दिन उदराग्नि की पीड़ा, क्षण-क्षण पल-पल में सहते।
अहोसाधना पथ पर इस विध, अलाभ परिषह मुनि सहते।।१५।।

भस्म भगंदर कुष्ट रोग के, होने पर भी नही डरते।
सतत वेदना रहने पर भी, उसका इलाज नहीं करते।
जन्म जरा जो महारोग का, निशिदिन इलाज करते हैं।
तन रोगों पर समता रख कर, रोग परिषह सहते हैं।।१६।।

शुष्क पत्र कण तन पर, गिरने से खुजली चलती रहती।
तथापि मुनिवर नहीं खुजाते, वह तो चलती ही रहती।
कण-कण कंकर कंटक चुभते, गमन समय में जंगल में।
इस तृण स्पर्श परीषह सह मुनि, कर्म खिपाते पल-२ मे।।१७।।

पाप कर्म मल विनाश करने, मल परिषह मुनि नित सहते।
जल जीवों पर दया धारकर, स्नान को हमेशा तजते।
श्रुत गंगा में वीतराग जल से, स्नान किया करते।
तथापि मुनिवर अर्धजले, शव के सम निशदिन हैं दिखते।।१८।।

मुनि की स्तुति अरू नमन प्रशंसा करना यह सुन है सत्कार।
आगे रखकर पीछे चलना, पुरस्कार हैं गुण भंडार।
परन्तु यदि कोई जग मे, स्तुति या विनयादिक नहीं करते।
पुरस्कार सत्कार परिषह को, नित तब मुनि है सहते ।।१९।।

मै पंडित हूं ज्ञानी हूं मै, द्वादशांग का पाठी हूँ।
इस जग में महाकवि हूं, सब तत्वों का ज्ञाता हूँ।
इस विध बुध मुनि कदापि, मन में वृथा गर्व नहीं करते हैं।
निरभिमान हो मोक्षमार्ग में, प्रज्ञा परिषह सहते है ।।२०।।

अहो सुनो यह ज्ञानहीन मुनि, वृथा जगत में तप तपता।
कठिन तपस्या करने पर भी, श्रुत में विकास नही दिखता।
इस विध मुनि को मूढमति जन, वचन तिरस्कृत कर कहते।
तदा कर्म का पाक समझ, अज्ञात परिषह मुनि सहते ।।२१।।

मै तप तपता दीर्घकाल से, पर कुछ अतिशय नही दिखता।
सुरजन अतिशय करते कहना, मात्र कथन ही है दिखता।
इस विध दृगधारी मुनि मन मे, कलूष भावन ही रखते हैं।
पर वांछा को छोड़ अदर्शन, परिषह नित मुनि सहते हैं ।।२२।।

नियम नहीं था लिखूं, मंद मती हूँ जान,
मशाल मुझ में हैं नही, शोध पढ़े श्रीमान।
गरज सिंह सम अहो धारो परिषह आज,
मुनि बनकर तुम तप करो करो कर्म पर राज ।।

रत्नत्रय को सुपाल साढ़े तीन कोटि मुनि मुक्ति गये।
मुक्ता गिरि पर कर्म झड़ाकर, भव दुख संकट पार किये॥

जन ऋषियों को नित नमूं सकल संघ छोड।
भव दुख संकट मम मिटे नमू सदा जोड़॥

द्वाविंशति परिषह नित सहकर, करूँ निर्जरा क्षण क्षण में
पर से निज को भिन्न जानकर, कर नित चिन्तन निजमन में।

निज में निजको निज से निजकर, निजका निज से निजभर में
निज सुख शक्कर पाक बनाकर, चखलो निशिदिन निज घर में॥

॥ इति बाईस परीषह समाप्तः ॥

भूधरदास कृत

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार।।१।।

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार।।२।।

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देखो छान।।३।।

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूं कबहूं इस जीव को, साथा सगा न कोय।।४।।

जहां देय अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।

दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड पिंजरा देह।
भीतर या सम जगत में और नहीं घिनगेह।।६।।

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमे सदा।
कर्मचोर चहूं ओर, सरवस लूटे सुध नहीं।।७।।

सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे।
तब कुछ बने उपाय, कर्मचोर आवत रुके।।८।।

ज्ञान दीप तप तेल भर, धर सौधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर ।।९।।

पञ्च महाव्रत सञ्चरण, समिति पञ्च परकार।
प्रबल पञ्च इन्द्री विजय, धार निर्जरा सार ।।१०।।

चौदह राजु उतङ्ग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत है बिन ज्ञान ।।११।।

धनकन कञ्चन राजसुख, सबही सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में एक जथारथ ज्ञान ।।१२।।

याचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिन्ता रैन।
बिन याचे बिन चिंतवे, धर्म सकल सुख दैन ।।१३।।

पं. मंगतवराय विरचित

बारहभावना

दोहा

वंदूं श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूं बारह भावना, जग जीवनहित जान।।

विश्नुपद छन्द

कहां गये चक्री जिन जीता भरतखंड सारा।
कहां गये वह रामरु लक्षमन जिन रावन मारा।
कहां कृष्ण रुक्मणि सतभामा अरु संपति सगरी।
कहां गये वह रंगमहल अरु सुवरन की नगरी।।

नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रनमैं।
गये राज तज पांडव बन को, अग्नि लगी तन मैं।
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु बारह भावन को।।१।।

अनित्य भावना

सूरज चांद छिपै निकलै ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीतै पता नहीं पावै।
पर्वत पतित नदी सरिता जल बहकर नहीं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों आरेसों कटता।।

ओस बूँद ज्यों गलै धूप में वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझे प्राणी।
इन्द्रजाल आकाश नगर सब जगसंपत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी।।२।।

अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव-वन में।
नहीं बचावन हारा कोई यों समझो मन में।
यंत्र मंत्र सेना धन संपत्ति राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा काय नगरि लूटै।।

चक्ररतन हलधरसा भाई काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया।
देव धर्म गुरु शरण जगत मैं और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन यूंही उमर खोई।।३।।

संसार भावना

जनममरण अरु जरारोग से सदा दु:खी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव परिवर्तन सहता।
छेदन भेदन नरक पशुगति वध बंधन सहना।
राग उदय से दुख सुरगति में कहां सुखी रहना।।

भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर खुरपा अरु जाली।

मानुष जन्म अनेक विपतिमय कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभ को मेटो लेखा।।४।।

एकत्व भावना

जनमे मरै अकेला चेतन सुखदुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी।
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं पिता पुत्र दारा।।

ज्यों मेले में पंथीजन मिलि नेह फिरे धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पक्षी आ करते।
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थकथक हारे।
जाय अकेला हंस संग में कोई न पर मारे।।५।।

अन्यत्व भावना

मोहरूप मृगतृष्णा जगमें मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम मैं उठ उठ दौडे थक थककै।
जल नहिं पावै प्राण गमावै भटक भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी भेद नहीं करता।।

तू चेतन अरु देह अचेतन यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तै बिछुडै ज्यों पय अरु पानी।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा भेदज्ञान करना।
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यम सों चरना।।६।।

अशुचि भावना

तू नित पौंखे यह सूखै ज्यों धोवे त्यों मैली।
निश दिन करै उपाय देह का रोगदशा फैली।
मात पिता रज वीरज मिलकर बनी देह तेरी।
हाड मांस नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी।।

काना पौंडां पड़ा हाथ यह चूसै तौ रोवै।
फलै अनंत जु धर्मध्यान की भूमि विषें बोवै।
केसर चंदन पुष्प सुगंधित वस्तु देख सारी।
देह परस तें होय अपावन निशदिन मल जारी।।७।।

आस्रव भावना

ज्यों सरजल आवत मोरी त्यों आश्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहैं जब पुदगल भरमन को।
भावित आश्रव भाव शुभाशुभ निशदिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों कर्ता कारण बंधन को।।

पन मिथ्यात्व योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पंचरु बीस कषाय मिले सब संत्तावन मानो।
मोहभाव की ममता टारे पर परणति खोते।
करै मोक्ष का यतन निराश्रव ज्ञानी जन होते।।८।।

संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे तब जल रूक जाता।
त्यों आश्रव को रोकै संवर क्यों नहिं मन लाता।
पंच महाव्रत समिति गुप्ति कर वचन काय मनको।
दशविध धर्म परीषह बाइस बारह भावन को।।

यह सब भाव सतावन मिलकर आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन कहां पड़े सोते।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भाव न संवर पावै।
डांट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै।।९।।

निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा ह्वै सोखन हारी।
उदय भोग सविपाक समय पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै पाल विषैं माली।।

पहली सबके होय नहीं कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करके मिटै जगत फेरा।
संवर सहित करो तप प्रानी मिलै मुकति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली जानैं सब ज्ञानी।।१०।।

लोक भावना

लोक अलोक आकाश मांहि थिर निराधार जानो।
पुरुषरूप कर कटी भये षट द्रव्यन सों मानो।
इसका कोइ न करता हरता अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्गल नाचै यामैं कर्म उपाधी है।।

पापपुण्य सों जीव जगत मैं नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता।
मोहकर्म को नाश मेटकर सब जग की आसा।
निज पद मैं थिर होय लोक के शीश करो बासा।।११।।

बोधि दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर अरु त्रसगति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसैं सो दुर्लअभ प्रानी।
उत्तमदेश सुसंगति दुर्लभ श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम पंचम गुणठाना।।

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन शुद्धभाव करना।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिरइस भव में आवै।।१२।।

धर्म भावना

मोह और मिथ्यात्व भावना ने जग को लूटा।
राग-द्वेष अरु जड़ चेतन का यह नाटक झूठा।
कोई तो खुद पाप करै सिर करता के लावै।
कोई छिनक कोई करता सो जग में भटकावै॥

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन श्री जिनकी वानी।
सप्त तत्व का वर्णन जामें सबको सुखदानी।
इनका चिंतन बार बार कर श्रद्धा उर धरना।
मंगल इसी जतनतैं इकदिन भवसागर तरना॥१३॥

॥ इति मंगतरायकृत बारह भावना समाप्तः ॥

पं. भूदरदासजी विरचित

वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं ।।१।।

(जोगीरास या नरेन्द्र छन्द)

इहविध राज करै नर नायक, भोगैं पुण्य विशालो।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ।।
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ।।२।।

तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी ।।
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ।।३।।

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव तन भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ।।
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै।
जामन मरण जरा दव दाझै, जीव महादुःख पावै ।।४।।

कबहुँ जाय नरक थिति भुंजे, छेदन भेदन भारी।
कबहुँ पशु परजाय धरे तहाँ, बंध बन्धन भयकारी।।
सुरगति में परसम्पत्ति देखे, राग उधय दुःख होई।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई।।५।।

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगूचे, कोई तन के रोगी।।
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुःख बाहिर दीखे, किस ही उर दुचिताई।।६।।

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सौवे।।
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता।।७।।

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे को शिव साधन करते, संजमसों अनुरागै।।
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई।।८।।

सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, और अपावन को है।।
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहाँ, कौन सुधी सुख पावै।।९।।

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ।।
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है ।।१०।।

भोग बुरे भवरोग बढावें, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके ।।
बज्र अग्नि विष से विषधर से, ये अधिकके दुःखदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ।।११।।

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानें।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानें ।।
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ।।१२।।

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ।।
राज समाज महा अघ कारण वैर बढावनहारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पत्यारा ।।१३।।

मोह महारिपु वैर विचारयो, जगजिय संकट टारे।
तन काराग्रह बनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ।।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ।।१४।।

छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोडे, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक सम्पत्ति बहुतेरी, जीरण तृण सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी ॥१५॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरन धारी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१६॥

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ ॥

॥ इति श्री वैराग्यभावनाय नमः ॥

जौहरीलाल जी विरचित

आलोचना पाठ

दोहा

बन्दौं पांचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना शुद्धिकरण के काज ।।१।।

सखी छन्द चौदह मात्रा

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरण लही जिनराजा ।।२।।

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहीं करुणा धारी, निरदय ह्वै घात विचारी ।।३।।

समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिके, कोधादि चतुष्टय धरिके ।।४।।

शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने पर छेदन तैं।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ।।५।।

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतै नहिं जाय कहीने ।।६।।

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता (परपरूषन) सों दृग जोरी।
आरम्भ परिग्रह भीने, पनपाप जु या विधि कीने ॥८॥

सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय सेवन को।
बहु कर्म किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥

फल पञ्च उदंबर खाये मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे विषयन सेये दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुञ्जाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यौं त्यौं करि उदर भरायो ॥११॥

अनन्तानु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये ॥१२॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संजोग।
पन वीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जाग विषयवन धायो, नाना विधि विषफल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहु विधि विकल्प उपजायो।
कुछ सुधिबुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ।।१६।।

मर्यादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन्न भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पहिये ।।१७।।

हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवनराशि विराधी।
थावरकी जतन न कीनी, उर में करुना नहिं लीनी ।।१८।।

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागा चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन बिलोल्यो ।।१९।।

हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खन्दा, हम खाये धरि आनन्दा ।।२०।।

हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जीव जु आये, ते हूं परलोक सिधाये ।।२१।।

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागा बुहारी, चिंउटी आदिक जीव विदारी ।।२२।।

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ।।२३।।

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराय ।।२४।।

अन्नादिक शोध कराई, ता में जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरम्भ हिंसा साजे।
कीये तिसनावस अघ भारी, करुना नहिं रञ्च विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवन्ता।
सन्तति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अव आयो, नाना विधि मोहि सतायो।
फल भुज्जत जिय दुःख पावैं, वचतैं कैसे करि गावैं ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥

जो गांवपति इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥३०॥

द्रौपदि को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अञ्चन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित कर स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥३२॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊं।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज पद दीजै ॥३३॥

दोहा-दोषरहित जिनदेवजी, निज पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़े, आनन्द मङ्गल होय ॥३४॥

अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द ॥

॥ इति श्री आलोचना पाठाय नमः ॥

जुगलकिशोर जी मुक्तार विरचित

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो।।१।।

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-परके हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।२।।

रहे सदा सत्सङ्ग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उनहीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताउँ किसी जीव को, झूँठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं।।३।।

अहङ्कार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं।।४।।

मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्त्रोत बहे ॥
दुर्जन-क्रूर कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, एसी परिणति हो जावे ॥५॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा करके, यह मन सुख पावे ॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहै नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आ जावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥७॥

होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियाग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मङ्गल गावे ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दृष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्मफल सब पावे ॥९॥

ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, रप्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।।१०।।

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करें।।११।।

।। इति श्री मेर भावनाय नमः ।।

दर्शन स्तुति

(प. दौलतरामजी कृत)

दोहा-सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि-रज-रहस-विहीन॥

पद्धरि छन्द

जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोह-तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार, दृग-सुख-वीरज-मंडित अपार॥१॥

जय परम शान्ति मुद्रा समेत, भवि-जनको निज अनुभूति देत।
भवि-भागनवश जोगे वशाय, तुम ध्वनि है सुनि विभ्रम नशाय॥२॥

तुम गुण चिन्तत निज-पर-विवेक, प्रकटे विघटे आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प मुक्त॥३॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाग अभाव कीन, स्वाभाविक परणति मय अछीन॥४॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टय मय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महन्त, नव केवल-लब्धि-रमा धरन्त॥५॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जांहि जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख क्षार वारि, तारण को और न आप टारि॥६॥

यह लखि निजदुख-गदहरण काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्यपाप।
निज को परको करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥

आकुलित भयौ अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृग-तृष्णा जानि वारि।
तन-परिणति में आपो चितार, कबहुँ न अनुभवो स्व-पद सार ॥९॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक-नर-सुर-गति-मझार, भव धर २ मरयो अनंतवार ॥१०॥

अब काल-लब्धि बलैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटे सकलद्वन्द्व, चाख्यो स्वातम रस दुख निकंद ॥११॥

तातैं अब ऐसी करहुँ नाथ, बिछुड़े न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जगतारण को तुम विरद एव ॥१२॥

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होउं ज्यो निजाधीन ॥१३॥

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारण सु आप, शिव करहु हरहु मम मोह ताप ॥१४॥

शशि शांतिकरण तपहरण हेत, स्वयंमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभव ते भव नशाय ॥१५॥

त्रिभुवन तिहुँकाल मझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधि उतारन तुम जहाज ॥१६॥

दोहा–तुम गुणगण-मणि गणपति, गणत न पावहि पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सम्हार ॥

॥ इति श्री दर्शनस्तुति समाप्तः ॥

प्रभुपतित पावन स्तुति

बुधजन विरचित

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन चरण आयो शरणजी।
यो विरद आप निहार स्वामी मेट जामन मरणजी।।

तुम ना पिछान्या अन्य मान्या देव विविध प्रकारजी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो भ्रम गिन्यो हितकारजी।।

भव-विकट वन में कर्म वैरी ज्ञान धन मेंरो हरयौ।
तव इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्टगति धरतो फिरयौ।।

धन घड़ी यो धन दिवस योही धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो दरश प्रभु को लख लयो।।

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्तगुण युत कोटि रवि छवि को हरैं।।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो मनु रङ्क चिंतामणि लयो।।

मैं हाथ जोड़ नमाय मस्तक वीनऊँ तव चरणजी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन सुनहु तारण-तरणजी।।

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर राज परिजन साथजी।
'बुध' जाचहूँ तुम भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथजी।।

।।इति समाप्तः ।।

गुरुस्तुति

दोहा (राग-भरभरी)

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव-जलधि-जिहाज। आप तिरैं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज। ते गुरु. ।१। मोह महारिपु जानिकैं छांड्यो सब घरबार। होय दिगम्बर बन बसे, आतम शुद्धि विचार। ते गुरु. ।२। रोग उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजङ्ग समान। कदलीतरु संसार है, त्यागो यह सब जान। ते गुरु. ।३। रत्नत्रय निधि उर धरै, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल। मारयो काम पिशाच को, स्वामी परम दयाल। ते गुरु. ।४। पञ्च महाव्रत आदरै, पांचों समिति-समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर-पद हेत। ते गुरु. ।५। धर्म धरै दसलक्षणी भावैं भावना सार सहै परीषह वीस द्वै, चारित-रतन भंडार ।। ते गुरु. ।। जेठ तपै रवि आकरशे, सूखै सरवर नीर। शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर।। ते गुरु. ।।७।। पावस रैन डरावनी, बरसे जलभर धार। तरुतल निवसैं साहसी, बाजै झंझाब्यार।। ते गुरु. ।।८।। शीत पड़ैं कपि-मद गलैं, दाहै सब बनराय। ताल तरंगनि के तटै, ठाडैं ध्यान लगाय।। ते गुरु. ।।९।। इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमंझार। लागे सहज

सरूप में, तनसौं ममत निवार।। ते गुरु. ।।१०।। पूरव भोग न चिंतवैं, आगम बांछा नाहिं। चहुँ गति के दुखसों डरैं, सूरत लगी शिवमांहि।। ते गुरु. ।।११।। रङ्गमहल में पोढते, कोमल सेज बिछाय। ते पश्चिम निशि भूमि में सोवै संवरि काय।। ते गुरु. ।।१२।। गज चढि चलते गरवसौं, सेना सजि चतुरङ्ग।। निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा, अङ्ग।। ते गुरु. ।।१३।। वे गुरु चरण जहां धरे, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मांगे येह।। ते गुरु. ।।१४।।

।। इति भूधरदास कृत गुरूस्तुति समाप्तः ।।

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्रम्

पं. द्यानतरायजी विरचित

नरेंद्र फणीद्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।
मुनिन्द्रं गणेन्द्रं नमो जोड़ि हाथं, नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं॥१॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महाआगतैं नागतैं तू बचावै।
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगते बंधते तू छुड़ावै॥२॥

दुःखी दुःख हर्ता सुखी सुक्खकर्ता, सदा सेवकों को महानन्द भर्त्ता।
हरे यक्ष राक्षस भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं॥३॥

दरिद्रनिको द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनको तू भले पुत्र कीने।
महासङ्कटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्वको देहि दाता॥४॥

महाचोरको वज्रके भय निवारै, महापौन के पुंजते तू उबारे।
महाक्रोधकी अग्नि को मेघधारा, महालोभ-शैलेश को वज्रधारा॥५॥

महामोह अंधेर को ज्ञान भानं, महाकर्मकांतारको दे प्रधानं।
किये नागनागिनअधोलोकस्वामी, हरयो मानतूदैत्यकोहोअकामी॥६॥

तूही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी काम एनं।
पशू नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै॥७॥

करै लोह को हेमपाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।
करै सेव ताकी करे देव सेवा सुने बैन सोहिं लहै ज्ञान मेवा ॥८॥

जपै जाप ताको नहिं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरै काज मेरे ॥९॥

दोहा-गणधर इन्द्र न कर सकै, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारकै, कीजै आप समान ॥१०॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथ स्तोत्राय नमः ॥

मोक्ष या निगोद जाने का लक्षण

योगसार पाहुड़ में है :-

भरये पंचम काले जिण मुद्राधार ग्रंथ सव्वसे साड़े सात करोर जाइये निगोय भज्जमि ॥

अर्थः- इस भरत क्षेत्र में इस पंचमकाल के निमित्त से परिग्रह लोभ को धारण कर दिगम्बर या दिगम्बर-उपासक कहलाकर साड़े सात करोड़ जीव निगोद के पात्र होंगे। क्योंकि परिग्रह लोभी, दिगम्बर सम्प्रदाय में इस पंचमकाल के माहात्म्य से विषय के लोभ में जीव फंस कर दुखी होंगे। ऐसा सिद्धांत हैं।

जीवा सयतेइसा पंचम कालेय भद्दपरिणामा । उप्पइयु विदेहे नवमई वरसे दु केवली होदि ॥

अर्थ :- इस पंचमकाल में इस भरत क्षेत्र में भद्र परिणामी पुण्यात्मा कहीं से आकर, उत्पन्न होंगे। और उनकी शक्ति के अनुसार धर्म साधन कर अपनी आत्मा को स्वल्पकर्मी बनाकर, मनुष्य आयु के निमित्त से एक सौ तेईस जीव महा-विदेह क्षेत्र में जाकर जन्म लेकर नव वर्ष के अंदर केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे।

इसका खुलासा इस प्रकार से है । पंचमकाल की मर्यादा २१००० वर्ष की है। आचार्यों ने इसके सात भेद बतलाये हैं

और प्रत्येक भाग तीन ३ हजार वर्ष का है। इसका खुलासा इस प्रकार है। पहिला भाग के ३००० वर्ष में ६२ भद्रपरिणामी केवल ज्ञान पैदा करेंगे। दूसरे बाग के ३००० वर्ष में, ३१ जीव, तीसरे भाग १६ के ३००० वर्ष में १६ चौथे भाग के ३००० वर्ष में ८, पाँचवे भाग के ३००० वर्ष में ४, छठे भाग के ३००० वर्ष में २ और सातवे भाग के ३००० वर्ष में १ जीव केवल ज्ञान पैदा करेंगे।

इसप्रकार इस पंचमकाल के २१००० वर्षों में इस भरत क्षेत्र के जन्मे हुए जीव, क्रम से विदेह क्षेत्र में जाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग मनुष्य पर्याय में जो भद्रता रक्खेंगे वो सदा सुखी होंगे।

सार बिन्दु ग्रंथ

साधिक दव्यब्धिसहस्त्रं स्थिति जीवानां व्यवहारे।
तस्मिन्नेव अट्ठचदु प्राप्नोति त्रिवेदे पर्याया: ॥

अर्थ:- यह जीव संसार सागर में त्रस पर्याय में दो हजार सागर तक रहता है, विशेष नही रहता। इसमें इसको मनुष्य की ४८ पर्याये ही मिलती है ज्यादा नहीं मिलती। जिसमें १६ तो पुरुष पर्याय १६ स्त्री पर्याय और १६ नपुंसक पर्याय मिलती है। सो हमें यह मालूम नहीं कि हमारी कौन सी पर्याय है। अगर आखीरी की पर्याय हुई तो अब मनुष्य पर्याय मिल नहीं सकती

और संसार में डूब जाओगे। इससे यह मनुष्य पर्याय प्राप्त करना महान दुर्लभ है। अतः श्री गुरुओं के संयम धारण करने के उपदेश को धारण करो।

स्वामि कार्ति-केयानुप्रेक्षा

तस्सय सहलो जम्मो तस्ययपावस्सं णिज्जरा होदि।
तस्स ण पुण्णं वड्ठदि तस्स वि सोक्खं परं होदि॥

अर्थः- (छाया-तस्य च सकलं जन्म तस्य च पापस्य निर्जरा भवति। तस्स च पुण्यं बहति तस्य अपि सौख्यं परं भवति॥) (तस्य मुनिः सफलं जन्म तस्य च पापस्य) या ईहग्विधा निर्जरा निर्जरण भवति जावते। अपि पुनः तस्य मुनिः वर्धते वृद्धि याति किम्। पुण्यं प्रवास्त-कर्म च पुनः तस्य मुनेः भवति जायते किंतत् परम उथ्कृष्टं सौख्यं शर्म मोक्षसौख्यभिब्यर्थः।

हिन्दी अर्थ :- जो साधु निर्जरा के पूर्वोक्त कारणों में तत्पर रहता है उसीका जन्म सफल है। उसी के पापों की निर्जरा होती है। उसी के पुण्य की वृद्धि होती है, और उसी को उत्कृष्ट सुख-मोक्ष सुख प्राप्त होता है॥११३॥

दीक्षा का सामान

गंदोधक और दही थोड़ा-सा, भस्म-१ नारियल, कपूर २ तोला, केशर १० ग्राम, सुपारी ५ ठोस, नारयल की काचली-अगर क्षुल्लक दीक्षा हो तो ११ और मुनि दीक्षा हो तो १३, चावल-५ किलो, कपड़ा-१ गज, पीच्छी १, कमण्डलु-१, शास्त्र-१, दूर्वा। अगर क्षुल्लिका दीक्षा हो तो १६ हाथ की दो साड़ी २।। गज के दो दुपट्टा, अगर आर्यिका दीक्षा हो तो १६ हाथ की दो साड़ी। अगर धुल्लक दीक्षा हो तो दो लंगोटी २ सदर (दुपट्टा) खंडवस्त्र व भोजन करने के लिए कटोरा, द्राक्षी सूखी ५०० ग्राम, लोंग-५० ग्राम, इलायची ५० ग्राम, खारेक-५०० ग्राम, खड़ी हल्दी-५०० ग्राम, सुपारी-५०० ग्राम।

दीक्षामुहूर्तावलि

मासः- चै. वै. श्रा. आश्वि. का. मार्ग. माघ. फा. एतन्मासेषु शुभम् नाधिमासे।

नक्षत्राः- आश्वि. रो. उ. चि. रे. ऽनु. पुष्य. स्वाति. पुन. मू. श्र. ध. श. ए,सत्।

वासराः- सू. चं. बु. वृ. शु. एषामह्निभद्रादिदोषवर्जिते सति प्रशस्तम्।

तिथयः- २।३।५।७।१०।११।१२।एतासु तिथिश्रेष्ठं कृष्णेवावत्पञ्चमींसत्।

शुद्धलग्नः- २।३।४।५।६।७।९।१२ एतद्धरयाङ्केषुचन्द्रतारानुकुलेसति शुभम्।

लग्नलग्नातः- ३।६।११ एषुपापैः १।४।५।७।९।१० एषुशुभैश्चोत्तमम्।

शुद्धिश्चः-अष्टम्यां संक्रानातौ रविचन्दोपरागेचोत्तंम्। गुरुशुक्रयोरुदये श्रेष्ठम्।

	लग्न	
ज. चर	उ. स्थिर	म. द्विस्वभाव
मेष	वृषभ	मिथुन
कर्क	सिंह	कन्या
तुला	वृश्चिक	धनु
मकर	कुम्भ	मीन
इन लग्नों में दीक्षा कभी नहीं देना चाहिए जघन्य	स्थि लग्न में दीक्षा देना उत्तम है	इन लग्नों में दीक्षा देना मध्यम है

दीक्षा-नक्षत्राणि

प्रणम्य शिरसा वीरं जिनेन्द्रममलव्रतम् ।
दीक्षा ऋक्षाणि वक्ष्यन्ते सतां शुभ फलाप्तये ॥१॥

भरण्युत्तरफाल्गुन्यौमघाचित्रा विशाखिका: ।
पूर्वाभाद्रपदा भानि रेवती मुनि-दीक्षणे ॥२॥

रोहिणी चोत्तराषाढा उत्तराभाद्रपत्तथा ।
स्वातिः कृतिकया सार्धं वर्ज्यते मुनिदीक्षणे ॥३॥

आश्विनी-पूर्वाफाल्गुन्या हस्तस्वात्यनुराधिका: ।
मूलं तथोत्तराषाढा श्रवणः शत भिषक्तथा ॥४॥

उत्तराभाद्रपच्चापि दशेति विशदाशया: ।
आर्यिकाणां व्रते योग्यन्युषन्ति शुभहेतवः ॥५॥

भरण्यां कृत्तिकायां च पुष्ये श्लेषार्द्र योस्तथा ।
पुनर्वसौ च नो दद्युरार्यिकाव्रतमुत्तमाः ॥६॥

पूर्वाभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका ।
श्रवणश्चेषु दीक्षन्ते क्षुल्लकाः शल्यवर्जिताः ॥७॥

॥ इति दीक्षानक्षत्रपटलम् ॥

दीक्षाग्रहण-क्रिया

सिद्धयोगीबृहद्भक्तिपूर्वकं लिङ्गमर्प्यताम् ।
लुञ्चाख्यानाग्यपिच्छात्म क्षम्यतां सिद्धभक्तितः ।।

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्ग करोमि-

('सिद्धानुद्धूत' आदि)

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां .... योगिभक्ति-कायोत्सर्गं करोमि-

('थोस्सामि गुणधराणां' इत्यादि जातिजरारोंग इत्यादि वा) अनन्तरं लोचकरणं, नामकरणं, नाग्न्य प्रदानं, पिच्छ प्रदानं च अथ दीक्षा निष्ठापन क्रियायां सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोमि।

दीक्षादानोत्तरकर्तव्यम्

व्रतसमितीन्द्रियरोधाः पंच पृथक् क्षितिशयोदारघर्षः ।
स्थिति सकृदशने लुञ्चावश्यक षट्के विचेलताऽस्नानम् ।।
इत्यष्टविंशति मूलगुणान् निक्षिप्य दीक्षिते ।
संक्षेपेण सशीलादीन् गणी कुर्यात्प्रतिक्रमम् ।।

लोच-क्रिया

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो, मध्योऽधमः क्रमात्।
लघु प्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवास-प्रतिक्रमः॥

अथ लोच प्रतिष्ठापन क्रियायां सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोमि-

('तव सिद्धे' इत्यादि)

अथ लोचप्रतिष्ठापन क्रियायां योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि (जातिजरोरुरोग) अनन्तरं स्वहस्तने परहस्तेनापि वा लोचः कार्याः।

अथ लोचनिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोमि (तव सिद्धे इत्यादि) अनन्तरं प्रतिक्रमणं कर्तव्यम्।

बृहद् (मुनि) दीक्षा विधि

दीक्षकः पूर्वदिने भोजनसमये भाजनादितिरस्कारविधिं विधाय आहारं गृहीत्वा चैत्यालये आगच्छेत् । ततो बृहत्प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापने सिद्धयोगभक्ति पठित्वा गुरुपार्श्वे प्रत्याख्यानं सोपवासं गृहीत्वा, आचार्य-शान्ति-समाधि भक्तिः पठित्वा गुरवेः प्रणामं कुर्यात् ।

भावार्थ-दीक्षा के पहले दिन दीक्षा लेनेवाला भोजन के समय पात्रादिक की त्याग विधि करके और आहार ग्रहण करके, अर्थात् दीक्षा के पहले दिन दीक्षा लेने वाला पात्रादिक में भोजन नहीं करके, कर-पात्र में आहार करके चैत्यालय में आवे, फिर बृहत्प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन में सिद्ध योग भक्ति को पढ़कर गुरु के पास में चार प्रकार के आहार का त्याग करके उपवास ग्रहण करें। फिर आचार्य-शांति-समाधि भक्ति का पाठ पढ़कर गुरु को प्रणाम करे।

अथ-दीक्षादाने दीक्षादातृजनः शांतिकगणधरवलय पूजादिकं यथाशक्ति कारयेत् । अथ दीक्षकं स्नानादिकं कारयित्वा यथायोग्यालङ्कारयुक्तं महामहोत्सवेन चैत्यालये समानयेत्। स देवशास्त्रगुरुणां पूजां विधाय वैराग्यभावना परः सर्वैः सह क्षमां कृत्वा

गुरोरग्रे तिष्ठेत्। ततो गुरोरग्रे संघस्याग्रे च दीक्षायै यांचां कृत्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्रीविहिता स्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वदिशाभिमुखः पर्यकासनं कृत्वा आसने गुरोश्चोत्तराभिमुखो भूत्वा (१ संघाष्टकं संघं) च परिपृच्छाय लोचं कुर्यात्।

भावार्थ-दीक्षा के कुछ दिन पहले दीक्षा दिलवाने वाले दाता मन्दिर में शांतिक एवं गणधरवलय तथा किसी विधान की पूजा यथाशक्ति करावे, फिर दीक्षा के दिन दीक्षा लेने वाले सज्जन को दाता अपने घर स्नानादिक कराकर यथायोग्य सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाकर बड़े समारोह के साथ गाजे-बाजे से मन्दिर में लावे ओर वह आनन्दपूर्वक देव-शास्त्र गुरु सिद्धादिक की पूजन समारोह के साथ करके वैराग्य भावना में तत्पर वह दींक्षक सर्व गृहस्थ एवं अपने कुटुम्बिजनों से क्षमा करावे, व स्वयं क्षमा कर के गुरुदेव के सामने बैठ जावे, तदनन्तर संघ के सामने गुरु महाराज से दीक्षा की याचना करके गुरु की आज्ञा रो सौभाग्यवती स्त्री द्वारा जहाँ पर ठोस जमीन हो उस पर पूर्वाभिमुख पद्मासन से बैठ जावे और गुरु महाराज उत्तराभिमुख बैठ जावें फिर दीक्षा लेनेवाला गुरु महाराज से पूछकर केशलुं च करे।

शांति मंत्र

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशांतिनाथाय शांतिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु विनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामर विनाशनाय ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं-ह्रः असि-आउसा-अमुकस्य ....(यहां 'अमुकस्य' शब्द के स्थान पर दीक्षा लेनेवाले का नाम लेवें) सर्वशांति कुरु कुरु नमः ।

इत्यनेन मन्त्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं मंत्रयित्वा शिरसि निक्षितेत् । शांतिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिपरिषिंच्य मस्तकं वामहस्तेन स्पृशेत् ।

भावार्थ - इस शांति मंत्र को बोलते हुए आचार्य तीन बार दीक्षिक के मस्तक पर गन्धोदक डालें और बायें हाथ से दीक्षक के मस्तक को स्पर्श करें ।

वर्द्धमान मंत्र

ॐ नमो भयवदो बड्ढमाणस्य रिसहस्सचक्कं जलंतं गच्छई आयासं पायासं लोयाणं भूयाणं जये वा, विदादे वा, थंभणे वा, रणंगणे वा मोहेण वा, सव्वजीव सत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख नमः ।

॥ इति वर्द्धमान मंत्र ॥

ततोदध्यक्षत गोमय दुर्वांकुरान् मस्तके वर्द्धमानमंत्रेण निक्षिपेत्।

भावार्थ - इस वर्द्धमान मंत्र को बोलकर आचार्य दधि अक्षत गोमय भस्म दूब अंकुर दीक्षक के मस्तक पर डालें।

मंत्र

ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकृतोत्तमांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रु तावधीमनःपर्ययकेवलज्ञानाय 'अ सि आ उ सा नमः इदं मंत्रं पठित्वा भस्मपात्रं गृहीत्वा कर्पूरमिश्रितं भस्मं शिरसि निक्षिप्य निम्नमंत्रं उच्चार्य प्रथमं केशोत्पाटनं कुर्यात्।

भावार्थ-इस ऊपर के मंत्र को पढ़कर भस्मपात्र हाथ में लेते हुए आचार्य कपूर मिली भस्म दीक्षक के सिर पर डालकर निम्न मंत्र बोलकर मस्तक के पहले स्थान का केश लुंच करें।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।

पुनः ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः।

ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः।

ॐ ह्रूं पाठकेभ्यो नमः।

ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः ।

इत्युच्चरन् गुरुः स्वहस्तेन पंचबारं केशान् उत्पाटयेत् ।

इस प्रकार बोलते हुए अपने हाथों से पाँच बार दीक्षक के केशों का उत्पाटन करके निम्न पाठ पढ़े ।

बृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्तवसमेतं श्रीमत्सिद्धभक्तिं कायोत्सर्गं करोम्यहं । इति पंचबारं महामंत्रं जपेत् ।

लघुसिद्ध भक्ति

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्ति काउस्सग्गोकओ तस्सालोचेउ सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त जुत्ताणं अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोय मुज्झम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरितसिद्धाणं-अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सयाणिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।। इति ।।

ततः शीर्ष प्रक्षाल्य गुरुभक्ति कृत्वा वस्त्राभरणं यज्ञोपवीतादिकं परित्यज्य तत्रैवावस्थाय याचयेत्।

भावार्थ-दीक्षा लेने वाला दीक्षार्थी अपने सिर को धोकर गुरुभक्ति पढ़कर वस्त्राभूषण यज्ञोपवीतादिक का त्याग करके उसी अवस्था के लिए गुरु महाराज को हाथ जोड़कर दीक्षा की याचना करे।

ततो गुरु शिरसि श्रीकारं लिखित्वा-

फिर गुरु महाराज दीक्षा लेने वाले दीक्षार्थी के सिर पर श्रीकार लिखकर निम्नलिखित मंत्र का १०८ बार जाप्य देवे।

मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं नमः ॥१०॥

ततो गुरुत्सस्यांजलौ केशर कर्पूर श्रीखंडेन श्रीकार कुर्यात्-

भावार्थ-अर्थात् गुरु महाराज उस शिष्य की दोनों हाथों की अंजुली में केशर कर्पूर आदिक से बने हुए श्रीखंड द्वारा श्रीकार लिखे।

फिर-श्रीकारस्यचतुर्दिक्षु-

रयणत्तयं च वन्दे चउवीसजिणं तहा वन्दे । पंचगुरुणं वन्दे चारणचरणं तहा वन्दे ।।

इति पठन् अंकान् लिखेत् पूर्वे ३, दक्षिणे २४, पश्चिमे ५, उत्तरे १ । लिखित्वा-

सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः । इति पठन् तन्दुलैरञ्जलिं पूरयेत् तदुपरि नालिकेलं पूगीफलं च धृत्वा सिद्धचारित्तयोगिभक्तिं पठित्वा व्रतादिकं दध्यात् ।

भावार्थ-श्री लिखकर उसके चारों तरफ ऊपर लिखी हुई गाथा बोलकर पूर्व में ३, दक्षिण में २४, पश्चिम में ५, उत्तर में १ अंकों को लिखकर 'सम्यग्दर्शनाय नमः' इत्यादि बोलकर शिष्य की अंजुलि में चावल भरकर ऊपर नारियल सुपारी धरकर समय हो तो पूरी सिद्ध चरित्र योगि भक्ति पढ़कर व्रत देवें, नहीं तो लघु भक्तियाँ पढें ।

वदसमिदिंदिय रोधो, लोचो आवसयमचेल मण्हाणं। खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयमत्तं च ।।१।।

पंच-महाव्रत, पंच समिति, पंचेन्द्रियरोध लोचंषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति मूलगुणाः उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिक धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं समारुढं ते मे भवतु।

अर्थात्-यह उपरोक्त पाठ तीन बार पढ़ कर शिष्यों को व्रतों की व्याख्या समझाकर व्रत देवें और शांति भक्ति का पाठ पढ़े।

आशीर्वाद श्लोक

श्लोक-धर्मः सर्वसुखाकरो, हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।।

धर्मान्नास्त्यपरः, सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे, प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ।।

इति आशीःश्लोक पठित्वा अंजलिस्थतंडुलादिकं दात्रे प्रदेयम् ।

अर्थात्-दीक्षा लेने वाला सज्जन अपने हाथ में रखे हुए तंडुल नारियल सुपारी वगैरह उपरोक्त आशीर्वादात्मक श्लोक बोलकर दातार को देवे।

अथ षोडश संस्कारारोपणम्

अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१।।

अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।२।।

अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।३।।

अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।४।।

अयं चतुरं गवीर्यसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।५।।

अयं अष्ट मातृमंडल संस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।६।।

अयं शुद्ध्यष्टकोष्टंसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।७।।

अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।८।।

अयं त्रियोगासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।९।।

अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१०।।

अयं दशासंयमनिवृतिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।११।।

अयं चतुःसंज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१२।।

अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१३।।

अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१४।।

अयं अष्टादशसहस्त्रशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१५।।

अयं चतुरशीतिलक्षणसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ।।१६।।

इति प्रत्येकमुच्चार्य शिरसि लवंग पुष्पाणि क्षिपेत्।

अर्थात्-इन प्रत्येक मंत्र को बोलते हुए आचार्य दीक्षक के मस्तक पर पुष्पादि क्षेपण करके संस्कार करें। फिर निम्न मंत्र पढ़कर दीक्षक के मस्तक पर पुनः पुष्प डाले।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ परम

हंसाय परमेष्ठिने हंस हंस हं हां हिं हीं हूं हैं हौं हः जिनाय नमः जिनं स्थापयामि संवोषट् ।।

अथ गुर्वावलि

स्वस्ति श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सर २४ .... मासानां मासोत्तमे ....मासे .... पक्षे .... तिथौ .... वासरे मूलसंघे सरस्वतीगच्छे सेनगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यपरम्परायां .... (फिर जो गुरु की परम्परा है उसे बोले)

अथोपकरण प्रदान

पिच्छिकादान

ॐ णमो अरहंताणं । भो अन्तेवासिन् ! षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाणेति

इति पिच्छिकादान

शास्त्रदान

ॐ णमो अरहंताणं, मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः । भो अन्तेवासिन् ! इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति ।

॥ इति शास्त्रदानम् ॥

शौचोपकरणं (कमण्डलु)

ॐ णमो अरहंताणं, रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यन्तरमलशुद्धाय नमः । भो अन्तेवासिन् ! इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति ।

(गुरु महाराज बांये हाथ से कमण्डलु दान देवें)

॥ इति कमण्डलुदानम् ॥

लघु समाधि भक्तिः

इच्छामि भंते समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तयपरुपवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कमक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

ततो नवदीक्षितो मुनिर्गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्य अन्यान् मुनीन् प्रणम्योपविशति । यावद्व्रतारोपणं न भवति तावदन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां न ददंति।

ततो दातृ प्रमुखाः जनाः उत्तमफलानि अग्रे निधाय तस्मै नमोऽस्तु तवेति प्रणामं कुर्वन्ति।

भावार्थ-समाधि भक्ति पढ़ने के बाद नवदीक्षित मुनि गुरुभक्ति से गुरुदेव को प्रणाम (नमस्कार) करके अन्य मुनियों को भी नमस्कार करके बैठ जावे। जब तक व्रतों का आरोपण नहीं होवे, तब तक दूसरे मुनिवृन्द प्रतिवन्दना नहीं करें, इसके बाद दाता प्रधान मनुष्य उत्तम फलों को आगे रखकर उन नवदीक्षित मुनिराज को नमोस्तु करें।

ततस्तत्पक्षे द्वितीयपक्षे वा सुमुहूर्ते व्रतारोपणं कुर्यात् । तदा रत्नत्रयपूजां विधाय पाक्षिकप्रतिक्रमणपाठः पठनीयः । तत्र पाक्षिकनियमग्रहणसमयात्पूर्व यदा

'वदसमिदिंदिय' इत्यादि पठ्यते तदा पूर्ववत् व्रतादि दद्यात्। (पल्यविधानादिकं) दातृ प्रभृतिः श्रावकेभ्योपि एकं एकं तपो दद्यात्। ततोऽन्ये मुनयः प्रतिवंदनां ददंति।

मुखशुद्धिमुक्तकरणे विधिः

त्रयोदशसु पंचसु त्रिषु वा कच्चोलिकासु लवंग-एला-पूगी-फलादिकं निक्षिप्य ताः कच्चोलिकाः गुरोरग्रे स्थापयेत् । मुखशुद्धि मुक्तकरणं पाठक्रियायामत्याद्युच्चार्य सिद्धयोग-आचार्य-शान्ति-समाधिभक्ति विधाय ततः पश्चान्मुखशुद्धिं गृह्णीयात्।

क्षुल्लकदीक्षाविधिः

अथ लघुदीक्षायां सिद्ध-योगि-शांति-समाधिभक्तिः पठेत्। 'ओ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐ अर्हं नमः' अनेन मंत्रण जाप्यं २१ अथवा १०८ बारं दीयते।

अन्यच्च विस्तारेण लघुदीक्षाविधिः

अथ लघुदीक्षा नेतृजनः पुरुषः स्त्री वा दाता संस्थापयति । यथायोग्यमलंकृतं कृत्वा चैत्यालये समानयेत्। देवं वंदित्वा, सर्वैः सह क्षमां कृत्वा चैत्यालये समानयेत्। देवं वंदित्वा, सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरारग्रे च दीक्षां याचयित्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्री-

विहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वाभिमुखः पर्यंकासने गुरुश्चोत्तराभिमुखः संघाष्टं संघं पृच्छ य च परिपृच्छ् य लोचं .... ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये शांतिनाथाय शांतिकाराय सर्वविघ्नप्रणाशकाय सर्वरोगापमृत्युविनाश-नाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव-विनाशनाय सर्वक्षामडामर विनाशनाय 'ओ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा' अनेन मंत्रेण गंधोदकादिकं त्रिबारं शिरसि निक्षिपेत् । शांतिमंत्रेण गंधोदकं त्रिबारं परिसिंच्य वाम हस्तेन स्पृशेत् । ततो दध्यक्षतगोमयतद्भस्म दूर्वांकुरान् मस्तकं वर्धमानमंत्रः पूर्वकथितः । लोचादिविधिं महाव्रतं विधाय सिद्धभक्तिं योगभक्तिं पाठित्वा व्रतं दद्यात् ।

दंसणवयेत्यादि बारत्रयं पाठित्वा व्याख्यां विधाय च गुर्वावलीं पठेत् । ततः संयमाद्युपकरणं दद्यात् ।

ॐ णमो अरहंताणं । भो क्षुल्लक (आर्य-ऐलक-क्षुल्लके वा) षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाण इत्यादि पूर्ववत्कमण्डलु ज्ञानोपकरणादिकं च मंत्रं पठित्वा दद्यात् ।

॥ इति लगुदीक्षा विधानं समाप्तम् ॥

अथोपाध्यायदीक्षादानविधिः

सुमुहूर्ते दाता गणधरवलयार्चनं द्वादशांगश्रुत्तार्चनं च कारयेत्। ततः श्रीखण्डादीनां छटादिकं दत्वा तण्दुलैः स्वस्तिकं कृत्वा तदुपरि पट्टकं संस्थाप्य तत्र पूर्वाभिमुखं तमुपाध्यायपदं योग्यं मुनिमासयेत् । अथोपाध्यायपदस्थापनक्रियाया पूर्वाचार्येत्याद्युच्चार्य सिद्धश्रुतभक्ति पठेत्। तत्र आह्वानादि मंत्रानुच्चार्य शिरसि लवंग पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । तद्यथा "ओं ह्रौं णा उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन् ! अत्र एहि एहि, संवौषट् आह्वाननं स्थापनं सन्निधिकरणं।" ततश्च ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय परमेष्ठिने नमः" मंत्रं सहेदुंना चंदनेन शिरसि न्यसेत् । ततश्च शांतिसमाधिभक्तिः पठेत्। ततः स उपाध्यायो गुरुभक्ति दत्वा प्रणम्य दात्रे आशिषं दद्यादिति-

इत्युपाध्यायपदस्थापन विधिः

अथ आचार्यपदस्थापनविधिः

सुमुहूर्ते दाता शांतिकं गणधरवलयार्चनं च यथाशक्ति कारयेत् । ततः श्रीखण्डादीनां छटादिकं कृत्वा आचार्यपद योग्यं मुनिमासयेत् । आचार्यपद-प्रतिष्ठापन-क्रियायां इत्याद्युच्चार्य भक्तिं पठेत्। "ओं ह्रूं

परम सुरभिद्रव्यसंदर्भ परिमलगर्भतीर्थाम्बु सम्पूर्णसुवर्णकलशपंचकतोयेन परिषेचयामीति स्वाहा'' इति पठित्वा कलशपंचकतोयेन पादौ परिषेचयेत्। ततः पंडिताचार्यो ''निर्वेदसौष्ठी इत्यादि महर्षिस्तवन पठन् पादौ समंतात्परामृश्य गुणारोपणं कुर्यात्।

तत्श्च ॐ हूँ णमो आइरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः'' अनेन मंत्रेण सहेन्दुना चंदनेन पादयोर्द्वयोस्तिलकं दद्यात्। ततः शांतिसमाधिभक्तिं कृत्वा गुरुभक्त्या गुरुंप्रणम्योपविंशति। ततः उपासकास्तस्य पाद-योरष्टतयिमिष्टि कुर्वन्ति। यतयश्च गुरुभक्तिं दत्वा प्रणमन्ति। स उपासकेभ्यः आशीर्वादं दद्यात्।

इत्याचार्यपददान विधिः

ॐ ह्रां ह्रीं श्री अर्हं हं सः आचार्याय नमः।

आचार्यवचनमंत्रः अन्यश्च-

ॐ ह्रीं श्री अर्हं हं सः आचार्याय नमः। आचार्यमंत्रः

॥ इति ॥

१ आध्यात्म ध्यान सूत्रं

ॐ णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

रागद्वेष मोहरहितोहं ॥१॥ कोध, मान, माया, लोभरहितोहं ॥२॥ पंचेंद्रिय विषय व्यापार शून्योहं ॥३॥ मनो वचन काय क्रिया रहितोहं ॥४॥ द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरहितोहं ॥५॥ ख्याति पूजालाभादि विभाव भाव रहितोहं ॥६॥ दृष्ट श्रुतानु भूत भोग कांक्षारहितोहं ॥७॥ शल्यत्रय रहितो हं ॥८॥ गारवत्रय रहितोहं ॥९॥ दंड़त्रय रहितोहं ॥१०॥ विभाव परिणाम शून्योहं ॥११॥ निज निरंजन स्वरूपोहं ॥१२॥ स्वशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान परिणतोहं ॥१३॥ भेदज्ञाननुषान परिणतोहं ॥१४॥ अभेदरत्नत्रयरूपोहं ॥१५॥ निर्विकल्प समाधि संजातोहं ॥१६॥ वीतराग सहजानंद स्वरूपोहं ॥१७॥ अत्यानंद स्वरूपोहं ॥१८॥ स्वसंवेदन ज्ञानामृत भरितोहं ॥१९॥ ज्ञायकैकस्वभावोहं ॥२०॥ सहज शुद्ध पारिणामिक स्वभावरूपोहं ॥२१॥ सहज शुद्धज्ञानानंदैक स्वभावोहं ॥२२॥ महचल निर्भरानंदरूपोहं ॥२३॥ चिन्मात्र मूर्ति स्वरूपोहं ॥२४॥ चैतन्य रत्नाकर स्वरूपोहं ॥२५॥ चैतन्यामर द्रुम स्वरूपोहं ॥२६॥ चैतन्यामृत आहर स्वरूपोहं ॥२७॥ ज्ञान पुंज स्वरूपोहं ॥२८॥ ज्ञानामृत प्रवाह स्वरूपोहं ॥२९॥ चैतन्यरस रसायन स्वरूपोहं ॥३०॥ चैतन्य चिन्मय स्वरूपोहं ॥३१॥

चैतन्य कल्याण वृक्षस्वरूपोहं ॥३२॥ ज्ञान ज्योतिस्वरूपोहं ॥३३॥ ज्ञानार्णव स्वरूपोहं ॥३४॥ निरुपम निर्लेप स्वरूपोहं ॥३५॥ निरवद्यस्वरूपोहं ॥३६॥ शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपोहं ॥३७॥ अनंतज्ञानस्वरूपोहं ॥३८॥ अनंत दर्शन स्वरूपोहं ॥३९॥ अनंतवीर्य स्वरूपोहं ॥४०॥ अनंत सुख स्वरूपोहं ॥४१॥ सहजानंद स्वरूपोहं ॥४२॥ परमानंद स्वरूपोहं ॥४३॥ परमज्ञानानंद स्वरूपोहं ॥४४॥ सदानंद स्वरूपोहं ॥४५॥ चिदानंद स्वरुपोहं ॥४६॥ निजानंद स्वरूपोहं ॥४७॥ सहज सुखानंद स्वरूपोहं ॥४८॥ नित्यानंद स्वरूपोहं ॥४९॥ शुद्धात्म स्वरूपोहं ॥५०॥ परम ज्योतिः स्वरूपोहं ॥५१॥ स्वात्मोपलब्धि स्वरूपाहं ॥५२॥ शुद्धात्म संवित्ति स्वरूपोहं ॥५३॥ भूतार्थ स्वरूपोहं ॥५४॥ परमार्थ स्वरूपोहं ॥५५॥ समयसार समूह स्वरूपोहं ॥५६॥ अध्यात्मसार स्वरूपोहं ॥५७॥ परम मंगल स्वरूपोहं ॥५८॥ परमोत्तम स्वरूपोहं ॥५९॥ सकल कर्मक्षय कारण स्वरूपोहं ॥५८॥ परमोत्तम स्वरूपोहं ॥५९॥ सकल कर्मक्षय कारण स्वरूपोहं ॥६०॥ परमाद्वैतस्वरूपोहं ॥६१॥ शुद्धोपयोग स्वरूपोहं ॥६२॥ निश्चय षड़ावश्यक स्वरूपोपोहं ॥६३॥ परम समधि स्वरूपोहं ॥६४॥ परम स्वास्थ्य स्वरूपोहं ॥६५॥ परम स्वाध्याय स्वरूपोहं ॥६६॥ परम भेद ज्ञानस्वरूपोहं ॥६७॥ परम संवेदन स्वरूपोहं ॥६८॥ परम समरसीभा व स्वरूपोहं ॥६९॥ केवल ज्ञान स्वरूपोहं ॥७०॥ केवल दर्शन स्वरूपोहं ॥७१॥

अनंतवीर्य स्वरूपोहं ॥७२॥ परम सूक्ष्म स्वरूपोहं ॥७३॥ अवगाहन स्वरूपोहं ॥७४॥ अगुरु लघु स्वरूपोहं ॥७५॥ अव्याबाध स्वरूपोहं ॥७६॥ अष्टविधकर्म रहितोहं ॥७७॥ निरंजन स्वरूपोहं ॥७८॥ नित्योहं ॥७९॥ अष्टगुण सहितोहं ॥८०॥ कृतकृत्योहं ॥८१॥ लोकाग्रनिवस्योहं ॥८२॥ अनुपमो हं ॥८३॥ अचिंत्योहं ॥८४॥ अतर्क्योहं ॥८५॥ प्रमेये स्वरूपोहं ॥८६॥ अतिशय स्वरूपोहं ॥८७॥ अक्षय स्वरूपोहं ॥८८॥ शाश्वतोहं ॥८९॥ शुद्ध स्वरूपोहं ॥९०॥ सिद्ध स्वरूपोहं ॥९१॥ सत्तात्मक सिद्ध स्वरूपोहं ॥९२॥ अनुभवात्मक सिद्ध स्वरूपोहं ॥९३॥ सोहं, शुद्धो हं ॥९४॥ चित्कला स्वरूपोहं ॥९५॥ चैतन्य पुंज स्वरूपोहं ॥९६॥ सदनंद स्वरूपो हं ॥९७॥ परमशरप्पोहं ॥९८॥ स्वयंभूरो हं ॥९९॥ अतिशयातिश शयातीत (अतिशयातिशय) अमूर्तानंत सुख स्वरूपोहं ॥१००॥

२ -: दश विधधर्म्यध्यान स्वरूपं :-

अपाय विचय चिंतन परिणाम परिणतां तर्मनो हं ॥१॥ उपाय विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं ॥२॥ अजीव विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं ॥३॥ विपाक विचय चिंतन परिणम परिणति स्वरूपोहं ॥४॥ विराग विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं ॥५॥ भव विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं ॥६॥ संस्थान विचय चिंतन परिणाम परिणति

स्वरूपोहं ॥७॥ आज्ञा विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं॥७॥ करण विचय चिंतन परिणाम परिणति स्वरूपोहं ॥९॥ सोहं, शुद्धो हं, बुद्धो हं।

३ -: आर्त ध्यान त्याग भावना :-

ॐ नमः सोहं, निरंजनोहं॥१॥ इष्टवियोगज आर्तध्यान रहितो हं॥२॥ अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान रहितोहं॥३॥ पीड़ा चिंतन निदान बंध रहितोहं ॥४॥ निदान बन्धज आर्तध्यानरहितोहं ॥५॥ वीतराग परिणाम परिणति सहितोहं॥६॥ सोहं नित्याहं॥ सत्योहं, निरंजनोहं॥

४ -: रौद्रध्यान त्याग भावना :-

हिंसानंद रौद्र ध्यान रहितोहं, मृषानंद रौद्रध्यान रहितोहं, चौर्यानंद रौद्रध्यान रहितोहं, परिग्रहानंद रौद्रध्यान रहितोहं, अर्हद्गुण स्थापना धर्म्य ध्यानोहं।

घातिचतुष्टय रहितोहं ॥१॥ अष्टादशदोष रहितोहं ॥२॥ पंचमहाकल्याणां कितोहं॥३॥ अष्टमहा प्रातिहार्य विशिष्टोहं ॥४॥ चतुस्त्रिंश दतिशय समेतोहं ॥५॥ शतेंद्रवृंद वंद्यपादार विंदद्वयोहं॥६॥ विशिष्टानंत चतुष्टय स्वरूपोहं॥७॥ अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी समेतोहं ॥८॥ परम कल्याण रसोपेतोहं ॥९॥ सर्व भाषात्मक दिव्यध्वनि स्वरूपोहं ॥१०॥ कोट्यादित्य

प्रभारूप परमौदारिक दिव्य शरीररूपोहं ॥११॥ परम मंगलोहं ॥१२॥ परम पवित्रोहं ॥१३॥ त्रिजगद्‌गत गुरुस्वरूपोहं ॥१४॥ शाश्वतोहं ॥१५॥ जगत्रय कालत्रयवर्तिसकल पदार्थ युगपत्परिच्छेदक केवलज्ञान स्वरूपोहं ॥१६॥ विशदाखंडैक प्रत्यक्ष प्रतिभासमानसकल विमल केवल दर्शन स्वरूपोहं ॥१७॥ अतींद्रियातिशयानंत सुख स्वरूपोहं ॥१८॥ विर्यानंतबल स्वरूपोहं ॥१९॥ अचिंत्या नंतगुण स्वरूपोहं॥२०॥ सोहं, शुद्धोहं, बुद्धोहं ॥२१॥

५ -: सालंबन सिद्धस्वरूप धर्म ध्यानं :-

ज्ञानावरणादि मूलोत्तर कर्म प्रकृति रहितोहं ॥१॥ सकल विमल केवल ज्ञानादि गुणसमेतोहं ॥२॥ निष्क्रियटंकोत्किर्ण ज्ञायकैक स्वरूपोहं ॥३॥ अमूर्तोहं ॥४॥ अखंड़ोहं ॥५॥ शुद्ध चिन्मयोहं ॥६॥ निर्व्यग्रसहजानंद सुखमयोहं ॥७॥ शुद्धजीवघनाकारोहं ॥८॥ नित्योहं निरंजनोहं ॥ निर्मलोहं, निष्कलंकोहं ॥९॥ लोकाग्रनिवास्योहं ॥१०॥ त्रिजगद्वंदितोहं ॥११॥ अनंत गुण स्वरूपोहं ॥१२॥ अनंत ज्ञान स्वरूपोहं ॥१३॥ अनंत सुख स्वरूपोहं ॥१४॥ अनंत दर्शन स्वरूपोहं ॥१५॥ अनंत वीर्यस्वरूपोहं ॥१६॥ अनंत शक्ति स्वरूपोहं ॥१७॥ अनंतानंत स्वरूपोहं ॥१८॥ निर्वेद स्वरूपोहं ॥१९॥ निर्मोह स्वरूपोहं ॥२०॥ निरामय स्वरुपोहं ॥२१॥ निरायुधस्वरूपोहं ॥२२॥ निर्मामस्वरूपोहं ॥२३॥ निर्गोत्रस्वरुपोहं ॥२४॥

निर्विघ्नस्वरूपोहं ॥२५॥ निर्गतिस्वरूपोहं ॥२६॥ निंइन्द्रियस्वरूपोहं ॥२७॥ निष्कषायस्वरूपोहं ॥२८॥ निर्योगस्वरूपोहं ॥२९॥ निजशुद्धात्मस्मरण निश्चयसिद्धोहं ॥३०॥ परमज्योतिस्वरूपोहं ॥३१॥ निरंजनस्वरूपोहं ॥३२॥ चिन्मयस्वरूपोहं ॥३३॥ ज्ञानानंदस्वरूपोहं ॥३४॥ सोहं, शुद्धोहं, बुद्धोहं ॥३५॥

६ -: आचार्य परमेष्ठि गुणसंकलन धर्मध्यानं :-

निश्चय पंचाचार स्वरूपोहं ॥१॥ व्यवहार पंचायारसन्तर्गतोहं ॥२॥ परमदया परिणतिस्वरूपोहं ॥३॥ निजनितस्वरूपोहं ॥४॥ पंचप्रकार संसार सागरोत्तरणकारणभूतोहं ॥५॥ पात्ररूपोहं ॥६॥ चित्तस्वभावना प्राप्तोहं ॥७॥ चातुवर्ण चक्रवर्त्याचार्य परमेष्ठि स्वरूपोहं ॥८॥ निज नित्यानंदैक तत्वभाव स्वरूपोहं ॥९॥ सकलविमल केवलज्ञान दर्शन स्वरूपोहं ॥१०॥ दंडत्रय खंडिता खंडदूर स्वरूपोहं ॥११॥ चतुर्गति संसार दूर स्वरूपोहं ॥१२॥ भूतार्थ षडावश्यक स्वरूपोहं ॥१३॥ सप्तभय विप्रमुक्त स्वरूपोहं ॥१४॥ विशिष्टाष्ट गुण पुष्ट स्वरूपोहं ॥१५॥ नवकेवललब्धि स्वरूपोहं ॥१६॥ अष्टविधकर्मकलंकरहितोहं ॥१७॥ अष्टादशदोष रहितोहं ॥१८॥ सप्तनय-व्यतिकर स्वरूपोहं ॥१९॥ सोहं, शिवोहं, शुद्धोहं, बुद्धोहं ॥२०॥

७ -: उपाध्याय परमेष्ठि गुणस्वावलंबन धर्मध्यानं :-

निश्चय-व्यवहार धर्म प्रतिपादकोहं ॥१॥ अष्टविध ज्ञानाचार स्वरूपोहं ॥२॥ अष्टविध दर्शनाचार स्वरूपोहं ॥३॥ पंचविध-विर्याचार स्वरूपोहं ॥४॥ त्रयोदशविध चारित्राचार स्वरूपोहं ॥५॥ क्षायिकज्ञान स्वरूपोहं ॥६॥ क्षायिकदर्शन स्वरूपोहं ॥७॥ क्षायिकचारित्रस्वरूपोहं ॥८॥ क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूपोहं ॥९॥ क्षायिक पंचलब्धि स्वरूपोहं ॥१०॥ परमविशुद्ध चिद्रुपस्वरुपोहं ॥११॥ विशुद्ध चैतन्य स्वरूपोहं ॥१२॥ शुद्धचित्तकाय स्वरूपोहं ॥१३॥ शुद्ध जीवपदार्थ स्वरूपोहं ॥१४॥ शुद्धजीव द्रव्य स्वरूपोहं ॥१५॥ शुद्धजीवास्तीकाय स्वरूपोहं ॥१६॥ सोहं, शुद्धोहं, बुद्धोहं, शिवोहं, शंकराहं ॥१७॥

८ -: आचार्य परमेष्ठि गुण स्वावलंबन धर्मध्यानं :-

अखंड शुद्ध ज्ञानैक स्वरूपोहं ॥१॥ स्वाभाविक ज्ञान दर्शन स्वरूपोहं ॥२॥ अंतरंग रत्नत्रय स्वरूपोहं ॥३॥ अनंतचतुष्टय स्वरूपोहं ॥४॥ पंचभाव स्वरूपोहं ॥५॥ नयनिक्षेप प्रमाणविधुर स्वरूपोहं ॥६॥ सप्तभय विप्रमुक्त स्वरूपोहं ॥७॥ अर्द्वत परमात्म सुख स्वरूपोहं ॥८॥ अष्टविध कर्म निर्मुक्त स्वरूपोहं ॥९॥ अविचलित शुद्ध चिदानंद स्वरूपोहं ॥१०॥ त्रिविध करणत्रयातर्गतोहं ॥११॥ व्यवहार रत्नत्रयांतर्गतोहं ॥१२॥ निश्चयरत्नत्रयांतर्गतोहं ॥१३॥ दंडत्रयरहितोहं ॥१४॥

शल्यत्रय रहितोहं ॥१५॥ योगत्रयरहितोहं ॥१६॥ लोकत्रयांतर्गतोहं ॥१७॥ कर्मत्रयरहितोहं ॥१८॥ भाव कर्मांतर्गत परिणतोहं ॥१९॥ सोहं ॥२०॥ क्षयोपशमलब्ध्यं तर्गतोहं ॥२१॥ विशुद्धिलब्ध्यंतर्गतोहं ॥२॥ देशनालब्ध्यंतर्गतोहं ॥२३॥ प्रायोग्यलब्ध्यंतर्गतोहं ॥२४॥ करणलब्ध्यंतर्गतोहं ॥२५॥ अधःप्रवृति करणांतर्गतोहं ॥२६॥ अपूर्वकरणांतर्गतोहं ॥२७॥ अनिवृत्ति करणांतर्गतोहं ॥२८॥ सोहं सिद्धोहं, बुद्धोहं ॥२९॥

९ -: सिद्ध स्वरूप भावना धर्मध्यान :-

चतुर्गतिगमन रहित सिद्धस्वरूपोहं ॥१॥ पंचेन्द्रिरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥२॥ षट्कायरहित सिद्ध स्वरूपोहं ॥३॥ पंचदशयोगरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥४॥ सप्तकाय योगरहित सिद्ध स्वरूपोहं ॥५॥ त्रिवेदरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥६॥ नववेदरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥७॥ षोडशकषायरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥८॥ नवनोकषायरहित सिद्ध स्वरूपोहं ॥९॥ सप्तभय नामकर्मरहित सिद्धस्वरूपोहं ॥१०॥ अष्टविधज्ञानांतर्गत सिद्ध स्वरूपोहं ॥११॥ सप्त संयमांतर्गतोहं ॥१२॥ चतुर्विध दर्शनांतर्गतोहं ॥१३॥ षड्लेश्यारहित सिद्धस्वरूपोहं ॥१४॥ भव्याभव्यत्व रहित सिद्ध स्वरूपोहं ॥१५॥ षट्सम्यगदर्शनांतर्गतोहं ॥१६॥ दश सम्यक्त्वांतर्गतोहं ॥१७॥ संज्ञ्य संज्ञि कर्मरहितोहं ॥१८॥ आहारकानाहारक

कर्मरहितोहं ॥१९॥ चतुर्दश गुणस्थानांतर्गतोहं ॥२०॥ एकोनविंशतिजीव समास रहितोहं ॥२१॥ षट्पर्याप्तिरहितोहं ॥२२॥ दशप्राणरहितोहं ॥२३॥ चतुःसंज्ञा रहितोहं ॥२४॥ अष्टविध ज्ञानोपयोगांतर्गतोहं ॥२५॥ चतुर्विध दर्शनोपयोगांतर्गतोहं ॥२६॥ चतुर्विध आर्तध्यान रहितोहं ॥२७॥ चतुर्विध रौद्र ध्यान रहितोहं ॥ दशविध धर्म ध्यानांतर्गतोहं ॥२९॥ चतुर्विध युक्त ध्यानांतर्गतोहं ॥३०॥ पंचमिथ्यात्वरहितोहं ॥३१॥ मूलोत्तर कर्मप्रकृति रहितोहं ॥३२॥ द्रव्याश्रव भावाश्रव रहितोहं ॥३३॥ द्रव्य बंध भाव बंध रहितोहं ॥३४॥ द्रव्यनिर्जरा भावनिर्जरांतर्गतोहं ॥३५॥ द्रव्यमोक्ष भाव मोक्षांतर्गतोहं ॥३६॥ पावनोहं, पवित्रोहं ॥३७॥ कुलयोनि रहित सिद्धस्वरूपोहं ॥३८॥

१० -: धर्म ध्यान भावना स्वरूप :-

निःशंकितांगांतर्गत परिणाम परिणत वीतरागानुभूति स्वरूपोहं ॥१॥ निष्कांक्षितांगांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानु भूति रूपोहं ॥२॥ निर्विचिकित्सांतांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानु भूतिरूपोहं ॥३॥ अमूढ़ दृष्टयंगांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानुभूति रूपोहं ॥४॥ उपगूहनांगांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानु भूति रूपोहं ॥५॥ स्थितिकरणांगांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानुभूति रूपोहं ॥६॥ वात्सल्यांगांतर्गत परिणाम परिणत वीतरागानु भूति रूपोहं ॥७॥ प्रभावनांगांतर्गत परिणाम परिणत वीतरागानु भूति रूपोहं ॥८॥ शुद्ध सम्यक्त्व

रूपांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानु भूति रूपोहं ।।९।। शुद्ध ज्ञानानुचरणरूपांतरंग परिणाम परिणत वीतरागानु भूतिरूपोहं ।।१०।। शुद्ध चारित्र चरण रूपांतरंग परिणाम परिणति रूपोहं ।।११।। स्पर्शनेन्द्रियांतर्गत वीतराग परिणाम परिणति रूपोहं ।।१२।। रसनेन्द्रियांतर्गत वीतराग परिणाम परिणति रूपोहं ।।१३।। घ्राणेन्द्रियांतर्गत वीतराग परिणाम परिणति रूपोहं ।।१४।। चक्षुरिंद्र यांतर्गत वीतराग परिणाम परिणति रूपोहं ।।१५।। श्रोत्रेन्द्रियांतर्गत वीतराग परिणाम परिणति रूपोहं ।।१६।। परमानंद परिणाम परिणति स्वरूपोहं ।।१७।। सहजानंद परिणाम परिणति स्वरूपोहं ।।१८।। नित्यानंद परिणामं परिणति स्वरूपोहं ।।१९।। निर्विकाररूप परिणाम परिणत रूपोहं ।।२०।। निरामय स्वरूपोहं ।।२१।। अनंतसु संपन्नोहं ।।२२।। ज्ञानामृत पयोधर रूपोहं ।।२३।। अनंत वीर्य संपन्नो हं ।।२४।। अनंत दर्शन संपन्नोहं ।।२५।। निर्विकार परमानंद परिणतोहं ।।२६।। निराबाध सुख स्वरूपोहं ।।२७।। सर्वसंग विवर्जित परिणाम परिणतोहं ।।२८।। परमानंद रसभरित परिणाम परिणतोहं ।।२९।। शुद्ध चैतन्यलक्षण सिद्ध स्वरूपोहं ।।३०।। निर्विकल्प ध्यान परिणतोहं ।।३१।। ज्ञानसुधारस भोक्तृस्वरूपोहं ।।३२।। पदस्थध्या नांतर्गतवीतराग परिणति परिणतोहं ।।३३।। पिंड़स्थ ध्यानांतर्गतवीतराग परिणति परिणतोहं ।।३४।। रूपस्थ ध्यानांतर्गत वीतराग परिणति परिणतोहं ।।३५।। रूपातीत ध्यानांतर्गतवीतराग समाधि रूपोहं ।।३६।। प्रथ्वी मंड़ल ध्यानांतर्गतोहं ।।३७।। आप् मंड़ल ध्यानांतर्गतोहं ।।३८।। तेजो

मंड़ल ध्यानांतर्गतोहं ॥३९॥ वायु मंड़ल ध्यानांतर्गतोहं ॥४०॥ वीतरागानंद परिणाम परिणतोहं ॥४१॥ परमानंद परिणाम परिणतोहं ॥४२॥ शांति रस रूप परिणाम परिणतोहं ॥४३॥ परमानंद रस भरित परिणाम परिणतोहं ॥४४॥ शुद्ध दर्शनानंद परिणाम परिणतो हं ॥४५॥ शुद्ध ज्ञानानंद परिणाम परिणतो हं ॥४६॥ अनंत सुख स्वरूपोहं ॥४७॥ क्रोधादि विकल्प जालतरंगरहितोहं ॥४८॥ जगत्रय कालत्रयवर्ति वस्तु ज्ञान स्वरूपोहं ॥४९॥ जन्म जरा मरण रहित नित्य स्वरूपोहं ॥५०॥ चतुर्गति गमन रहित नित्य स्वरूपोहं ॥५१॥ शिव स्वरूपोहं, शंकर स्वरूपोहं, परब्रह्म स्वरूपोहं ॥५२॥ परम विष्णु स्वरूपोहं ॥५३॥ जित क्रोध रूप परिणम परिणतोहं ॥५४॥ जितमान रूप परिणाम परिणतोहं ॥५५॥ जित कामरूप परिणाम परिणतोहं ॥५६॥ जितमोह रूप परिणाम परिणतोहं ॥५७॥ द्रव्यकर्म रहित निरंजनोहं ॥५८॥ भावकर्म रहित निरंजनोहं ॥५९॥ नोकर्म रहित निरंजनोहं ॥६०॥ रूपातितानुभूति परिणम परिणतोहं ॥६१॥ रसतीतानुभूति-रूप परिणाम परिणतोहं ॥६२॥ गंधतीतान भूति रूप परिणाम परिणतोहं ॥६३॥ स्पर्शातीतानुभूति रूप परिणाम परिणतोहं ॥६४॥ ध्यानस्थानादि निधन निरंजनोहं ॥६५॥ पाप पुण्यादि रूप क्रिया रहितोहं ॥६६॥ हर्ष विषाद परिणति रहितोहं ॥६७॥ धारणा देहरूप परिणम परिणति रहितोहं ॥६८॥ यंत्र आदि परिणाम रहितोहं ॥६९॥ मंड़ल मुद्रादि रहित निरंजनोहं ॥७०॥ स्त्री पुरुषाकार रूप रहितोहं ॥७१॥ इंद्रियातीत सुख स्वरूपोहं

॥७२॥ वेद शास्त्र रहित निरंजनोहं ॥७३॥ शुद्धात्म सविति नित्यानंद सुखामृत स्वाद परिणतोहं ॥७४॥ नित्य निर्मल ध्यान रस स्वादानु परिणाम परिणतोहं ॥७५॥ आराध्याराधनाराधक स्वरूप परिणति रूपोहं ॥७६॥ वीतराग परमाहला दकर परिणतोहं ॥७७॥ क्रोधादिदाहक ध्यान स्वरूपोहं ॥७८॥ कामादि विकार दाहक स्वरूपोहं ॥७९॥ असंगत्वाद्वायु स्वरूपोहं ॥८०॥ निर्मलात्मत्वादाकश स्वरूपोहं ॥८१॥ शुद्ध स्वरुपत्वान्निर्विकार स्वरुपोहं ॥८२॥

-: व्यवहार शरणं :-

अर्हच्चरणोत्तमाय नमो नमः ॥१॥
सिद्ध शरणोत्तमाय नमो नमः ॥२॥
साधु शरणोत्तमाय नमो नमः ॥३॥
केवली प्रणीत धर्माय नमो नमः ॥४॥

-: निश्चय शरणं :-

एक स्वभाव सिद्धय नमो नमः ॥१॥
विकल्प परिमुक्ताय नमो नमः ॥२॥
अरसाय अगंधाय नमो नमः ॥३॥
अव्याबाधाय नमो नमः ॥४॥
अनंत ज्ञानाय नमो नमः ॥५॥

भद्रं शुभं मंगलं

श्री रत्नाकर सूरि विरचित

रत्नाकर-पञ्चविंशतिका

(हिन्दी पद्यानुवाद-कविवर श्री रामचरित उपाध्याय)

शुभ-केलि के आनन्दके धनके मनोहर धाम हो,
नरनाथसे सुरनाथसे पूजित चरण, गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो, सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कलाके सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ॥१॥

संसार-दुखके वैद्य हो त्रैलोक्यके आधार हो,
जय श्रीश! रत्नाकरप्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो।
ीतराग! है विज्ञप्ति मेरी मुग्धकी सुन लीजिए
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए॥२॥

माता पिता के सामने बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली?
अपने हृदयके हालको त्यों ही यथोचित रीतिसे-
मैं कह रहा हूं, आपके आगे विनय से प्रीति से॥३॥

मैने नहीं जगमें कभी कुछ दान दीनोंको दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं मैने नहीं तप भी किया।
शुभ भावनाएं भी हुई, अब तक न इस संसार में-
मैं घूमता हूं, व्यर्थ ही भ्रमसे भवोदधि-धारमें॥४॥

क्रोधाग्निसे मैं रात दिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक सांपसे काटा गया हूँ हे विभो!

अभिमानके खल ग्राहसे अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हों स्मृत आप, माया-जालसे मैं व्यस्त हूँ।।५।।

लोकेश! पर-हित भी किया मैंने न दोनों लोकमें,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झींकता हुँ शोकमें।
जगमें हमारे से नरोंका जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर! वह भवोंको पूर्णता के अर्थ है।।६।।

प्रभु! आपने निज मुख सुधाका दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्तने उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रसमें डूबकर सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही।।७।।

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभुसे उसे मैंने लिया,
बहु काल तक बहु बार जब जगका भ्रमण मैंने किया।
हा खो गया वह भी विवश मैं नींद आलसके रहा,
बतलाइये उसके लिए रोऊँ प्रभो! किसके यहाँ?।।८।।

संसार ठगनेके लिए वैराग्यको धारण किया,
जगको रिझानेके लिए उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचानेके लिए मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ हे प्रभो! अपनी हँसी।।९।।

परदोषको कह कर सदा मेरा वदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियोंको हा नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोचकर परकी बुराई हे प्रभो,
किस भाँति होगी लोकमें मेरी भलाई हे प्रभो।।१०।।

मैने बड़ाई निज विवशता हो अवस्थाके वशी,
भक्षक रतीश्वरसे हुई उत्पन्न जो दुख-राक्षसी।
हा! आपके सम्मुख उसे अति लाजसे प्रकटित किया,
सर्वज्ञ! हो सब जानते स्वयमेव संसृतिकी क्रिया॥११॥

अन्यान्य मन्त्रोंसे परम परमेष्ठि-मंत्र हटा दिया,
सच्छास्त्र-वाक्योंको कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया।
विधि-उदयको करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ, यों भ्रमवश अहित मैंने नहीं क्या क्या किया॥१२॥

हा, तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान वश मैंने किया फिर देखिये किस पापको।
वामाक्षियों के रागमें रत हो सदा मरता रहा,
उनके विलासोंके हृदयमें ध्यान को धरता रहा॥१३॥

लख कर चपल-दृग-युवतियों के मुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटलपर राग भावों की मलिनता बस गई।
वह शास्त्र-निधिके शुद्ध जलसे भी न क्यों धोई गई?
बतलाइए यह आप ही मम बुद्धि तो खोई गई॥१४॥

मुझमें न अपने अंगके सौन्दर्यका आभास है,
मुझमें न गुणगण है विमल, न कला-कलाप-विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्नको भी चमकती है, देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्वसे मैं मूढ़ हो किसके लिए॥१५॥

हा नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ोती पर विषयसे कामना हटती नहीं।

मैं यत्न करता हूं, दवा मैं, धर्म मैं करता नहीं,
दुर्मोह-महिमासे ग्रसित हूं नाथ! बच सकता नहीं॥१६॥

अध-पुण्यको, भव-आत्मको मैंने कभी माना नहीं,
हा आप आगे हैं खड़े दिननाथसे यद्यपि यहीं।
तो भी खलोंके वाक्यको मैने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है, गया मम जन्म ही मानों वृथा॥१७॥

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म श्रावकधर्मका भी नहिं सविधि पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वनमें व्यर्थ ही रोता रहा॥१८॥

प्रत्यक्ष सुखकर जिन-धरम में प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये है मूढ़ता भारी यही।
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक के यहां रहते हुए,
हमने गँवाया जन्मको धिक्कार दुख सहते हुए॥१९॥

मैंने न रोका रोग-दुख संभोग-सुख देखा किया।
मनमें न माना मृत्यु-भय-धन-लाभ ही लेखा किया।
हा! मैं अधम युवती-जनोंका ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागारसे मनमें न मैं डरता रहा॥२०॥

सद्वृत्ति से मनमें न मैंने साधुता हा साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी मैंने नहीं कुछ अर्जिता।
शुभ तीर्थके उद्धार आदिक कार्य कर पाये नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज मैंने गँवाया व्यर्थ ही॥२१॥

शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो सहना मुझे आता नहीं।
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला! ॥२२॥

सत्कर्म पहले जन्ममें मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्यमें उसको करूंगा मैं कहीं।
इस भांतिका यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों?
संसारमें फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों? ॥२३॥

हे पूज्य! अपने चरितको बहुभाँति गाऊं क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी है पापमय मेरी कथा।
क्योंकि त्रिजगके रूप हो तुम, ईश हो, सर्वज्ञ हो,
प्रथके प्रदर्शक हो, तुम्हीं मम चित्तके मर्मज्ञ हो ॥२४॥

दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न मुझसा अपर कहीं है।
तो भी माँगूं नहीं धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन्! केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर॥
श्रीरत्नाकर गुणगान यह दुरित दुःख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना मंगलमय जगको करे॥२५॥

॥ इति पंचविंशति ॥

समाधिमरण भाषा

(पं. सूरचन्दजी रचित। नरेन्द्र छन्द)

वन्दौ श्री अरहंतपरमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर मांही।
अन्त समय में यह वर मांगूँ, सो दीजे जग राई।।१।।

भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृप रिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो।।
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों।।२।।

भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुःख पाये विधि योगे।।
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुःख अति भारी।
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी।।३।।

भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यकगुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो।।४।।

काल अनादि भयो जग भ्रमतैं, सदा कुमरणहिं कीनों।
एकबार हूँ सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनों॥
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई।
देह विनासी मैं निजभासी, शांति स्वरूप सदाई॥५॥

विषयकषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो॥
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो॥६॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरणसमय दुःखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरम होय, मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै॥७॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै॥
अतिदुर्गन्ध अपावनसों यह मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनासी जिय अविनासी नित्यस्वरूप कहावै॥८॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजैं।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै॥
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो॥९॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के मांही।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभाव को त्याग सयाने समताभाव धरीजै।।१०।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुःखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई।।११।।

कर्म महादुठ बरी मेरो, तासेती दुःख पावै।
तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।।
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसों काढ़ै।।१२।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये।।
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी।।१३।।

मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामैं सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुःखदाई।।१४।।

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो; तो पावो संपति तेती॥१५॥

चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारै।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥१६॥

इस तनमें क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै॥१७॥

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तनबन्दीग्रह में, पर्‌यो-पर्‌यो बिललावै॥
पुद्‌गलके परमाणु मिलकर पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुणखासी॥१८॥

रोग:शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्‌गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खान पान दे याको पोष्यो अब सम भाव ठन्यो है॥१९॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुःखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई॥२०॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजैं विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुःख हैं, सो सब पुद्गल सागै।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुःख भागैं॥२१॥

बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिन में ये दुःख पायो।
शस्त्रघाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै तब लग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई कभी ना सीजै॥२३॥

स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तपही सों शिवकामिनिपति ह्वै, यासों तप चित लावै॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुःखदाई॥२४॥

मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है।।
और परीग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं नाहक आरत कीजे।।२५।।

जे-जे- वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।।
जो परभवमें संग चलें तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारों, दान चार विध दीजै।।२६।।

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो।।
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो।।२७।।

अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवैं, आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं
जा सेती गतिचार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं।।२८।।

मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी।।२९।।

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित्त लाकै।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै॥
अरु समता निज उरमें आवैं, भाव अधीरज जावै।
यों निश दिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विचलावै॥३०॥

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्लायनी जुग बच्चाजुत, पांव भख्यो दुःखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिड़ता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३१॥

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहीं, आतम सो हितलायो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३२॥

देखो गजमुनिके शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिंगारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३३॥

सनतकुमार मुनि के न में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३४॥

श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्‍यो।
धर सलेखना परिग्रह छोड़्यो, शुद्ध भार उर धार्‍यो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३५॥

समंतभद्र मुनिवर के तन में क्षुधा वेदना आई।
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो चिन्त्यौ निजगुण भाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३६॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नदी में मुनि बहकर मूवे, सो दुःख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३७॥

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३८॥

श्री दत्तमुनिको पूर्वजन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुःख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधना चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३९॥

वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धर्‌यो मनलाई।
सूर्यधाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४०।।

अभयघोषमुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
वैरी चण्डने सब तन छेद्यो, दु:ख दीनो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४१।।

विद्युतचरने बहु दु:ख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४२।।

पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४३।।

दण्डकनामा मुनिकी देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४४।।

अभिनन्दन मुनि औदि पांचसौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४५।।

चाणक मुनि गौधर के माहीं, मून्द अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख हैं? मृत्यु महोत्सव भारी।।४६।।

सातशतक मुनिवर दुःख पायो, हथनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४७।।

लोहमयी आभूषण धड़के, ताते कर पहराये।
पांचों पांडव मुनिके तन में, तौ भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी।।४८।।

और अनेक भये इस जग में, समता-रस के स्वादी।
वे ही हमकों हों सुखदाता, हरिहैं टेव प्रमादी।।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों।।४९।।

योंं समाधि उरमाहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरुआठों मदको ज्योतिस्वरूपी ध्यावो॥
जो कोई नित करत पयानो ग्रामांतरके काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभके कारण साजै॥५०॥

मात पितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै॥
एक ग्राम जाने के कारण, करें शुभाशुभ सारे।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचों प्यारे॥५१॥

सर्वकुटुम्ब जब रोबन लागै, तोहि रुलावै सारे।
ये अपशकुन करै सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै॥
अब परगतिको चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुःख हानो॥५२॥

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो॥
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारों॥५३॥

(दोहा)

मृत्यु महोत्सव पाठकों, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द' शिवथान॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्बत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥५४॥

अंतिम मंगलाचरण

नमस्तस्मै सरस्वत्यै विमल ज्ञान मूर्तये।
विचित्रालोक यात्रेयं यत्प्रसादात् प्रवर्तते।।
नमो ऋषभसेनादि गौतमान्त गणेशिने।
मुलोत्तर गुणाढ्याय सर्वस्यै मुनये नमः ।।१।।

गुरु भक्त्यावयं सार्धं द्वीप द्वितय वर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्यान नव कोटि मुनिश्वरान्।।

कन्नड़ भाषाका मंगलाचरण

इजिनकथेयन्नु केलिदवर पाप बीजनिर्नाशनवहुदु।
तेजवहुदु पुण्यवहुदु मुंदोलिदअपराजितेश्वरन काणुवरु।।१।।

प्रेमर्दिद नोदिदरे पाड़िदरे केलद रामोदवैदुवरवरू।
नेमदि सुररागि नाले श्रीमंदर स्वामिय काण्बरर्तियोल्।।

अभिमत सिद्धिदायक योगिनायक, उभयलावण्यबरेण्य।
प्रभेतोरूतेङ्कंतरंगदोलिरू बोध, विभूवे चिदंबर पुरूषा।।

नित्यमंगल नित्यशृंगार गौरव, नित्यनीलांगतरंगा।
नित्य वैभवने सन्मतिदोरू सौख्य, साहित्य निरंजन सिद्धा।।

भरतचक्रवर्ती के १६ स्वप्न दर्शन और उन स्वप्नों का फल
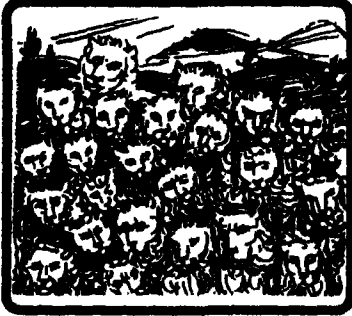
१. तेईस सिंहों को देखा ।

१. तेईस तीर्थंकरों के समय में खोटे मुनि न रहेंगे ।

२. एक सिंह के पीछे मृग समूह ।

२. महावीर स्वामी के पश्चात् मुनि परीषह न सहेंगे भ्रष्ट होंगे ।

३. घोड़े पर हाथी चढ़ रहा है ।

३. साधु तप से डरेंगे और असमर्थ होंगे ।

४. हँस को कौवे सता रहे हैं ।

४ उच्च कुल वाले शुभाचरण से भ्रष्ट हो
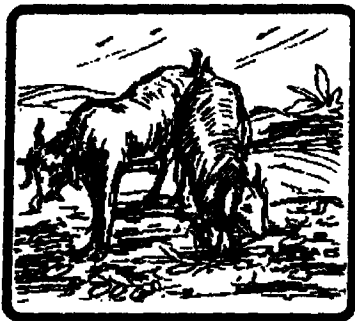
५. दो बकरे सूखे पत्ते खा रहे है ।

५. क्षत्रियों का (राज वंश) नाश होगा नीच कुल वाले राज्य करेंगे ।

६. हाथी पर बन्दर बैठा है ।

६. पंचम कालमे भोले जीव मुनि धर्म छोड़ेंगे पापी जीव धर्मात्माओ का अपमान करेगे ।

७. भूत प्रेत नाच रहे हैं ।

७. अज्ञानी जीव भूतादि कुदेवो की पूजा जिनदेव के समान करेंगे ।

८. तालाब, मध्य में खाली है और किनारों पर जल भरा हुआ है ।

८. उत्तम तीर्थों मे धर्म का अभाव होगा । हीन स्थान मे धर्म रहेगा ।

९. गन्धराशि धूल में मिली हुई है ।

९. पंचम काल में शुक्लध्यानी नही होगें धर्म ध्यानी कई एक रहेंगे ।
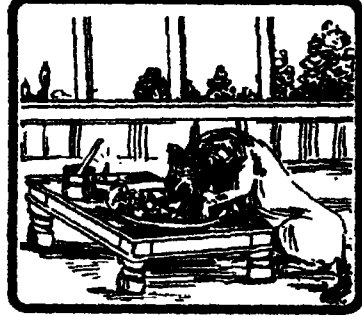
१०. कुत्ता पूजन का द्रव्य खा रहा है ।

१०. पंचम काल में कुपात्रभी पात्र की तरह आदर पावेंगे ।

११. एक तरुण बैल को देखा ।

११. पंचम काल के जीव तरुण अवस्था मे धर्म साधन करेगे । परन्तु वृद्धावस्था में अरुचि करेगे ।

१२. शाखा सहित चन्द्रमा को देखा ।

१२. पंचम काल मे अवधि ज्ञान व मनःपर्यय ज्ञानके धारी मुनि नही होगें ।

१३. युगल बैल दहाड़ रहे है ।

१३. पंचम काल मे मुनि संघ सहित रहेंगे एकाकी नही रहेगे ।

१४ सूर्य मेघों से घिरा हुआ है ।

१४ पंचम. काल में केवलज्ञान नही होगा ।

१५. पत्ती रहित सूखे वृक्ष को देखा ।

१५. पंचम काल के स्त्री पुरुष शीलव्रत धारण करके भी कुशील सेवन करेंगे ।

१६. सूखे जीर्ण पत्ते ।

१६. पंचम काल में अन्न आदि औषधियां नीरस होंगी ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्न दर्शन और उन स्वप्नों का फल

१. सूर्य मंडल अस्त होते हुये देखा ।

१. पंचम काल मे अंग पूर्व के धारी मुनि कोई नही रहेगे ।

२. कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी ।

२. अभी से कोई क्षत्रिय राजा जिन दीक्षा नही धारण करेगे ।

३. सीमा उल्लंघन किये हुये समुद्र ।

३. राजा लोग अन्यायी होंगे, उनको परधन हरण की इच्छा होगी ।

४. बारह फणों का सर्प देखा ।

४. बारह वर्षों तक अकाल (दुष्काल) पड़ेगा ।

५ देव विमान वापिस लौटा जा रहा है ।

५. पंचम काल मे यहां देव नही आवेगे । चारण मुनि और विद्याधर नीचे नही आवेगे ।

६ ऊंट पर राजकुमार बैठा है ।

६. राजा लोग दया धर्म नही पालेंगे, हिंसा करेगे ।

७. महारथ को गोवत्स जुड़े हैं ।

७. युवावस्था ही में कदाचित् कोई दीक्षा धारणा करेंगे, वृद्धावस्था में दीक्षा नही पालेंगे ।

८. दो काले हाथी लड़ रहे है ।

८. समय पर पानी नही बरसेगा व निर्ग्रंथ मुनि सग्रंथ होगे ।

९. नग्न स्त्रियां नाच रही है ।

९. दिगम्बर नग्न मुनि होवेंगे परन्तु से कपटी और पाखडा होवेंग । कुदेवो की विशेष पूजा होती रहेगी ।

१०. सुवर्ण पात्र मे कुत्ता खा रहा है ।

१०. उत्तम कुल वालो मे से अब लक्ष्मी पाखंडी और मध्यम कुल वाले लोगों मे चली जायेगी ।

११. जुगनू चमकते देखा ।

११. जैन धर्म का विस्तार अब बहुत थोड़ा रहेगा, और अन्य धर्म का विस्तार ज्यादा होगा ।

१२ सूखा हुआ सरोवर में दक्षिण दिशि थोडा सा जल दिखा ।

१२. जिन-जिन स्थानो मे पंच कल्याणक हुये है उन-उन स्थानों मे धर्म की हानि होगी । अब से जिन धर्म रहे तो उसी दक्षिण दिशा में रहेगा ।

१३. रज में कमल खिला हुआ देखा ।

१३. ब्राह्मण और क्षत्रिय ये अन्य धर्म मे चलेगे। वैश्य लोग जैन धर्म पालेगे, व धनवान होगे ।

१४. छिद्र सहित चन्द्रमा देखा ।

१४. जिन शासन मे अनेक भेद प्रभेद होयेगे ।

१५. हाथी पर बन्दर बैठा हुआ देखा ।

१५. क्षत्रिय लोग सेवक होगे, नीच लोग राज्य करेगे ।

१६. रत्न राशि रज मे देखी ।

१६. मुनिमुनियो मे अनेक फूट होगी । आपस मे स्नेह भाव नही रहेगा ।